श्रीरामनामवन्दना-प्रकरण

बंदौं नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥ १॥

शब्दार्थ-**कृसानु**=अग्नि । **भानु**=सूर्य। **हिमकर**=चन्द्रमा।

अर्थ—मैं रघुवरके 'राम' नामकी वन्दना करता हूँ जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका कारण है॥ १॥

नोट—१ श्रीरामजीके नाम, रूप, लीला और धाम नित्य सच्चिदानन्दविग्रह चतुष्टयमेंसे चरित-गान करनेके लिये धाम और रूपकी वन्दना कर चुके, अब नामकी वन्दना करते हैं। वन्दनामें ही रामनामका अर्थ, महिमा, गुण आदि कहकर नामका स्मरणकर चरित कहेंगे। यथा—***'सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा॥'*** (१। २८)

नोट—२ बैजनाथजीका मत है कि रामनामका अर्थ आगे कहना है, परन्तु नामार्थकथनका सामर्थ्य वेदोंमें भी नहीं है, ऐसा शिवजीका वचन है। यथा—**'वेदाः सर्वे तथा शास्त्रे मुनयो निर्जरर्षभाः। नाम्नः प्रभावमत्युग्रं ते न जानन्ति सुव्रते ॥ ईषद्वदामि नामार्थं देवि तस्यानुकम्पया ॥'** (महारामायण ५२ । ३। ४) शिवजी श्रीराम (रूप) की कृपासे कुछ कहते हैं। उनको रूपकी दया प्राप्त है पर हम-ऐसोंको वह कहाँ प्राप्त ? नामकी दया नीच-ऊँच सबको सुलभ है, इसलिये गोस्वामीजी नामकी ही वन्दना करके, नामके दयाबलसे रामनामका अर्थ कहते हैं, अतः ***'बंदौं नाम'*** कहा।

नोट—३ ***'बंदौं नाम राम ....'*** इति । (क) ***'नाम राम'*** यही पाठ १६६१, १७०४, १७२१, १७६२ छ०, को० राम आदिकी पोथियोंमें है। करुणासिन्धुजी, बाबा हरिहरप्रसाद, पं० रामबल्लभाशरणजी, रामायणी श्रीरामबालकदासजी आदि इसीको शुद्ध मानते हैं। कुछ छपी हुई पुस्तकोंमें ***'रामनाम'*** पाठ है पर किस प्राचीन पोथीसे यह पाठ लिया गया है, इसका पता नहीं। प्राचीनतम पाठ ***'नाम राम'*** है। श्रीमद्गोस्वामीजीने इसमें यह विलक्षणता रखी है कि यह रामनामवन्दना-प्रकरण है और इसमें आगे चलकर वे ***'राम नाम'*** को ***'ब्रह्म राम'*** अर्थात् नामीसे बड़ा कहेंगे; इस विचारसे आदिमें ही 'नाम' शब्द प्रथम देकर नामको नामीसे बड़ा कहनेका बीज यहीं बो दिया है। (श्री १०८ रामशरणजी, मौनीबाबा, रामघाट) ना० प्र० सभाका पाठ ***'राम नाम'*** है। (ख) ***'नाम राम रघुबर को'*** इति। किस नामकी वन्दना करते हैं? 'राम' नामकी पर 'राम' शब्दमें तो अतिव्याप्ति है। यह न जान पड़ा कि किस 'राम' के नामकी वन्दना है। 'राम' से रमणाद्राम, परशुराम, रघुकुलमें अवतीर्ण 'राम', यदुकुलवाले बलराम और किसी-किसीके मतसे शालग्रामका भी बोध होता है। मेदिनीकोशमें भी कई राम कहे गये हैं, यथा—**'रामा योषा हिंगुलिन्योः क्लीबं वास्तु ककुष्ठयोः। ना राघवे च वरुणे रैणुकेये हलायुधे॥'** (मेदिनी) पद्मपुराण उत्तरखण्ड २२९। ४० में भी तीन राम 'राम' शब्दसे ही कहे गये हैं। यथा—**'मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः। रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश॥'** (४१) ज्योतिष, पिंगल और अन्य स्थलोंमें जहाँ संख्याका दिग्दर्शन किया जाता है वहाँ 'राम'से 'तीन' का अर्थ व्यवहारमें आता है। यद्यपि कोशमें 'राम' शब्द अनेक व्यक्तियोंका बोधक कहा गया है तथापि 'राम' शब्द तीन ही व्यक्तियोंके साथ विशेष प्रसिद्ध होनेसे लोग उसकी संख्या तीन मानते हैं। मानस और भागवतमें भी तीनका प्रमाण है। परशुराम और बलरामको भी 'राम' कहा गया है। यथा—***'बार बार मुनि बिप्र बर कहा राम सन राम॥'*** (१। २८२) इसमें प्रथम 'राम' रघुवर रामका और दूसरा 'राम' परशुरामका बोधक है। इसीसे तो परशुरामजीने कहा भी है कि ***'करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ु कहाउब रामा॥'*** (१। २८१) पुनः यथा—**'रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम्॥'** (भा० १०। ३९। १३) (गोपियोंने सुना कि अक्रूर राम और कृष्णको मथुरा ले जानेके लिये व्रजमें आये हैं), **'तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ॥'** (भा० १०। ३९। ४१) (जलमें जप करते-करते अक्रूरने राम-कृष्ण दोनों भाइयोंको वहीं अपने पास देखा) इत्यादि। यहाँ 'राम' शब्द 'बलरामजी'के लिये आये हैं।

अन्तर्यामीरूपसे जो सबमें रमते हैं वे भी 'राम' कहलाते हैं। कबीरपंथी, सत्यनामी आदि कहते हैं कि उनका 'राम' सबसे न्यारा है, वह दशरथका बेटा नहीं है। शालग्राममें भी श्रीरामजीके स्वरूप होते हैं जो कुछ विशिष्ट चिह्नोंसे पहचाने जाते हैं। अतएव 'रघुवर' विशेषण देकर श्रीदशरथात्मज रघुकुलभूषण श्रीरामजीके 'राम' नामकी वन्दना सूचित की और इनको इन सबोंसे पृथक् किया। (ग) मयंककारका मत है कि **रघुबर**=रघु (जीव)+ वर (पति)=जीवोंके पति। अर्थात् मुझ जीवके (एवं चराचरमात्रके जीवोंके) पति (स्वामी) जो श्रीरामजी हैं यथा—***'ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो'*** (विनय०) उनके 'राम' नामकी वन्दना करता हूँ। (घ) 'राम' से ऐश्वर्य और ***'रघुबर'*** से माधुर्य जताकर दोनोंको एक जनाया। बैजनाथजी लिखते हैं कि ***'परब्रह्म'*** श्रीरामचन्द्रजीने अपना ऐश्वर्य त्यागकर ***'रघुबर'*** रूप हो अपना सौलभ्य गुण दिखाया। इससे 'रामरघुवर कहकर वन्दना की।' (ङ) श्रीभरद्वाजमुनिके प्रश्नसे गोस्वामीजीने श्रीरामचरित प्रारम्भ किया है। उन्होंने तथा श्रीपार्वतीजीने यह प्रश्न किया है कि 'ये राम कौन हैं?' यथा—***'राम नाम कर अमित प्रभावा।... एक राम अवधेसकुमारा ।...प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।'*** (१।४६)***'राम सो अवधनृपतिसुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥'*** (१। १०८) श्रीगोस्वामीजीने इसका उत्तर और अपना मत ***'रघुबर'*** शब्दसे सूचित कर दिया है।

गौड़जी—***'बंदौं नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥' 'रामनाम रघुबर को।'*** रामनामकी वन्दना आरम्भ करनेमें विशेषतया ***'रघुबर'*** का नाम क्यों कहते हैं? 'राम' नाम तो अनादि है। रामावतार होनेके अनेक युग पहले प्रह्लाद और ध्रुवने इसी नामको जपकर सिद्धि पायी। शंकरभगवान् अनादिकालसे यही नाम जपते आये हैं। वसिष्ठजीने तो दशरथके पुत्रोंके पुराने नाम रख दिये। राम तो भार्गव जामदग्नेयका भी नाम था। यहाँ जिस रामनामकी वन्दना करते हैं वह कौन-सा नाम है? परशुधरका नाम तो हो नहीं सकता। प्रह्लाद, ध्रुव आदिद्वारा जपे गये नामकी वन्दना अवश्य है, जैसा कि आगे चलकर कहा है—***'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥', 'ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ॥'*** परन्तु वह रामनाम तो परात्पर परतम ब्रह्मका है और वही ध्रुव, प्रह्लादने जपा है। तो यहाँ ***'रघुबर को'*** रामनाम कहकर मानसकार यह दिखाना चाहते हैं कि रघुवरके रामनाम और परात्पर परतमके रामनाममें कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक ही हैं।

अभी तो वह शंका कि ***'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि'*** उठी ही नहीं है, फिर यहाँ ***'रघुबर'*** शब्दकी विशिष्टताका क्या प्रयोजन है? इसी प्रश्नके उत्तरमें मानसकी रचनाका रहस्य छिपा हुआ है। मानस तो त्रिकालके लिये कल्याणकारी है फिर मानसकारको उसके अपने ही कालमें प्रकट करनेका भी कोई विशेष प्रयोजन था? इस प्रश्नका उत्तर मानसकारकी परिस्थितिका इतिहास देता है। मानसकारने अठहत्तर वर्षकी अवस्थामें मानसका लिखना आरम्भ किया। इस अठहत्तर वर्षकी अवधिमें उन्होंने क्या-क्या देखा? मुसलमानोंके लोदी पठानोंकी पराजय, बाबरकी विजय, हुमायूँका भागना, शेरशाहसूरी और उसके वंशजोंका विभव और पराभव, फिर अकबरका राज्य, उसकी विजय, उसका दीर्घकालीन शासन। जौनपुरकी मुसलमानी सल्तनतका पतन। एक मुसलमानी राजवंशका विनाश और दूसरेका उत्थान। तीन सौ बरसोंसे जड़ जमाये हुए मुसलमानी मत और संस्कृतिका प्रचार। मुसलमानोंके प्रभावसे हिन्दूधर्मकी विचलित दशा और उसकी रक्षाके लिये अनेक सम्प्रदायोंका खड़ा होना। मुसलमानका भक्तिवाद विलक्षण था। वह अव्यक्तकी उपासना करता था, निराकार सगुण ब्रह्मको मानता था। वह देवताओंका पूजक न था और न भगवान्का अवतार मानता था। हिन्दू अपने धर्मका प्रचारक न था परन्तु मुसलमान प्रचारके पीछे हाथ धोकर पड़ा था। उसका सीधा-सादा धर्म था परन्तु उसके समर्थनमें बल और वैभव दोनों थे, तलवार और दौलत दोनों थीं। उससे हिन्दूजनताकी रक्षा करनेके लिये अनेक पन्थसम्प्रदाय आदि चल पड़े। वैष्णवसम्प्रदायोंने अवतारवाद, सगुणवाद, मूर्तिपूजा आदिपर प्रतिक्रियात्मक जोर दिया और मुसलमानोंसे अलग ही रहनेका प्रयत्न किया। कबीर और नानकके निर्गुणवादमें मुसलमानोंको

मिलानेकी कोशिश की गयी। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, वर्णाश्रमधर्म और साकार ब्रह्मका कहीं-कहीं खण्डन किया गया और कहीं इन बातोंका निश्चित अपकर्ष दिखाया गया। कबीरपन्थकी यह मुख्य बातें थीं। गोस्वामीजीका कम-से-कम कबीरपन्थके मन्तव्योंके साथ अधिक संघर्ष हुआ होगा, क्योंकि इस पन्थका उद्‌गम भी काशी नगरी ही थी। कबीरने परतम परात्पर ब्रह्मका नाम 'राम' माना और उसके जपका उपदेश करते रहे, परन्तु *'रघुबर'* का नाम उसे नहीं मानते थे। यह बात गोस्वामीजीको अवश्य खली होगी। उनकी साखी है, *'दशरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लंकाके राव सताया॥'* जिस परमात्माका नाम राम है, वह दशरथके घर कभी नहीं जन्मा। ☞ रामचरितमानसमें रामनामकी वन्दनामें इसीका खण्डन आरम्भसे है। *'रघुबर'* के रामनामकी वन्दना करते हुए परात्परके रामनामसे उसकी एकता दिखायी है और रामावतारसे उसकी महिमाकी तुलना की है।

नोट—४ परमेश्वरके तो अनन्त नाम हैं, उनमेंसे श्रीरामनामकी ही वन्दनाका क्या हेतु है? उत्तर—(क) प्रभुके अनन्त नाम हैं पर 'राम' नाम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। यथा—'**परमेश्वरनामानि सन्त्यनेकानि पार्वति। परन्तु रामनामेदं सर्वेषामुत्तमं मतम्॥**' (महारामायण ५०। १५), '**अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः। श्रियो रमणसामर्थ्यात् सौन्दर्यगुणसागरात्॥', 'श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम्। रमणान्नित्ययुक्तत्त्वाद्राम इत्यभिधीयते॥**' (हारीतस्मृत चौथा अध्याय) अर्थात् परमेश्वरके अनेक नाम हैं परन्तु रामनाम सर्वोत्तम है। पुनः भगवान्‌के अनन्त मन्त्र हैं पर वे सब इस 'राम' नामके तुल्य नहीं हैं। श्रीजीके रमणका सामर्थ्य तथा सौन्दर्यगुणसागर होनेसे श्रीराम यह प्रसिद्ध नाम है। सबको नित्य आनन्द देते हैं इसीलिये उनको 'राम' कहा जाता है। पुनः, पद्मपुराणमें शिवजीका वाक्य है कि 'राम' यह नाम विष्णुके सहस्रों नामके तुल्य है, समस्त वेदों और समस्त मन्त्रोंके जपसे कोटिगुणा पुण्यका लाभ श्रीरामनामके जपसे होता है। यथा—'**जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति। तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते॥**' (पद्मपुराण) पुनः जिस तरह 'श्रीमन्नारायणके पर्यायवाची 'विष्णु' के अनेक सहस्र नामोंके तुल्य या उनसे अधिक श्रीरामनामका होना पाया जाता है, उसी तरह श्रीरामनामके बराबर या अधिक श्रीमन्नारायणादिका माहात्म्य किसी श्रुति या स्मृतिमें नहीं पाया जाता। (बाबा श्रीहरिदासाचार्यजी) पुनश्च '**श्रीरामनाम नमो ह्येतत् तारकं ब्रह्मनामकम्। नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्यमेव महामनुः॥**' (हारीत) '**राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥**' (प० पु० उ० २५४। २२)

(ख) जितने अन्य मन्त्र हैं, वे सब देवताओंके प्रकाशसे प्रकाशित हैं। जैसे गायत्रीमें सूर्यका प्रकाश है, शाबरमन्त्रमें श्रीशिवजीका और इसी भाँति किसीमें अग्निका, किसीमें चन्द्रमाका प्रकाश है। परन्तु श्रीरामनाम स्वतः प्रकाशित हैं और सूर्य, अग्नि, चन्द्र आदि सभी देवताओंको अपने प्रकाशसे प्रकाशित किये हुए हैं। यथा—*'सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥'* (१।११७) (पं० रामकुमारजी) '**स्वर्भूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते।**' (रा० पू० ता० २। १) '**रेफारूढा मूर्त्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च**' (रा० पू० ता० २। ३) '**रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे**' (जाबालो० प० १) इन श्रुतियोंमें 'राम' नामको स्वयम्भू (अपने-आप प्रकट होनेवाले, किसी दूसरेसे जायमान नहीं), ज्योतिर्मय, प्रणव आदि अनन्तरूप धारण करनेवाला अर्थात् प्रणवादिका कारण और रेफके आश्रित सम्पूर्ण भगवद्रूपों एवं श्री, भू और लीलादि भगवच्छक्तियोंका होना कहकर सम्पूर्ण मन्त्रोंका प्रकाशक और रुद्रद्वारा उपदिष्ट होना कहा गया है।

(ग) श्रीरामनाम सब नामोंके आत्मा और प्रकाशक हैं। यथा—'**नारायणादि नामानि कीर्त्तितानि बहून्यपि। आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनाम प्रकाशकः॥**' (महारामायण ५२। ४०) आत्माकी वन्दना करनेसे सारे शरीरको प्रणाम हो चुका। मयंककार लिखते हैं कि ऐसा करनेसे सबको शीघ्र सन्तुष्ट किया।

(घ) श्रीरामनाममें जो रेफ, रेफका अकार, दीर्घाकार, हल मकार और मकारका अकार—ये पंच पदार्थ हैं, इनके बिना एक भी मन्त्र, ऋचा वा सूत्र नहीं बनते हैं। (मा० प्र०) वेदोंमें, व्याकरणोंमें जितने भी

वर्ण, स्वर, शब्द हैं वे सब 'राम' नामसे ही उत्पन्न होते हैं। यथा—'**वेदे व्याकरणे चैव ये च वर्णाः स्वराः स्मृताः। रामनाम्नैव ते सर्वे जाता नैवात्र संशयः॥**' (महारामायण ५२। ६७)

(ङ) श्रीरामनामके अतिरिक्त जितने भी नाम परमेश्वरके हैं वे सब गुणक्रियात्मक हैं। अर्थात् वे सब गुण दर्शित करनेवाले नाम हैं। जैसे कि—(१) '**व्यापकोऽपि हि यो नित्यं सर्वस्मिञ्च चराचरे। विषप्रवेशने धातोर्विष्णुरित्यभिधीयते॥**' (महारा० ५२। ९०) इस प्रमाणके अनुसार सम्पूर्ण चराचरमें नित्य ही व्यापक होनेसे 'विष्णु' नाम है। '**विश प्रवेशने**' धातुसे '**स्नु**' प्रत्यय लगनेसे विष्णु शब्द निष्पन्न होता है। पुनः, (२) नरपदवाच्य परब्रह्मने प्रथम जल उत्पन्न किया इससे जलका नाम 'नार' हुआ। फिर 'नार' में 'अयन' बनाकर रहनेसे उसी परमेश्वरका नाम 'नारायण' (जलमें है स्थान जिसका) हुआ। '**नृ नये**' धातुसे नर शब्द निष्पन्न होता है। जीवोंके शुभाशुभ कर्मानुसार भोगका यथार्थ न्याय करनेसे परमात्माका नाम 'नर' है। यथा—'**नरतीति नरः प्रोक्ता परमात्मा सनातनः**' (मनु) '**आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं हि तेन नारायणः स्मृतः॥**'(मनु० १। १०) '**नारास्वप्सु गृहं यस्य तेन नारायणः स्मृतः।**' (महारा० ५२। ८८), '**नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥**' (महाभारत) यही बात श्रीमन्नारायणावतार भगवान् श्रीकृष्णजीने स्वीकार की है। यथा—'**सृष्ट्वा नारं तोयमन्तःस्थितोऽहं तेन मे नाम नारायणः।**' (महाभारत) पुनश्च '**महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः॥**' (वाल्मी० ७। १०४। ४), यह ब्रह्माजीका वाक्य है। वे कहते हैं कि महार्णवमें शयन करते समय आप (श्रीरामजी) ने मुझको उत्पन्न किया। अथवा, '**जीवनाराश्रयो योऽस्ति तेन नारायणोऽपि च॥**' (महारा० ५२। ८८) इस प्रमाणानुसार '**नार**'=जीव, **अयन**=आश्रय। जीवसमूहका आश्रय अर्थात् अन्तर्यामीरूपसे धारण होनेसे 'नारायण' नाम है। पुनः, (३) '**कृषिर्भूवाचकश्चैव णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैकां महाविद्ये कृष्ण इत्यभिधीयते।**' (महारा० ५२। ९१) इस प्रमाणानुसार '**कृ ष**' अवयव भूवाचक अर्थात् सत्ताबोधक है और 'ण' अवयव निर्वृतिवाचक है अर्थात् आनन्दबोधक है। ये दोनों अवयव एक होनेपर उनसे कृष्ण शब्द निष्पन्न होता है। अर्थात् सत्तासम्पादक होनेसे कृष्ण नाम है। पुनः, (४) '**सर्वे वसन्ति वै यस्मिन्सर्वस्मिन् वसतेऽपि वा। तमाहुर्वासुदेवं च योगिनस्तत्त्वदर्शिनः॥**' (महारा० ८९) इसके अनुसार सम्पूर्ण विश्वका निवास परमेश्वरमें होनेसे अथवा सम्पूर्ण विश्वमें वास होनेसे तत्त्वदर्शी योगी उनको 'वासुदेव' कहते हैं। पुनः, (५) '**कथ्यते स हरिर्नित्यं भक्तानां क्लेशनाशनः**' (महारा० ५२। ९२) के अनुसार भक्तोंके क्लेश हरण करनेसे 'हरि' नाम है। पुनः, (६) '**वायुवद्गगने पूर्णं जगतां हि प्रवर्तते। सर्वं पूर्णं निराकारं निर्गुणं ब्रह्म उच्यते।**' (महारा० ५२। ९३) इस प्रमाणसे पूरे आकाशमें जैसे वायु वैसे ही सम्पूर्ण जगत्में वर्तते हुए भी सर्वपूर्ण, निराकार और निर्गुण (अर्थात् सबके गुणोंसे अलग) होनेसे 'ब्रह्म' नाम है। पुनः, (७) '**भरणं पोषणं चैव विश्वम्भर इति स्मृतः**' अर्थात् विश्वका भरण-पोषण करनेसे 'विश्वम्भर' नाम है। (महारा० ५२। ९२) पुनः, (८) '**यस्यानन्तानि रूपाणि यस्य चान्तं न विद्यते। श्रुतयो यं न जानन्ति सोऽप्यनन्तोऽभिधीयते॥**' (९४) के प्रमाणसे प्रभुके रूप, गुणादि अनन्त होनेसे, उनका अन्त किसीके न पा सकनेसे, श्रुति भी उनको सांगोपांग नहीं जान सकती इत्यादि कारणोंसे 'अनन्त' नाम है। पुनः, (९) '**यो विराजस्तनुर्नित्यं विश्वरूपमथोच्यते।**' (महारा० ५२। ९५) अर्थात् विराट् विश्व उनका शरीर होनेसे 'विश्वरूप' कहे जाते हैं। (१०) इसी प्रकार चौंसठों कलाएँ उनमें स्थिर होनेसे 'कलानिधि' नाम है। इत्यादि सब नाम गुणार्थक हैं।

महारामायणमें शिवजी कहते हैं कि समस्त नामोंके वर्ण रामनाममय हैं अर्थात् रामशब्दजन्य हैं, अतएव रमु क्रीडा जनक 'राम' शब्द सब नामोंके ईश्वर हैं। यथा—'**रामनाममया सर्वे नामवर्णा प्रकीर्त्तिताः। अतएव रमु क्रीडा नाम्नामीशः प्रवर्त्तते॥**' (५२। १०२)

☞भगवान्के सभी नाम सच्चिदानन्दरूप हैं। तथापि 'राम' नाममें और अन्य नामोंसे कुछ विशेषता है। वह यह कि श्रीरामनामके तीनों पदों 'र, अ, म' में सच्चिदानन्दका अभिप्राय स्पष्ट झलकता है।

श्रीरामनाममें सच्चिदानन्दका अर्थ सत्य ही ज्यों-का-त्यों है, अन्य नामोंमें यथार्थतः 'सच्चिदानन्द' का अर्थ घटित नहीं होता। किसीमें 'सत् और आनन्द' मुख्य हैं, चित् गौण है; किसीमें 'सत्-चित्' मुख्य हैं, आनन्द गौण है और किसीमें चित्-आनन्द मुख्य हैं, सत् गौण है। प्रमाण—'**सच्चिदानन्दरूपैश्च त्रिभिरेभिः पृथक् पृथक्॥ वर्तते रामनामेदं सत्यं दृष्ट्वा महेश्वरि॥ नामान्येतान्यनेकानि मया प्रोक्तानि पार्वति॥ कस्मिंश्चिन्मुख्य आनन्दः सत्यं च गौणमुच्यते। कस्मिंश्चित् चित्सतौ मुख्यौ गौणं चानन्दमुच्यते॥**' (महारामायण ५२। ९७—९९) श्रीरामनामके तीन पदोंमें सत्, चित्, आनन्द तीनोंके अर्थका प्रमाण। यथा—'**चिद्वाचको रकारः स्यात्सद्वाच्योकार उच्यते। मकारानन्दवाची स्यात्सच्चिदानन्दमव्ययम्॥**' (महारामायण), अर्थात् रकार चित्का, अकार सत्का और मकार आनन्दका वाचक है, इस प्रकार 'राम' यह नाम सच्चिदानन्दमय है। (५२। ५३) नाम-नामीका तादात्म्य होनेसे रा० पू० ता० उप० की श्रुति, '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥**' (१।६) भी प्रमाण है; क्योंकि 'राम' पदका अर्थ ही यह श्रुति है।

(च) अन्तकालमें कोई शब्द जिसके अन्तमें 'राम' हो, उच्चारण करनेसे तुरन्त मुक्ति होनेके प्रमाण अनेक मिलते हैं। 'हराम', 'चराम', 'तराम' आदि कहकर लोग मुक्त हुए। इस प्रकारके नामाभासमात्रके प्रतापसे मुक्ति भगवान्के अन्य किसी नाममें नहीं सुनी जाती। 'नारायण' नामसे अजामिल यमदूतके बन्धनसे छूट गया, ज्ञानोदय हो गया, उसके पश्चात् तप आदिमें प्रवृत्त होनेपर उसकी मुक्ति हुई।

(छ) 'राम' नामका एक-एक अक्षर भी कोई-कोई जपते हैं। उसके एक-एक अक्षरका भारी महत्त्व है। रम् रम्, राम-राम आदि तो व्याकरणसे शुद्ध ही हैं, इनके जपनेकी कौन कहे उलटे नामकी महिमा 'मरा-मरा' जपनेके महत्त्वसे वाल्मीकिजी ब्रह्मसमान हो गये। ऐसा उदाहरण किसी अन्य भगवन्नाममें सुना नहीं जाता। किसी अन्य नामके समस्त वर्णोंकी पृथक्-पृथक् ऐसी महिमा नहीं गायी गयी है जैसी श्रीरामनामके प्रत्येक वर्ण ही नहीं बल्कि प्रत्येक कला और निर्वर्ण अक्षरोंकी।

(ज) प्रणव ॐ वेदोंका तत्त्व कहा गया है परन्तु अथर्वशिरस्की '**य इदमथर्वशिरो ब्राह्मणोऽधीते---- स प्रणवानामयुतं जपं भवति**' (उ०३। ७) यह श्रुति कहती है कि जिस ब्राह्मणने अथर्वशिरस् उपनिषद्का अध्ययन किया, वह दस हजार प्रणव जप चुका। इस श्रुतिके अनुसार प्रणवका महत्त्व अथर्वशिरस्से न्यून है। परन्तु राममन्त्रके लिये ऐसा न्यूनत्वद्योतक कोई वाक्य किसी श्रुतिमें नहीं मिलता। अपितु '**य एवं मन्त्रराजं श्रीरामचन्द्रषडक्षरं नित्यमधीते।---- तेनेतिहासपुराणानां रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि सफलानि भवन्ति---- प्रणवानामयुतकोटिजप्ता भवन्ति।**' (रा० उ० ता०) अर्थात् जो कोई श्रीराम षडक्षर मन्त्रराजका नित्य जप करता है वह करोड़ों बार इतिहास, पुराण और रुद्रपरक (अथर्वशिरस्) उपनिषदोंका अध्ययन कर चुका---- वह दस हजार करोड़ प्रणवका जप कर चुका। इस श्रुतिमें स्पष्टरूपसे राममन्त्रकी सर्वोत्कृष्टता बतायी गयी है।

(झ) प्रणवमें शूद्रोंका अधिकार न होनेसे प्रणव उन सबोंको अलभ्य है। प्रणव उन्हें कृतार्थ नहीं कर सकता। अतः इतने अंशमें प्रणवकी उत्कृष्टताका व्यर्थ होना सबको स्वीकार करना पड़ेगा। और प्रणवका कारणभूत रामनाम काशीमें मरनेवाले जन्तुमात्रको मोक्ष देता है। अतः प्राणिमात्रका इसमें अधिकार होनेसे यह सौलभ्यगुणमें भी सर्वश्रेष्ठ है।

(ञ) श्रीवसिष्ठजीने यह कहते हुए भी कि इनके अनेक नाम हैं फिर भी 'राम' ही नाम विचारकर रखा। यथा—'***करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा॥ इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥***' (१।१९७) इससे निस्सन्देह निश्चय है कि प्रभुके सब नामोंमें यही श्रेष्ठ नाम है। नारदजी, शिवजी इत्यादि मुनियों और देवताओंका भी यही सिद्धान्त है। यथा—'***जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥' 'राम सकल नामन्ह ते अधिका।---- राका रजनी भगति तव रामनाम सोड़ सोम। अपर नाम उडुगन बिमल बसहु भगत उर व्योम॥***' (आ० ४२) महारामायणमें

शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं कि जैसे देवताओंमें इन्द्र, मनुष्योंमें राजा, अखिल लोकोंके मध्य गोलोक, समस्त नदियोंमें श्रीसरयूजी, कविवृन्दोंमें अनन्त, भक्तोंमें श्रीहनुमान्‌जी, शक्तियोंमें श्रीजानकीजी, अवतारोंमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी, पर्वतोंमें सुमेरु, जलाशयोंमें सागर, गौओंमें कामधेनु, धनुर्धारियोंमें कामदेव, पक्षियोंमें गरुड़, तीर्थोंमें पुष्कर, धर्मोंमें अहिंसा, साधुत्वप्रतिपादनमें दया, क्षमावालोंमें पृथ्वी, मणियोंमें कौस्तुभ, धनुषोंमें शार्ङ्ग, खड्गोंमें नन्दक, ज्ञानोंमें ब्रह्मज्ञान, भक्तिमें प्रेमाभक्ति, मन्त्रसमूहमें प्रणव, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, सप्तपुरियोंमें अयोध्यापुरी, वेदविहित कर्मोंमें भगवत्सम्बन्धी कर्म, स्वरसंज्ञक वर्णोंमें अकार श्रेष्ठ है; वैसे ही भगवान्‌के समस्त नामोंमें श्रीरामनाम परम श्रेष्ठ है—'**निर्जराणां यथा शक्रो नराणां भूपतिर्यथा।**' से '**किमत्र बहुनोक्तेन सम्यग्भगवतः प्रिये। नाम्नामेव च सर्वेषां रामनाम परं महत्॥**' (५२। ७७ से ८५ तक) देवर्षि नारदजीने श्रीरामनामके सर्वश्रेष्ठ होनेका वरदान ही माँग लिया; अतएव सर्वश्रेष्ठ जानकर इसीकी वन्दना की।

(ट) यही नाम श्रीमहादेवजी एवं श्रीहनुमान्‌जीका सर्वस्व और जीवन है; ब्रह्मादिक देवताओंकी कौन कहे श्रीनारायणादि अवतार भी इस नामको जपते हैं, श्रीकृष्णभगवान्‌ने अर्जुनजीसे श्रीरामनामके महत्त्वको विस्तारसे वर्णन करते हुए यही कहा है कि हम श्रीरामनाम जापकके फलको नहीं कह सकते, हम उनको भजते और प्रणाम करते हैं। यथा—'**रामस्मरणमात्रेण प्राणान्मुंचन्ति ये नराः। फलं तेषां न पश्यामि भजामि तांश्च पार्थिव॥**', '**गायन्ति रामनामानि सततं ये जना भुवि। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यः पुनः पुनः॥**' इत्यादि वचन कहकर अर्जुनजीको श्रीरामनाम जपनेका उपदेश दिया और पुनः यह भी कहा कि हम भी 'राम' नाम जपते हैं। यथा—'**तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा। रामनामसदायुक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा॥**', '**रामनाम सदा प्रेम्णा संस्मरामि जगद्गुरुम्। क्षणं न विस्मृतिं याति सत्यं सत्यं वचो मम॥**' (आदिपुराण। 'श्रीसीतारामनामप्रतापप्रकाश' से उद्धृत) श्रीकृष्णभगवान्‌के श्रीमुखवचनसे भी और अधिक प्रमाण श्रीरामनामके सर्वोपरि होनेका क्या हो सकता है! श्रीरामचन्द्रजीका भी वचनामृत इस नामके महत्त्वपर है। यथा—'***मम गुनग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥***' (उ० ४६) वक्ता 'राम' हैं।

(ठ) सौलभ्य, उदारता, दयालुतादि गुण, जैसे इस नामके स्वरूपमें प्रकट हुए वैसे किसी और अवतारमें नहीं हुए। यथा—'***हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद-बड़ाई।***' (विनय० १६३)

(ड) और अवतार जिस कारणसे हुए वह कार्य करके शीघ्र ही लुप्त हो गये पर 'राम' रूपमें कार्य करके फिर भी हजारों वर्ष पृथ्वीपर रहकर प्रभुने जगत्‌को कृतार्थ किया, चक्रवर्ती महाराजा होकर सबकी मर्यादा रखते हुए जगत्‌का पालन किया।

(ढ) दाशरथी श्रीरामजी ही ग्रन्थकारके उपास्यदेव हैं, अतः श्रीरामनामकी वन्दना स्वाभाविक ही उन्होंने की और उनका दृढ़ विश्वास है कि यही नाम सर्वश्रेष्ठ है।

(ण) आगे नौ दोहोंमें सब रामनामकी विशेषता ही है।

☞यह नामवन्दनाप्रकरण है। इसमें रामनामकी महिमा नौ दोहोंमें गायी गयी है। जब किसीकी श्रेष्ठता दर्शानी होती है तो अवश्य प्रसंगवश कुछ दूसरोंकी न्यूनता कथनमें आ ही जाती है पर वह किसी बुरे भावसे नहीं होती। भगवान्‌के सभी नाम, सभी रूप सच्चिदानन्दरूप हैं, सभी चित्तके प्रकाशक हैं, सभी श्रेष्ठ हैं। अतः न्यूनाधिक्य वर्णनसे अन्य नामोंके उपासक मनमें कोई द्वेषभाव न समझें।

नोट—१ श्रीरामनामवन्दनाप्रकरण यहाँसे उठाकर कविने प्रथम तो नामकी वन्दना की। अब आगे नौ दोहोंमें नामके स्वरूप, अंग और फल कहेंगे। इसलिये इस प्रथम दोहेमें सूक्ष्म रीतिसे इन तीनोंको कहकर फिर आठ दोहोंमें इन्हींको विस्तारपूर्वक कहेंगे। '***हेतु कृसानु*****...**' यह नामका स्वरूप है।

'***हेतु कृसानु भानु हिमकर को***' इति। 'हेतु' के प्रधान दो अर्थ हैं, कारण (आदिकारण) और बीज। यथा—'**हेतुनां कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम्**' (अमरकोश १। ४। २८) मानसपरिचारिकाकारके मतानुसार

भूतकारण और बीजकारण, विशेष कारण और सामान्य कारण—ये कारणके भेद हैं। कारणके दो भेद निमित्त और उपादान भी हैं। जैसे, कुम्हार निमित्त है और मिट्टीके बरतनोंका उपादान कारण मिट्टी है; क्योंकि मिट्टी स्वयं कार्यरूपमें परिणत हो जाती है। इनके अतिरिक्त साधारण वा सहाय कारण भी कोई-कोई मानते हैं जैसे कुम्हारका चाक, डण्डा, जल आदि।

श्रीरामनामको अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका हेतु कहकर यह जनाया है कि इन तीनोंके कारण श्रीरामनाम हैं और ये तीनों कार्य हैं।

प्रथम चरण (पूर्वार्ध) में श्रीरामनामकी वन्दना करके उत्तरार्धमें इस महामन्त्रका अर्थ कहते हैं। ***'हेतु कृसानु भानु.....'*** इत्यादि 'राम' नामका अर्थ वा गुण है। श्रीरामनामको कृशानु आदिका हेतु कहकर जनाया कि—(क) अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा—ये तीनों तेजस्वी हैं। संसारमें परम ज्योतिष्मान् ये ही तीन हैं। इनके हेतु श्रीरामनाम हैं अर्थात् श्रीरामनामके तेजसे ही ये तीनों तेजस्वी हुए। नामके एक-एक अक्षरसे इन्होंने तेज पाया है। सम्पूर्ण नामका तेज किसीमें नहीं है। (पं० रामकुमारजी) श्रुतियोंने कहा है—'**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिः।**' (छां० ३। १३। ७) अर्थात् लोकपरलोक उभय विभूतिमें जो कुछ भी ज्योति है (कहीं भी जो कोई ज्योतिष्मान् हैं।) उन सबकी ज्योतिके कारण श्रीरामजी हैं। इसी तरह इस चौपाईमें इनका हेतु कहकर श्रीरामनामको परब्रह्म कहा। (वे० भू० रा० कु०)

(ख) कारणसे कार्यकी उत्पत्ति होती है। 'राम' नामसे इनकी उत्पत्ति है। यथा—'**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥**' (यजुर्वेद पुरुषसूक्त), ***'नयन दिवाकर कच घनमाला।..... आनन अनल..... ॥ अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।'*** (६। १५) (पं० रामकुमारजी)

नोट—नाम-नामीमें अभेद वा तत्त्वकारणके विचारसे ये प्रमाण दिये गये हैं।

(ग) बीजकारण कहनेका भाव यह है कि 'राम' नामके तीनों अक्षर (र, अ, म) क्रमशः इन तीनोंके बीजाक्षर हैं। 'र' अग्निबीज है, 'अ' भानुबीज है और 'म' चन्द्रबीज है। यथा—'**रकारोऽनलबीजं स्याद्ये सर्वे वाडवादयः। कृत्वा मनोमलं सर्वं भस्म कर्म शुभाशुभम्॥**', '**अकारो भानुबीजं स्याद्वेदशास्त्रप्रकाशकम्। नाशयत्येव सद्दीप्त्या याऽविद्या हृदये तमः॥**', '**मकारश्चन्द्रबीजं च पीयूषपरिपूर्णकम्। त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्वं करोति च॥**' (महारामायण ५२। ६२, ६३, ६४) अर्थात् 'र' अग्निबीज है। जैसे अग्नि शुभाशुभ वस्तुओंको जलाकर भस्म कर देता है और कुल वस्तुओंका मल तथा दोष जलाकर उनको शुद्ध बना देता है, वैसे ही 'र' के उच्चारणसे भी दो कार्य यहाँ कहे, एक यह कि उसके उच्चारणसे शुभाशुभ कर्म नष्ट होते हैं जिसका फल स्वर्ग-नरकका अभाव है, दूसरे यह कि मनके मल-विषयवासनाओंका नाश हो जाता है, स्वस्वरूप झलक पड़ता है। यहाँ कार्यसे कारणमें विशेषता दिखायी। अग्निसे जो कार्य नहीं हो सकता वह भी उसके बीजसे हो जाता है। 'अ' भानुबीज है, वेदशास्त्रोंका प्रकाशक है। जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करता है, वैसे ही 'अ' से हृदयमें मोह आदि जो अविद्यातम है, उसका नाश (होकर ज्ञानका प्रकाश) होता है। 'म' चन्द्रबीज है, अमृतसे परिपूर्ण है। जैसे चन्द्रमा शरदातपको हरता है, शीतल करता है वैसे ही 'म' से (भक्ति उत्पन्न होती है जिससे) त्रिताप दूर होते हैं, हृदयमें शीतलतारूपी तृप्ति प्राप्त होती है। जो गुण इस श्लोकमें कहे गये हैं उनसे यह सारांश निकलता है कि 'र', 'अ', 'म' क्रमशः वैराग्य, ज्ञान और भक्तिके उत्पादक हैं। प्रमाण यथा—'**रकारहेतुर्वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते। अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्तिहेतुकम्॥**' (महारामायण) इस प्रकार इस चौपाईका तात्पर्य यह है कि मनोमल तथा शुभाशुभ कर्मोंका भस्म होना, वैराग्य, वेदशास्त्रादिमें प्रवेश, अज्ञाननाश, ज्ञानप्राप्ति, भक्ति तथा त्रितापशान्ति इत्यादि सब श्रीरामनामसे ही प्राप्त हो जाते हैं। अतः इन सब वस्तुओंकी चाह रखनेवालोंको श्रीरामनामका जप करना चाहिये। श्रीमद्गोस्वामीजीने 'राम' नाममें अग्नि, सूर्य

और चन्द्रमाकी क्रियाओं और गुणोंका लक्ष्य इस ग्रन्थमें भी दिया है। अग्निका गुण, यथा—*'जासु नाम पावक अघ तूला'* (२। २४८) सूर्यका गुण, यथा—*'जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा'* (१। ११६) चन्द्रमाका गुण, यथा—*'राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम।'* (३। ४२) (रा० प्र०, पां०, मा० प्र०, वै०, करु०)

(घ) अग्निका प्रकाश दोनों संध्याओंमें; सूर्यका प्रकाश दिनमें और चन्द्रमाका प्रकाश रात्रिमें होता है (एक-एक अक्षरके प्रतापसे) और रामनामका प्रकाश सदा रहता है। यह भाव तीनों बीजोंसे जनाया (रा० प०) ऊपर (ग), (घ) से यह निष्कर्ष निकला कि 'राम' नामके एक-एक अक्षर भी इन तीनोंसे विशेष हैं, तब पूरे 'राम' नामकी महिमा क्या कही जाय? पुनः ये तीनों केवल सांसारिक सुख देते हैं और 'राम' नामके वर्ण इहलोक और परलोक दोनों बना देते हैं। वैराग्य, ज्ञान और भक्ति देनेकी शक्ति कार्यमें नहीं है।

(ङ) पं० श्रीकान्तशरणजीने *'हेतु कृसानु.....'* पर एक भाव यह लिखा है कि 'श्रीरामनाम अग्नि आदि तीनोंका कारण है, मूल है और जिह्वापर इन्हीं तीनोंका निवास भी है। यथा—**'जिह्वामूले स्थितो देवः सर्वतेजोमयोऽनलः। तदग्रे भास्करश्चन्द्रस्तालुमध्ये प्रतिष्ठितः॥'** (योगी याज्ञवल्क्य) अतः जिह्वासे इन तीनों वर्णात्मक श्रीरामनामके जपनेसे अपने-अपने मूलकी प्रकाशप्राप्तिसे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाद्वारा होनेवाले उपर्युक्त वैराग्य, ज्ञान और भक्तिका पूर्ण विकास होता है, तब वैराग्यद्वारा अन्तःकरणशुद्धिसे कर्मदोष, ज्ञानद्वारा गुणातीत होनेसे गुणदोष और भक्तिद्वारा कालदोष निवृत्त होता है।'

रेखांकित अंशपर यह शंका होती है कि 'क्या सामान्य अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके द्वारा वैराग्य, ज्ञान और भक्ति उत्पन्न होती है?' जिस प्रमाण **'रकारहेतुर्वैराग्यं.....'** के आधारपर यह कहा जा रहा है उसके अनुसार तो 'र, अ, म' ही वैराग्यादिके उत्पादक हैं, न कि अग्नि आदि। यदि अग्नि आदि वैराग्यादिके कारण नहीं हैं, तब और जो कुछ इसके आधारपर लिखा गया, वह सब विचारणीय ही है। हाँ ! योगी याज्ञवल्क्यके वचनके आधारपर एक भाव यह हो सकता है कि जिह्वापर जब कि इन देवताओंकी स्थिति है तब अन्य नामोंकी अपेक्षा ये तीनों देवता अपने बीजरूपी इस नामके उच्चारणमें अवश्य ही साहाय्य होंगे। योगी याज्ञवल्क्य नामकी दो-तीन पुस्तकें हमारे देखनेमें आयीं। उनमें यह श्लोक नहीं है।

(च) 'राम' नामको बीजकारण कहनेपर यह शंका हो सकती है कि 'जैसे बीज वृक्षको उत्पन्न करके वृक्षमें लीन हो जाता है, मूसाकर्णी बूटी आदि ताँबेको सोना करके उसीमें लीन हो जाती है, मिट्टी घट बनाकर तद्रूप हो जाती है। बीजकी अलग सत्ता नहीं रह जाती, वह कार्यमें लीन हो जाता है। इसी तरह 'र', 'अ', 'म' कृशानु आदिको उत्पन्न करके उसीमें लीन हो गये, तब 'राम' नामकी वन्दना कैसे होगी, उसकी तो अलग सत्ता ही नहीं रह गयी? वन्दना तो अब होनी चाहिये *'कृसानु भानु हिमकर'* की?' तो इसका समाधान यह है कि कारण भी दो प्रकारका है, एक विशेष, दूसरा सामान्य। सामान्य कारण कार्यमें लीन हो जाता है, जैसे बीज वृक्षको उत्पन्न कर उसीमें लीन हो जाता है, इत्यादि। विशेष कारण अनेक कार्य उत्पन्न करके भी अपने कार्योंसे सर्वथा अलग एवं पूर्ण ज्यों-का-त्यों बना रहता है, जैसे पारस अनेकों लोहोंको सोना बनाकर फिर भी ज्यों-का-त्यों बना रहता है; माता-पिता अनेकों सन्तानें उत्पन्न कर उनसे सर्वथा पृथक् रहते हैं इत्यादि। इसी प्रकार श्रीरामनाम विशेष कारण हैं, अनेकों अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदिकी क्या, अनन्त ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करके भी स्वयं ज्यों-के-त्यों पूर्ण एवं सर्वथा अलग बने रहते हैं। (करुणासिन्धुजी, मा० प्र०) अथवा कारणके दो भेद हैं—निमित्त कारण और उपादान कारण। श्रीरामनाम निमित्त कारण हैं। जैसे कुम्हार मृत्तिकाके अनेक पात्र बनाकर उनसे अलग रहता है, उसकी सत्ता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है, वैसे ही श्रीरामनामको समझिये।

(छ) भूतकारण कहनेका भाव यह है कि 'राम' नामके अक्षर 'र', अ, म' जो कृशानु आदिके बीज अक्षर हैं यदि उनमेंसे निकाल डाले जायँ तो ये निरर्थक हो जायँगे। अर्थात् कृशानुमेंसे 'रकार' जो बीजरूपसे उसके भीतर है, भानुमेंसे 'अकार' और हिमकरमेंसे 'मकार' निकाल लें तो 'कशानु', 'भनु' और 'हिकर' रह जाते हैं। भाव यह है कि जैसे र, अ, म के बिना कृशानु आदिका शुद्धोच्चारण नहीं हो सकता वैसे ही 'र' के बिना अग्निमें दाहकशक्ति, 'अ' बिना भानुमें प्रकाशकी शक्ति और 'म' बिना हिमकरमें त्रितापहरणकी शक्ति नहीं रह सकती। तीनोंमें यह शक्ति रामनामसे ही है (मा० प्र०, रा० प्र०, पां०, रा० बा० दा०)*।

नोट—२ श्रीरामनामको संसारके परम तेजस्वी, परम हितकारी आदि इन तीनों वस्तुओंका कारण कहकर 'नाम' की शक्ति और महत्त्वका किंचित् परिचय दिया है। कार्यके द्वारा कारणका गुण दिखाया है। तीनों कार्योंका बल कैसा है सो सुनिये। अग्निका बल, यथा—***'काह न पावकु जारि सक।'*** (२। ४७), सूर्यका बल, यथा—***'उयेउ भानु बिनु श्रम तम नासा।'*** (१। २३९) चन्द्रमाका बल, यथा—***'सरदातप निसि ससि अपहरई।'*** (४। १७) पुनः, अग्नि आदि तीनों जगत्का पोषण करते हैं। अग्नि भोजनको पकाता, जठराग्नि भोजन पचाकर शरीरको पुष्ट करता, शीतसे बचाता, यज्ञादिद्वारा देवोंका पालन करता है इत्यादि। सूर्य तमनिवारणद्वारा संसारकी रक्षा, कर्मकाण्डमात्रकी रक्षा, जलशोषण एवं मेघद्वारा संसारको जल देकर, अन्न, औषध आदि उपजाकर प्राणिमात्रका पोषण करता है, अनेक रोगोंका नाश करता है इत्यादि। चन्द्रमा अमियमय किरणोंसे ओषधियों आदिको पुष्ट और कामके योग्य बनाता है, शरदातप हरता है इत्यादि। सूर्य और चन्द्रके बिना जगत्का पोषण असम्भव है। यथा—***'जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन।'*** (१। २०) अस्तु। जब कार्यमें ऐसे गुण हैं कि बिना उनके सृष्टिमें जीवन असम्भव है तब तो फिर कारणका प्रताप न जाने कितना होगा!

नोट—३ इनका कारण कहकर रामनामको सूर्यसे अनन्तगुणा तेजस्वी, चन्द्रमासे अनन्तगुणा अमृतस्रावी एवं तापहारक और अग्निसमान सबको अत्यन्त सुलभ जनाया। पुनः यह भी सूचित किया कि कृशानु आदि तीनोंका व्रत, तीनोंकी उपासना एक साथ ही केवल रामनामकी उपासनासे पूरी हो जाती है। रामनामोच्चारणसे ही इन सबोंकी सेवा-पूजाका फल प्राप्त हो जाता है। अतः इसीमें लग जाना उचित है।

नोट—४ बाबा जानकीदासजी यह प्रश्न उठाकर कि 'रामनामका इतना बड़ा विशेषण देकर वन्दना करनेमें क्या हेतु है?' उसका उत्तर यह देते हैं कि—(क) गोस्वामीजी तुरत शुद्धि चाहते हैं पर तुरत शुद्धि न तो ज्ञान, वैराग्य, योगसे और न भक्तिसे हो सकती है और बिना शुद्धि श्रीरामचरित-गान करना असम्भव है। तब उन्होंने विचार किया कि रामनामके कार्य अग्नि आदिमें जब इतने गुण हैं तब स्वयं रामनाममें न जाने कितना गुण और महत्त्व होगा। रामनाम हमारे शुभाशुभ कर्मोंको जलाकर हमारे मन और मतिको रामचरित गाने योग्य तुरत बना देगा। यह सोचकर उन्होंने 'राम' नामकी इन विशेषणोंद्वारा वन्दना की। इसपर यह शंका होती है कि 'यह काम तो 'र' से ही हो जाता है, 'अ', 'म' की वन्दनाका प्रयोजन ही क्या रह गया?' समाधान यह है कि अग्निमें थोड़ा प्रकाश होता है। 'र' से शुभाशुभ कर्म भस्म हुए, स्वस्वरूप, परस्वरूप झलक पड़ा, उसे भले ही ध्यान किया करें पर रामचरित बिना पूर्ण प्रकाशके नहीं सूझ पड़ता। भानुबीज 'अ' से अविद्यारूपी रात्रि हटेगी तब वेदशास्त्रका यथार्थ तत्त्व देख पड़ेगा तब रामचरित (जो श्रुतिसिद्धान्तका निचोड़ है) अग्नि और वैराग्यकी एक क्रिया है। 'र' वैराग्यका कारण है। सूर्य और ज्ञानकी एक क्रिया है। 'अ' ज्ञानका कारण है। जैसे अग्नि और सूर्यमें उष्णता है वैसे

---

* मा० प्र० कारने 'हेतु' का एक अर्थ 'प्रिय' भी लेकर उत्तरार्धका अर्थ यह किया है कि 'हिमकर' (=जो हिम अर्थात् जाड़ाको करे= अगहन, पौष मास) को अग्नि और सूर्य बहुत प्रिय हैं वैसे ही अहं—ममरूप अगहन-पौषमें जडतारूपी जाड़ा लग रहा है उसमें रामनामरूपी कृशानु भानु जडता हरण करता है अतः प्रिय है।

ही वैराग्य और ज्ञानमें 'अहंता' रूपी उष्णता है। अहंकार रहेगा तब चरित कैसे सूझेगा? अहंकारको भक्ति शान्त कर देती है। चन्द्र और भक्तिका एक-सा कर्म है। 'म' भक्तिका कारण है। अतः 'र, अ, म' तीनोंकी वन्दना की। इसपर पुनः शंका होती है कि चन्द्रमाके प्रकाशमें तो सूर्यका अभाव है वैसे ही 'म' के उदयमें 'अ' का अभाव होगा? नहीं, दृष्टान्तका एक देश ही लिया जायगा। पुनः, जैसे चन्द्रमणिको अग्नि वा सूर्यके सामने रखनेसे प्रकाश तो वैसा ही बना रहता है पर उष्णता हरण हो जाती है। वैसे ही 'र, अ, म' कारण और वैराग्य, ज्ञान, भक्ति एक साथ बने रहते हैं। अथवा, (ख) यद्यपि 'रकार' की ही वन्दनासे शुभाशुभ कर्म भस्म हो गये तथापि रामभक्त पूरा नाम ही जपते हैं, जिससे पराभक्तिको प्राप्त कर सामीप्य पाते हैं। प्रमाण यथा—'**रकारो योगिनां ध्येयो गच्छन्ति परमं पदम्। अकारो ज्ञानिनां ध्येयस्ते सर्वे मोक्षरूपिणः॥**''**पूर्णनाम मुदा दासा ध्यायन्त्यचलमानसाः। प्राप्नुवन्ति परां भक्तिं श्रीरामस्य समीपकम्॥**' (महारामायण ५२। ६९-७०)

बिधिहरिहरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुननिधान सो॥ २॥

शब्दार्थ—**अगुन** (अगुण)=मायिक गुणोंसे रहित। =सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंसे परे। **अनूपम**=उपमा-रहित, जिसकी कोई उपमा है ही नहीं। **गुननिधान**=भक्तवात्सल्य, कृपा, शरणागतपालकत्व, करुणा, कारणरहित कृपालुता आदि दिव्य गुणोंके खजाना वा समुद्र। **सो**=वह।=सदृश, समान।

नोट—इस अर्धालीके अर्थ कई प्रकारसे होते हैं।

अर्थ—१ वह (श्रीरामनाम) विधिहरिहरमय हैं, वेदोंके प्राण हैं, मायिक गुणोंसे परे, उपमारहित और दिव्य गुणोंके निधान हैं॥ २॥

अर्थ—२ 'वह श्रीरामनाम विधिहरिहरमय वेदके भी प्राण हैं।' (श्रीरूपकलाजी)

अर्थ—३ 'श्रीरामनाम वेदप्राण (ओंकार) के समान ही विधिहरिहरमय हैं और तीनों गुणोंसे परे, (अर्थात् मायासे परे) हैं और अनुपम गुणोंके खजाना हैं।' (लाला भगवानदीनजी)

अर्थ—४ श्रीरामनाम विधिहरिहरमय हैं, वेदप्राण (प्रणव) के समान हैं·····। (पं० रामकुमारजी)

अर्थ—५ (उत्तरार्धका अर्थ पं० शिवलाल पाठकजी यह करते हैं) 'अगुण (ब्रह्म), अनुपम (जीव) और गुणनिधान (माया) तद्रूप है।'

नोट—'***बिधिहरिहरमय***' इति। 'मय' तद्धितका एक प्रत्यय है जो तद्रूप, विकार और प्राचुर्य अर्थमें शब्दोंके साथ लगाया जाता है। उदाहरण—(१) तद्रूप—'***सियाराममय सब जग जानी***'। (२) विकार—'***अमिय मूरिमय चूरन चारू***'। (३) प्राचुर्य—'***मुदमंगलमय संत समाजू***।' (श० सा०)

श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामनामके सम्बन्धमें 'मय' पद दोहावलीमें भी दिया है। यथा—'***जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास। राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास॥***' (दोहा २९) इस दोहेको 'मय' के अर्थके लिये प्रमाण मानकर '***बिधिहरिहरमय***'का आशय यह होता है कि—(१) श्रीरामनाम ही मानो विधिहरिहररूप हैं कि जिनसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, श्रीरामनामहीसे त्रिदेवमें यह शक्तियाँ हैं (जैसे बीज बिना पृथ्वीके वृक्ष, अन्न इत्यादि उत्पन्न नहीं कर सकता)। प्रमाण यथा—'**रामनामप्रभावेण स्वयंभूः सृजते जगत्। बिभर्ति सकलं विष्णुः शिवः संहरते पुनः॥**' (महाशम्भुसंहिता) (२) जैसे आकाशमें अगणित तारागण स्थित हैं; कितने हैं कोई जान नहीं सकता; वैसे ही रामनाममें अगणित ब्रह्माण्ड एवं अगणित ब्रह्मा-विष्णु-शिव स्थित हैं, श्रीरामनामके अंशहीसे सब उत्पन्न होते हैं, मानो श्रीरामनाम इन सबोंसे परिपूर्ण हैं यथा—'**रामनामांशतो याता ब्रह्माण्डाः कोटि कोटिशः।**' (पद्मपुराण) 'राम' नामके केवल 'र' से त्रिदेवकी उत्पत्ति है। यथा—'**रकाराज्जायते ब्रह्मा रकाराज्जायते हरिः। रकाराज्जायते शम्भू रकारात्सर्वशक्तयः।**' (पुलहसंहिता) '***अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयम्।***' (१। ८५) में भी 'मय' इसी (अर्थात् परिपूर्णके) भावमें आया है। पं० रामकुमारजी भी लिखते हैं कि 'रामनाम ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति-पालन-संहारके लिये ब्रह्मा-विष्णु-महेशको उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार नामहीसे समस्त ब्रह्माण्डके

व्यवहार होते हैं।' (३) जैसे रामनाम जपनेसे सब धर्म और धर्मफल प्राप्त होते हैं, वैसे ही विधिहरिहरकी सेवासे जो फल प्राप्त होते हैं, वे केवल श्रीरामनामहीके जपसे प्राप्त हो जाते हैं और त्रिदेव भी स्वयं जापकके पास आ प्राप्त होते हैं, जैसे श्रीमनु-शतरूपाजीने नामसुमिरनहीसे तप प्रारम्भ किया तो त्रिदेव बारम्बार उनके पास आये कि वर माँगो। पुनः, (४) करुणासिन्धुजी लिखते हैं कि 'मय' दो प्रकारका होता है, एक तादात्मक, दूसरा बाहुल्यमय (जिसे 'मानस-परिचारिका' में प्रचुरात्मक कहा है)। गुण और स्वरूपकी जब एकता होती है तब उसे तादात्मक कहते हैं। जैसे, सेना मनुष्यमय है, गाँव घरमय है, पट सूत्रमय है, लवण खारमय है, घट मृत्तिकामय है, कण्ठा स्वर्णमय है इत्यादि। जब गुण और स्वरूप भिन्न होते हैं तब बाहुल्यमय वा प्रचुरात्मक कहते हैं, जैसे मणि द्रव्य-अन्न-गज-वाजि-वस्त्रादिमय है। यथा—*'असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे।'* (विनय० १२४) अर्थात् मणि बहुमूल्य होनेके कारण उससे द्रव्य अन्नादिक प्राप्त हो सकते हैं मानो ये सब वस्तुएँ मणिमें स्थित हैं; पण्डित विद्यामय, सन्त दिव्यगुणमय इत्यादि। जब विधिहरिहर गुणोंसे परे शुद्धरूप हैं तब श्रीरामनाम विधिहरिहरतदात्मकमय हैं और जब गुणोंको धारण करके सृष्टि रचते हैं तब प्रचुरात्मकमय हैं। 'रामनाम' में अनेक ब्रह्माण्ड हैं, प्रति ब्रह्माण्डमें विधिहरिहर हैं। इसलिये मणिद्रव्यादिमयके अनुसार श्रीरामनामको 'विधिहरिहर' बाहुल्यमय कहा। (५) पं० रामकुमारजी 'विधिहरिहरमय' के भावपर यह श्लोक देते हैं—**'रुद्रोऽग्निरुच्यते रेफो विष्णुः सोमो म उच्यते। तयोर्मध्ये गतो ब्रह्मा आकारो रविरुच्यते॥ रश्च रामेऽनिले वह्नौ रश्च रुद्रे प्रकीर्त्तितः। आकारस्तु पितामहो मश्च विष्णौ प्रकीर्त्तितः।'** (एकाक्षर १-२) अर्थात् रुद्र और अग्नि रेफसे, विष्णु और सोम मकारसे और ब्रह्मा तथा सूर्य मध्यके आकारसे उत्पन्न होते हैं ।१। रकारसे राम, पवन, अग्नि और रुद्रका ग्रहण होता है। आकारसे पितामह (ब्रह्मा) और मकारसे विष्णुका ग्रहण होता है।

नोट—१ त्रिदेव त्रिगुणसे उत्पन्न हैं और तीनों गुण धारण किये हैं। रामनाम विधिहरिहरमय हैं। इससे यह शंका होती है कि 'रामनाम' भी त्रिगुणमय हैं। इसीलिये उत्तरार्धमें कहते हैं कि ये अगुण हैं, सबके कारण होते हुए भी सबसे पृथक् हैं, तीनों गुणोंसे परे हैं। (पं० रा० कु०)

'वेद प्रान सो' इति। (१) **प्रान**=सार, तत्त्व, आत्मा। श्रीरामनाम वेदके सार, तत्त्व, आत्मा हैं। यथा—*'एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥'* (१।१०), *'धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥'* (१।१९८), **'त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परात्परः॥' 'सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।' 'संस्कारास्त्वभवन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना।'** (वाल्मीकीय युद्धकाण्ड सर्ग ११७ श्लोक १९, १८, २५। चतुर्वेदीके संस्करणमें यह सर्ग १२० है)

(२) करुणासिन्धुजी 'रामनाम' को 'वेदप्राण' कहनेका भाव यह कहते हैं कि 'जैसे शरीरमें प्राण न रहनेसे शरीर बेकार हो जाता है, वैसे ही वेदकी कोई ऋचा, सूत्र, मन्त्रादिकी स्थिति बिना रामनामके पंचपदार्थ (रेफ, रेफका आकार, दीर्घाकार, हल् मकार, मकारका अकार) के हो ही नहीं सकती; क्योंकि सब स्वर-वर्णादि श्रीरामनामहीसे उत्पन्न हुए हैं, यथा—**'वेदे व्याकरणे चैव ये च वर्णाः स्वराः स्मृताः। रामनाम्नैव ते सर्वे जाता नैवात्र संशयः॥'** (महारामायण)

(३) पुनः यों भी कहते हैं कि प्रणव (ओम्) वेदका प्राण है और ओम् श्रीरामनामके अंशसे सिद्ध होता है। यथा—**'रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः। रूपं तत्त्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधिकारिणः॥'** अतएव रामनाम वेदके प्राण हुए। श्रीरामतापिनीकी **'जीवत्वेनेदमो यस्य'** इस श्रुतिमें प्रणवकी उत्पत्ति वह्निबीजसे स्पष्टतः पायी जाती है। जैसे अग्निसे तपाये हुए पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति होती है वैसे ही वह्निबीजद्वारा व्याहृतियों (**भूर्भुवः स्वः**) से प्रणवका आविष्कार होनेसे प्रणव इनका कार्य सिद्ध हो गया। (रा० ता० भाष्य)

नोट—२ 'श्रीरामनाम' षट् पदार्थ (र, रकारका अकार आ म मकारका अकार नाद) युक्त हैं, इनसे व्याकरणकी रीतिसे प्रणव सिद्ध होता है, संस्कृत व्याकरणके जाननेवाले प्रमाणसे समझ सकते हैं। प्रमाण यथा—**'रामनाम महाविद्या षड्भिर्वस्तुभिरावृतम्। ब्रह्मजीवमहानादैस्त्रिभिरन्यद्ददामि ते॥ स्वरेण बिन्दुना चैव**

दिव्यया मायया‌पि च। पृथक्त्वेन विभागेन साम्प्रतं शृणु पार्वति॥ परब्रह्ममयो रेफो जीवोकारश्च मस्य यः। रस्याकारो महानादो रायादीर्घस्वरात्मिका॥ मकारो व्यञ्जनं बिन्दुर्हेतुः प्रणवमाययोः। अर्द्धभागादुकारः स्यादकारान्नादरूपिणः॥ रकारो गुरुराकारस्तथा वर्णविपर्ययः। मकारं व्यञ्जनं चैव प्रणवं चाभिधीयते॥ मस्या सवर्णितं मत्वा प्रणवे नादरूपधृक्। अन्तर्भूतो भवेद्रेफः प्रणवे सिद्धिरूपिणी॥' (महारामायण श्रीशिववाक्य २९—३४)

वे० भू०—व्याकरणके नियमसे '**वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ**' अर्थात् आगम, विपर्यय (निर्देश), विकार और नाश (लोप) ये चार क्रियाएँ वर्णोंकी होती हैं। महर्षि पाणिनिने इसीलिये '**उणादयो बहुलम्**।'(३।३।१) सूत्र लिखा है। इससे '**संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे। कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु।**' अर्थात् नामोंमें अनुकूल धातु, उसके आगेके प्रत्यय आदि और उसके आगम, लोप आदि कार्यके अनुरूप किये जाते हैं। उणादिका यह शास्त्र है। इन नियमोंके कारण 'राम' शब्दसे 'ओम्' की निष्पत्तिके लिये जब 'राम' शब्दका वर्णच्छेद किया जायगा तो उसकी स्थिति होगी र् अ अ म् अ। इसके वर्ण-विपर्यय कर देनेसे अ अर् अ म् यह स्थिति होगी। '**अतो रोरप्लुतादप्लुते**।'(६। १। ११३) इस सूत्रसे 'र्' का 'उ' विकार होगा। और '**अकः सवर्णे दीर्घः**।' (६।१।१०१) इस सूत्रसे 'उकार' के प्रथमके दोनों 'अकार' का दीर्घ 'आ' होकर '**आद्गुणः**।'(६।१।८७) इस सूत्रसे 'आ' और 'उ' दोनोंका विकार 'ओ' होकर '**एङः पदान्तादति**।'(५। १। १०९) सूत्रसे अवशिष्ट 'अ' का पूर्वरूप नाश होकर 'ओम्' निष्पन्न होगा। स्मरण रहे कि जिस प्रकार व्याकरण-शास्त्रके द्वारा 'राम' से 'ओम्' उत्पन्न होता है उस तरह 'ओम्' से 'राम' बननेकी कोई भी विधि व्याकरण नहीं प्रकट करता।

पं० शिवलाल पाठकजी कहते हैं कि प्रणव रामनामकी पंचकलाके संयोगसे बना है, क्योंकि प्रणवमें तारक, दण्डक, कुण्डल, अर्द्धचन्द्र और बिन्दु—ये पाँच कलाएँ हैं और 'राम' में रेफ भी है। यथा—***'बंदउँ श्री दोऊ वरण तुलसी जीवनमूर। लसे रसे एक एक के तार तार दोउ पूर॥ रवि आसा जो अतल से सो त्रयतारक राज। तुलसी दक्षिण दण्ड ह्वै बायें कुण्डल भ्राज॥ अर्ध चन्द्र ताके परे अमीकुण्ड पर पार। सप्त सूत्र शर ब्रह्म ए तुलसी जीवनसार।'*** (श्रीरामनामकलाकोष-मणिमयूख) (मा० म०)

पं० श्रीकान्तशरणजी 'राम' से 'ओम्' की सिद्धिके प्रकार यह देते हैं;—(१) 'जैसे 'राम' इस पदमें 'र, अ, अ, म्, अ' ये पाँच अक्षर हैं, उनमें वर्णविपर्यय करनेपर 'अ, र, अ, म्, अ' होता है, उसमें '**अतो रोरप्लुतादप्लुते**' (पा० ६।१।११३) इस सूत्रसे '**र**' का '**उ**' हुआ और '**आद्गुणः**' (पा० ६। १। ८७) सूत्रसे 'अ, उ' के स्थानमें 'ओ' हुआ, और '**एङः पदान्तादति**' (६। १। १०९) से द्वितीय 'अ' का पूर्वरूप और अन्तिम 'अ' का पृषोदरादित्वसे वर्णनाश होकर 'ओम्' बनता है।

(२) अथवा 'राम' शब्दकी प्रकृतिभूत '**रमु**' धातुमें वर्णविपर्यय मानकर पूर्वोक्त '**अतोरो**----' से 'र' से 'उत्व' और उपर्युक्त '**आद्गुणः**' से 'ओत्व' करनेपर 'ओम्' बनता है।'

उपर्युक्त दूसरे प्रकार (अर्थात् **रम्** धातुसे ओम्की उत्पत्ति सिद्ध करने) में लाघव-सा जान पड़ता है। परन्तु यह किस प्रमाणके आधारपर लिखा गया है, यह नहीं बताया गया। महारामायणमें एवं श्रीसीतारामनाम-प्रतापप्रकाशमें 'राम' नामसे प्रणवकी उत्पत्तिके प्रमाण पाये जाते हैं। इन्हीं प्रमाणोंके आधारपर (ऊपर दिये हुए चार प्रकारोंमेंसे) प्रथम, तृतीय और चतुर्थ प्रकारसे उसकी सिद्धि दिखायी गयी। इस प्रमाणसे **रमु** धातुसे प्रणवकी सिद्धि मानना उचित नहीं है। वैयाकरणोंसे धातुके विषयमें यह मालूम हुआ है कि केवल धातु (जबतक उससे ***'तिङादि'*** कोई प्रत्यय नहीं किया जाता) का व्यवहार कभी नहीं होता। क्योंकि यद्यपि '**रमु क्रीडायाम्**' ऐसा लिखा है तथापि जबतक उससे कोई प्रत्यय नहीं किया जाता तबतक उसका कोई अर्थ नहीं होता। अतः ऐसे वर्णसमुदायसे सार्थक प्रणवकी उत्पत्ति मानना कहाँतक उचित होगा? हाँ! यदि कोई प्रमाण मिले तो माननीय होगा।

वे० भू० पं० रामकुमारदासजीके प्रकारसे पं० श्रीकान्तशरणजीके प्रकारमें कुछ भेद देखकर मुझे इन सूत्रों आदिको व्याकरणाचार्योंसे समझनेकी आवश्यकता हुई। पण्डितोंके द्वारा जो मैं समझा हूँ वह

यहाँ लिखता हूँ। (क) '**एङः पदान्तादति**' सूत्र वहीं लागू होता है जहाँ पदान्तमें 'ए' या 'ओ' होते हैं। प्रथम प्रकारमें केवल एक 'अ' और 'र' का परिवर्तन हुआ है। यद्यपि दो 'अ' के परिवर्तनकी अपेक्षा इसमें लाघव-सा जान पड़ता है परन्तु आगे 'र' का 'उ' और गुणसे 'ओ' हो जानेपर यहाँ '**एङः पदान्तादति**' लगाया गया है; परन्तु 'ओ' पदान्त न होनेसे यह सूत्र यहाँ नहीं लग सकता। अतः इससे 'ओम्' की सिद्धि नहीं होती। अतः तीसरा प्रकार इससे कुछ ठीक जान पड़ता है; क्योंकि वहाँ दो 'अ', 'र' के प्रथम परिवर्तित किये गये हैं; अतः वहाँ '**एङः पदान्तादति**' की आवश्यकता नहीं पड़ी। (ख) '**अतो रोरप्लुतादप्लुते**' सूत्रसे दोनों प्रकारोंमें 'र' व 'र्' का 'उ' किया गया है परन्तु यह सूत्र यहाँ नहीं लगता। जहाँ '**ससजुषो रुः**' आदि सूत्रोंसे रु आदेश (अक्षर-परिवर्तन) होता है उसी 'रु' के 'र' का 'उ' होता है। यहाँका 'र' वा 'र्' 'रु' का नहीं है; वह तो **रमु** धातुका है। अतः यह सूत्र यहाँ नहीं लगता।

पं० श्रीकान्तशरणजीके प्रथम प्रकारमें एक बड़ी भारी त्रुटि यह भी है कि उसमें 'राम' नामके खण्डोंमें प्रथम खण्ड 'र' अर्थात् अकारयुक्त रेफ है और उसीका विपर्यय और उत्व किया गया है। परन्तु उत्व तो केवल रेफका होता है।

नोट—३ (क) महारामायणके उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार श्रीरामनामकी छः कलाएँ ये हैं। र् अ आ म् अ नाद। प्रणवकी सिद्धि करनेमें इसके अनुसार ही पाँचों खण्ड लेना प्रामाणिक होगा। यद्यपि 'राम' नाममें पूर्वाचार्योंने पाँच या छः कलाएँ मानी हैं तथापि 'राम' से 'ओम्' की सिद्धि करते समय यह आवश्यक नहीं है कि उसके सब खण्ड अलग-अलग किये जायँ। जितने वर्ण देखनेमें आते हैं (र्, अ, म्, अ) इतने खण्डोंसे ही हमारा काम चल जाता है, अतः उतने ही खण्ड करना उचित है। ऐसा करनेसे 'र्' और 'आ' का परिवर्तन, 'र्' का 'उ'; फिर 'आ' 'उ' का 'ओ' और अन्तिम 'अ' का लोप होनेसे 'ओम्' सिद्ध होता है। '**आद्गुणः,**' '**अकः सवर्णे दीर्घः**' ये दो सूत्र छोड़कर अन्य प्रायः सब काम (वर्ण-परिवर्तन, 'उ', अन्तिम आका लोप आदि) '**पृषोदरादित्त्व**' से कर लेना चाहिये। यथा— '**रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधिर्मकारार्थो जीवस्सकलविधिकैंकर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगलमथसम्बन्धमनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगमरूपोऽयमतुलः॥**' (श्रीराममन्त्रार्थ) इसमें 'राम' नामकी तीन ही कलाओं 'र्, आ, म्' को लेकर मन्त्रार्थ किया गया है और प्रमाण नोट २ में आ चुके हैं। (ख) '**पृषोदरादित्त्व**' इति। पाणिनिजीका एक सूत्र है '**पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्।**' (६। ३। १०९) **पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि स्युः।**' अर्थात् पृषोदर आदि शब्द जैसे शिष्ट लोगोंने कहे हैं वैसे ही वे ठीक हैं। तात्पर्य कि जो शब्द जिस अर्थमें प्रसिद्ध है उससे वही अर्थ सिद्ध होगा। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर पाणिनिके धातु-सूत्र आदि यथासम्भव काममें लाकर जहाँ न बनता हो वहाँ अपनी ओरसे वर्ण परिवर्तन, अन्य वर्ण-ग्रहण, लोप आदि जो आवश्यक हो, कर लें। यथा—'पृषत उदर'= पृषोदर, वारिवाहक=बलाहक, '**हिंसि**' धातुसे सिंह इत्यादि। (ग) श्रीरामनाममें छः कलाएँ महारामायणके उपर्युक्त श्लोकोंमें बतायी गयी हैं और प्रणवमें भी छः कलाएँ श्रीरामतापनीयोपनिषद् उत्तरार्ध द्वितीय कण्डिका मन्त्र ३ में बतायी गयी हैं। इस तरह कलाओंकी संख्या भी समान है। परन्तु उपर्युक्त श्रीरामनामसे प्रणवकी सिद्धिके प्रकारोंमें केवल पाँच, चार अथवा तीन ही कलाएँ दिखायी गयी हैं। ऐसी अवस्थामें यह शंका हो सकती है कि 'दोनोंकी कलाओंमें वैषम्य होनेसे उनके अर्थोंमें त्रुटि होनेकी सम्भावना है।' इसका समाधान यह हो सकता है कि प्रणवकी सिद्धिके लिये 'श्रीराम' नामके जो खण्ड दिखाये गये हैं, उनमेंसे किसी-किसी खण्डमें यथासम्भव दूसरी कलाका प्रवेश समझना चाहिये और जिस कलाका लोप दिखाया गया है यद्यपि वह सुननेमें नहीं आती है तथापि अर्थ करते समय उसका भी अर्थ किया जायगा। इस तरह कला और अर्थमें—दोनोंमें समानता होती है। दूसरा समाधान यह है कि महर्षियोंने प्रणवकी भी एकसे लेकर अनेक कलाएँ मानी हैं। श्रीमत्स्वामिहंसस्वरूपनिर्मित 'मन्त्रप्रभाकर' (मुजफ्फरपुर त्रिकुटीविलासयन्त्रालयमें मुद्रित) में लिखा है

कि वाष्कल्य ऋषिके अनुयायी एकमात्रा, साल और काइत्यके मतावलम्बी दो मात्रा, देवर्षि नारदके ढाई मात्रा, मौण्डल और माण्डूक्य आदिके तीन मात्रा और कोई साढ़े तीन, पराशरादि चार, भगवान् वसिष्ठ साढ़े चार मात्रा मानते हैं इत्यादि। इस प्रकार जहाँ जितनी मात्राएँ 'ओम्' की लेंगे वहाँ उतनी ही 'राम' नामकी लेंगे। इस तरह भी शंका नहीं रहती।

नोट—४ पं० रामकुमारजी ***'सो'*** का अर्थ ***'सम'*** करते हुए लिखते हैं कि 'रामनाम प्रणव सम है, ओम्के तीन अक्षरोंसे तीन देवता हैं और रामनामसे भी। दोनों ब्रह्मरूप हैं। यथा, '**ओमित्यक्षरं ब्रह्म**', '**तारकं ब्रह्म संज्ञकम्**'। प्रणवसे त्रिदेवकी उत्पत्तिका प्रमाण, यथा—'**अकारः प्रणवे सत्वमुकारश्च रजोगुणः। तमो हलमकारः स्यात्रयोऽहंकारमुद्भवः।**' (महारामायण)

नोट—५ रामनामको ***'अनूपम'*** कह रहे हैं और पूर्वार्द्धमें कहा है कि ***'बेद प्रान'*** (प्रणव) सम है। यह परस्पर विरोध है। जब एक समता हो गयी तो उपमारहित कैसे कह सकते हैं? लाला भगवानदीनजी इसके उत्तरमें कहते हैं कि इस अर्धालीका ठीक अर्थ 'अर्थ ३' है जो ऊपर दिया गया है। वे कहते हैं कि साहित्यरीतिसे इस अर्धालीमें उपमालंकार है। प्रथम चरणमें पूर्णोपमा है जिसमें 'राम' उपमेय, ***'बेद प्रान'*** (ओऽम्) उपमान, ***'सो'*** वाचक, और ***'बिधिहरिहरमय'*** धर्म है। ***'अनूपम'*** शब्द 'राम' शब्दका विशेषण नहीं है, वरं च गुणनिधानमें आये हुए 'गुण' शब्दका विशेषण है। इस प्रकार भी उपर्युक्त शंका निर्मूल हो जाती है। (प्रोफे० दीनजी)

दोहावलीकी भूमिकामें प्रोफे० दीनजी लिखते हैं कि ***'बंदउँ नाम राम'*** से ***'कालकूट फल दीन्ह अमी को'*** तककी चौपाइयोंमें 'रामनाम' के श्रेष्ठतम होनेके प्रमाण उपस्थित किये हैं। इस उद्धरणकी पहली चौपाई (***'बंदउँ'*** से ***'गुणनिधान सो'*** तक) दार्शनिक छानबीनसे ओत-प्रोत है। 'राम' शब्दकी बहुत ही ऊँची श्रेष्ठता है। हमारे वेदोंमें 'ॐ' ही ईश्वरका नाम और रूप जो कहिये सो माना गया है और इसी ॐ- में समस्त संसारकी सृष्टि प्रच्छन्न है, अर्थात् 'ॐ' शब्दपर यदि गम्भीर दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसीके विस्तार और खण्ड आदिसे संसारकी समस्त वस्तुओंका प्रादुर्भाव हुआ है। सभी इसके रूपान्तर-मात्र हैं। यही 'ॐ' 'राम' का या 'राम' 'ॐ' का विपर्ययमात्र है, अन्य कुछ भी नहीं। (पर, 'राम' 'ओम्' का विपर्ययमात्र है, इसमें सन्देह है। श्रीहरिदासाचार्यजीका भाष्य एवं वे० भू० पं० रा० कु० जीका लेख देखिये।) इसी विपर्ययकी सिद्धिके अनन्तर और सभी बातें स्वयं संगत और अर्थानुकूल हो जायँगी। 'ॐ' को दूसरे प्रकार 'ओम्' रूपमें लिखते हैं। यह रूप उक्त 'ॐ' का अक्षरीकृत रूप ही है। दूसरा कुछ नहीं। अब यह दर्शाना चाहिये कि 'ओम्' और 'राम' एक ही हैं, तभी ***'बेद प्रान'*** लिखना सार्थक होगा। सन्धिके नियमानुसार 'ओम्' का 'ओ' 'अः' के विसर्गका रूप परिवर्तनमात्र है। इस विसर्गके दो रूप होते हैं, एक तो यह किसी अक्षरकी सन्निद्धिसे 'ो' हो जाता है और दूसरे 'र्' होता है। यदि विसर्गका रूपान्तर 'ो' न करके 'र्' किया जाय तो 'अ र् म्' ही 'ओम्' का दूसरा रूप हुआ। अब इन अक्षरोंके विपर्ययसे राम स्वतः बन जायगा। अ र् म् को यदि 'र् अ म्' ढंगसे रखें और 'र्', 'म्' व्यंजनोंको स्वरान्त मानें तो 'राम' बन जाता है।* हमारे विचारसे उक्त चौपाइमें ***'बेद प्रान सो'*** का यही भाव है। जब 'राम' 'ॐ' का रूपान्तरमात्र है तो फिर वह विधिहरिहरमय भी है। वेदमें ब्रह्मा, विष्णु

---

* इसी प्रकार 'राम' से भी 'ॐ' सिद्ध होता है। 'राम' और 'ॐ' का परस्पर विपर्यय इस प्रकार है। (लाला भगवानदीनजीके मतसे—)

राम=र् अ म	ॐ=ओं
अ र् म	अ ो म्
अ : म	अ : म
अ ो म्	अ र् म
ओं	र अ म
ॐ	राम

और शिवकी उत्पत्ति 'ॐ' से ही मानी गयी है और दार्शनिक इन्हें ब्रह्मका औपाधिक नाम ही मानते हैं अर्थात् ब्रह्म ही सृष्टि करते समय ब्रह्मा, पालन करते समय विष्णु और संहार करते समय शिव नामसे विहित होता है। सुतरां ब्रह्मके नामोंमें 'राम' एक मुख्य नाम हुआ।

इस शंकाका समाधान पं० रामकुमारजी यों करते हैं कि (क) समता एकदेशीय है, वह एक देश यह है कि दोनों त्रिदेवमय हैं। सब देशोंमें प्रणव रामनामके समान नहीं है क्योंकि रामनाम भगवान्‌के दिव्य गुणोंके निधान सम हैं। पुनः, (ख) इस तरह भी कह सकते हैं कि त्रिदेवके उत्पन्न करनेके लिये गुणनिधान हैं और स्वयं अगुण हैं। (पं० रामकुमार) वेदप्राणका अर्थ प्रणव न लेनेसे यह शंका ही नहीं रह जाती। प्राण=जीवन, सर्वस्व। सो=वह।

नोट—६ ***'अगुन अनूपम गुननिधान सो'*** इति। (क) ***अगुन*** और ***अनूपम*** कहकर जनाया कि सब नामोंमें यह परम उत्तमोत्तम है। (अर्धाली १ में सर्वश्रेष्ठता दिखा आये हैं।) ***'गुननिधान'*** कहकर जनाया कि इसमें अनन्त दिव्य गुण हैं। यह ज्ञान, विज्ञान और प्रेमापरा भक्ति आदिका रूप ही है। यथा—**'विज्ञानस्थो रकारः स्यादकारो ज्ञानरूपकः। मकारः परमा भक्ती रमु क्रीडोच्यते ततः॥'**(महारामायण ५२। ५२) (ख) मानस-अभिप्राय-दीपककार लिखते हैं कि ***'अनल भानु शशि ब्रह्म हरि, हर ओंकार समेत। ब्रह्म जीव माया मनहिं भिन्न भिन्न सिख देत॥'*** (३२) अर्थात् इस चौपाईमें श्रीरामनामको अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, त्रिदेव, प्रणव, ब्रह्म, जीव, माया इन दसोंका कारण या तद्रूप कहा है। इसका कारण यह है कि इन दसोंका उपकार मनपर है। ये दसों मनको शिक्षा देते रहते हैं। अग्नि आदि पालन-पोषणमें सहायक, त्रिदेव उत्पत्ति, पालन और संहारद्वारा जीवोंका कल्याण करते, प्रणव वेदको सत्तावान् करके सृष्टिका रक्षक, निर्गुण ब्रह्म जीवके साथ रहकर इन्द्रिय आदि सबको सचेत करता है और विद्या माया-भक्ति-मुक्तिके मार्गपर लगाती है। इनका उपकार मनपर है। श्रीरामनामकी उपासना करनेसे इन दसोंके उपकारका बदला चुक जायगा। यह शिक्षा 'कारण' कहकर दे रहे हैं।

नोट—७ कोई-कोई यहाँ यह शंका करते हैं कि ***'बिधिहरिहर'*** तो सृष्टिके कर्त्ता हैं, इनको पहले कहना चाहिये था सो न करके अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाको पहले कहा, यह क्यों? समाधान यह है कि आग, सूर्य, चन्द्रमाके गुण, स्वरूप और प्रभाव सब कोई प्रत्यक्ष देखते हैं, इससे उनका हेतु कहनेसे श्रीरामनामका प्रताप शीघ्र समझमें आ जायेगा। विधिहरिहर दिखायी नहीं देते और यद्यपि ये ही जगत्‌के उत्पत्ति, पालन, संहारकर्त्ता हैं तथापि इन्हें इन सबका कर्त्ता न कहकर लोग माता-पिताको पैदा व पालन करनेवाला और रोगको मृत्युका कारण कहते हैं। जैसे सूक्ष्म रीतिसे विधिहरिहर उत्पन्न, पालन, संहार करते हैं, वैसे ही गुप्त रीतिसे ये नामके अंग हैं, अतएव पीछे कहा।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥ ३॥

अर्थ—रामनाम महामन्त्र है जिसे श्रीशिवजी जपते हैं और जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है॥ ३॥

नोट—१ इस चौपाईमें ग्रन्थकारने स्पष्ट बता दिया है कि (क) रामनाम ही महामन्त्र है। इसके प्रमाण बहुत हैं। यथा—**'यत्प्रभावं समासाद्य शुको ब्रह्मर्षिसत्तमः। जपस्व तन्महामन्त्रं रामनाम रसायनम् ॥'** (शुकपुराण), **'सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः। एक एव परो मन्त्रः श्रीरामेत्यक्षरद्वयम्॥'** (सारस्वततन्त्रे श्रीशिवोवाच), ***'बीजमंत्र जपिये सोई जो जपत महेस।'*** (वि० १०८), **'अंशांशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि। बीजमोंकारसोऽहं च सूत्रमुक्तिमिति श्रुतिः॥', 'इत्यादयो महामन्त्रा वर्तन्ते सप्तकोटयः। आत्मा तेषां च सर्वेषां रामनामप्रकाशकः॥'** (महारामायण ५२। ३९) अर्थात् प्रणव आदि सात करोड़ महामन्त्रोंके स्वरूप श्रीरामनामहीसे प्रकाशित होते हैं। श्रीरामनामका महामन्त्र होना इससे भी सिद्ध है कि ये महा अपावनको भी पावन करते हैं और स्वयं पावन बने रहते हैं, शुद्ध-अशुद्ध, खाते-पीते, चलते-फिरते, शौचादि क्रिया करते समय भी यहाँतक कि शव (मुर्दे) को कन्धेपर लिये हुए भी उच्चारण करनेसे मंगलकारी

ही होते हैं। इसमें किसी विधिकी आवश्यकता नहीं। *'भाय कुभाय अनख आलसहू'*, उलटा-पलटा-सीधा यहाँतक कि अनजानमें भी उच्चारण स्वार्थपरमार्थका देनेवाला है। अन्य मन्त्रोंमें जपकी विधि है, अनेक प्रकारके अनुष्ठान करनेपर भी वे फलें या न फलें, परन्तु रामनाम दीक्षा बिना भी ग्रहणमात्रसे फल देता है; अन्य मन्त्रोंके अशुद्ध जपसे लाभके बदले हानि पहुँचती है। (ख) इसीको शिवजी जपते हैं। यथा—*'तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥'* (१।१०८) *'उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥'* (१।१०) **'श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।'** (कि० मं० २) इत्यादि। (ग) श्रीशिवजी रामनामहीको जीवोंके कल्याणार्थ उपदेश करते हैं। (देखिये नोट ५)

नोट—२ रामनामका माहात्म्य कहनेमें प्रथम महेशजीहीकी साक्षी देते हैं। माहात्म्यका वर्णन इन्हींसे प्रारम्भ किया क्योंकि—(क) शिवजी उपासकोंमें शिरोमणि हैं, इनके समान नामका प्रभाव दूसरा नहीं जानता। यथा—*'नाम प्रभाव जान सिव नीको', 'महिमा राम नाम कै जान महेस।'* (बरवै० ५३) (ख) वैष्णवोंमें ये अग्रगण्य हैं। यथा—**'वैष्णवानां यथा शम्भुः'** (भा० १२। १३। १६) (पं० रामकुमारजी)। (ग) जो इनका सिद्धान्त होगा वह सर्वोपरि माना जायेगा। (करु०)

नोट—३ *'महेसू'* इति। महेश नाम देकर यह प्रमाणित करते हैं कि ये देवताओंके स्वामी हैं, महान् समर्थ हैं। जब ये महेश ही उस नामको जपते हैं तो अवश्य ही महामन्त्र होगा, क्योंकि बड़े लोग बड़ी ही वस्तुका आश्रय लेते हैं।

नोट—४ इस चौपाईमें दो बातें दिखायी हैं, एक यह कि सर्व-समर्थ महेशजी स्वयं जपते हैं और दूसरे यह कि दूसरोंको उपदेश भी देते हैं।

नोट—५ *'कासी मुकुति हेतु उपदेसू'* इति। मरते समय श्रीरामनामहीका उपदेश जीवोंको करते हैं, तब मुक्ति होती है, यथा—*'कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥'* (१।११९), *'देत परम पद कासीं करि उपदेस॥'* (बरवै० ५३), *'बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत, रामनाम ही सों रीझें सकल भलाई है। कासीहूँ मरत उपदेसत महेसु सोई, साधना अनेक चितई न चित लाई है॥'* (क० ७।७४), *'जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहिं सम गति अबिनासी॥'* (४।१०), **'अहं भवन्नामगृणन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या । मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥'** (अ० रा० यु० १५। ६२), **'पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्। जल्प्यं जल्प्यं प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी॥'** (स्कन्ध पु० काशीखण्ड) अर्थात्, मैं आपके नामके गुणोंसे कृतार्थ होकर काशीमें भवानीसहित रहता हूँ और मरणासन्न प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उनके कानमें आपका मन्त्र 'राम' नाम उपदेश करता हूँ। (अ० रा०) तारक ब्रह्मरूप (श्रीरामजी) का मनमें ध्यान करो, सुन्दर श्रीरामनामको कानरूपी दोनेद्वारा बारम्बार पियो और प्राणियोंके अन्तकालसमय उनके कानोंमें सुन्दर रामनामको सुनाइये। काशीकी गली-गलीमें कोई काशीनिवासी (श्रीशिवजी) ऐसा कहता हुआ विचरता है। (काशीखण्ड) पुनश्च यथा—**'रामनाम्ना शिवः काश्यां भूत्वा पूतः शिवः स्वयम्। स निस्तारयते जीवराशीन्काशीश्वरस्सदा॥'** (शिवसंहिता २। १४) अर्थात् रामनामसे काशीश्वर शिवजी स्वयं पवित्र होकर नित्य अनन्त जीवोंको तारते हैं। पुनः यथा—**'द्व्यक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः। उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ॥ 'रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति।'** (आ० रा० यात्राकाण्ड सर्ग २। १५-१६) अर्थात् बाँटमें जो दो अक्षर बचे थे वह मैंने भगवान्से माँग लिये, वही 'राम' यह तारक-मन्त्र मैं जीवोंके अन्तकालसमय उनको उपदेश करता हूँ।

नोट—६ अर्थ—२ 'काशीमें सब जीवोंके मुक्ति उपदेशहेतु (लिये) शिवजी जिस महामन्त्रको सदा जपते हैं।' (बाबा हरीदासजी)

मुक्तिका उपदेश देनेके लिये स्वयं सदा उसे जपनेका तात्पर्य यह है कि यदि स्वयं रामनाम न ग्रहण करें तो उनका उपदेश (जिस जीवको वह नाम-उपदेश किया जा रहा है उसको) कुछ

भी काम नहीं कर सकता। जैसा ही जो नामरसिक नामजापक होगा, वैसा ही उसका उपदेश लगेगा और वैसा ही नामप्रतापसे काम चलेगा। पद्मनाभजी, नामदेवजी और गोस्वामीजीकी कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं। (बाबा हरीदासजी)

नोट—७ यहाँ 'प्रथम सम अलंकार' है।

नोट—८ श्रीरामतापिनीयोपनिषद्में श्रीरामतारक षडक्षर मन्त्रका कानमें उपदेश करना कहा गया है। यथा—**'क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः । कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥', अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये। अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु॥', त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्। जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते॥, मुमूर्षोर्दक्षिणं कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥'** (रा० उ० ता०४-५, ७-८) अर्थात् हे महादेव ! तुम्हारे इस क्षेत्रमें कृमिकीटादि कहीं भी यदि मृत्यु पावेंगे वे मुक्त हो जायँगे। आपके इस काशीपुरीमें लोगोंकी मुक्तिके लिये हम प्रतिमाओंमें प्रतिष्ठित रहेंगे। तुमसे या ब्रह्माजीसे जो षडक्षरमन्त्र प्राप्त करते हैं वे मुझको प्राप्त होते हैं। जो मर रहा है उसके दक्षिण कानमें हमारा मन्त्र उपदेश करनेसे उसकी मुक्ति हो जायगी। और, गोस्वामीजी यहाँ तथा और भी अनेक स्थलोंपर 'राम' नामका उपदेश करना चाहते हैं। तथा अध्यात्मरा०, आनन्दरा०, काशीखण्ड और शिवसंहिता आदिमें भी रामनामका ही उपदेश करना कहा गया है। (नोट ५ देखिये) इन दोनोंका समन्वय कुछ महात्मा इस प्रकार करते हैं कि षडक्षर श्रीरामनामके बीज और श्री 'राम' नाममें अभेद है। उसपर कुछ महात्माओंका मत है कि मन्त्र अथवा बीजका जो अर्थ बताया जाता है उसका और रामनामके जो अर्थ बताये जाते हैं उनका मेल नहीं होता; अतएव समन्वय इस प्रकार ठीक होगा कि षडक्षरमन्त्रका मूलतत्त्व श्री 'राम' नाम है, इसलिये श्रीरामतापनीयोपनिषद्वाक्य और गोस्वामीजीके तथा अध्यात्मादि रामायणोंके वाक्योंमें विरोध नहीं है। मन्त्र और नाममें अभेद है, इसकी पुष्टि मत्स्यपुराणके **'सर्वेषां राममन्त्राणां श्रेष्ठं श्रीतारकं परम्। षडक्षरमनुसाक्षात्तथा युग्माक्षरं वरम्॥'** (श्रीसीतारामनाम प्र० प्र० ६९। अर्थात् समस्त राममन्त्रोंमें षडक्षर तथा दोनों अक्षर तारक हैं, अतः अत्यन्त श्रेष्ठ हैं) इस श्लोकसे भी होती है। मन्त्र और नाम दोनोंको 'तारक' कहा जाता है। मन्त्र तो तारक प्रसिद्ध ही है। नाम तारक है, यह श्रीरामस्तवराजमें स्पष्ट कहा है। यथा—**'श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्। ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः।'** (५) अर्थात् श्रीराम (नाम) परम जाप्य है, तारक है और ब्रह्मसंज्ञक है तथा ब्रह्महत्यादि पापोंका नाशक है, वेदोंके ज्ञाता इसे जानते हैं। सम्भवतः षडक्षर और नाममें अभेद मानकर ही अन्यत्र उपनिषद् और पुराणोंमें केवल 'तारक' शब्दका ही प्रयोग किया गया, षडक्षर अथवा युग्माक्षरका उल्लेख नहीं किया गया। यथा—**'अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे।'** (जाबालो० १), **'यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः। व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तये॥'** (पद्मपु० स्वर्गखण्ड ३३। ४७), **'भगवानन्तकालेऽत्र तारकस्योपदेशतः। अविमुक्ते स्थितान् जन्तून्मोचयेन्नात्र संशयः॥'** (स्कन्दपु० काशीखण्ड ५। २८)

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥ ४॥

अर्थ—जिस (श्रीरामनाम) की महिमा श्रीगणेशजी जानते हैं। श्रीरामनामहीके प्रभावसे (वे सब देवताओंसे) पहले पूजे जाते हैं॥ ४॥

श्रीगणेशजीकी कथा

पुराणान्तर्गत ऐसी कथा है कि (१) शिवजीने गणेशजीको प्रथम पूज्य करना चाहा, तब स्वामिकार्त्तिकजीने आपत्ति की कि हम बड़े भाई हैं, यह अधिकार हमको मिलना चाहिये। श्रीशिवजीने दोनोंको ब्रह्माजीके पास न्याय कराने भेजा। [पुनः यों भी कहते हैं कि (२) एक बार ब्रह्माजीने सब देवताओंसे पूछा कि

तुममेंसे प्रथम पूज्य होनेका अधिकारी कौन है; तब सब ही अपने-अपनेको प्रथम पूजनेयोग्य कहने लगे। आपसमें वादविवाद बढ़ते देख] ब्रह्माजी बोले कि जो तीनों लोकोंकी परिक्रमा सबसे पहले करके हमारे पास आवेगा वही प्रथम पूज्य होगा। स्वामिकार्त्तिकजी मोरपर अथवा सब देवता अपने-अपने वाहनोंपर परिक्रमा करने चले। गणेशजीका वाहन मूसा है। इससे ये सबसे पीछे रह जानेसे बहुत ही उदास हुए। उसी समय प्रभुकी कृपासे नारदजीने मार्गहीमें मिलकर उन्हें उपदेश किया कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड 'श्रीरामनाम' के अन्तर्गत है। तुम 'राम' नामहीको पृथ्वीपर लिखकर नामहीकी परिक्रमा करके ब्रह्माजीके पास चले जाओ। इन्होंने ऐसा ही किया। अन्य सब देवता जहाँ-जहाँ जाते, वहाँ ही अपने आगे मूसाके पैरोंके चिह्न पाते थे। इस प्रकार गणेशजी श्रीरामनामके प्रभावसे प्रथम पूज्य हुए।

कथा (१) शैवतन्त्रमें कही जाती है और कथा (२) पद्मपुराणमें।

प्रथम दो संस्करणोंमें हमने यह कथा दी थी और टीकाकारोंने इसे टीकाओंमें लिया भी है। परन्तु हमें पद्मपुराणमें यह कथा अभीतक नहीं मिली।

श्रीगणेशजीने गणेशपुराणमें श्रीरामनामके कीर्त्तनसे अपना प्रथम पूज्य होना कहा है और यह भी कहा है कि उस 'राम' नामका प्रभाव आज भी मेरे हृदयमें विराजमान एवं प्रकाशित है। उसमें जगदीश्वरका इनको रामनामकी महिमाका उपदेश करना कहा है। प्रमाण—'**रामनाम परं ध्येयं ज्ञेयं पेयमहर्निशम्। सदा वै सद्भिरित्युक्तं पूर्वं मां जगदीश्वरैः॥**' '**अहं पूज्यो भवल्लोके श्रीमन्नामानुकीर्तनात्॥**' (सी० रा० नाम प्र० प्र०), '**तदादि सर्वदेवानां पूज्योऽस्मि मुनिसत्तम। रामनामप्रभा दिव्या राजते मे हृदिस्थले॥**' (वै०)

पद्मपुराणसृष्टिखण्डमें श्रीगणेशजीके प्रथम पूज्य होनेकी एक दूसरी कथा (जो व्यासजीने संजयजीसे कही है। यह है कि श्रीपार्वतीजीने पूर्वकालमें भगवान् शंकरजीके संयोगसे स्कन्द और गणेश नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। उन दोनोंको देखकर देवताओंकी पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक पार्वतीजीके हाथमें दिया। मोदक देखकर दोनों बालक उसे मातासे माँगने लगे। तब पार्वतीजी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोलीं—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो। इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है और जो इसे सूँघता वा खाता है वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। पुत्रो! तुममेंसे जो धर्माचरणके द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी। तुम्हारे पिताकी भी यही सम्मति है।'

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द मयूरपर आरूढ़ हो तुरन्त ही त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल दिये। उन्होंने मुहूर्त्तभरमें सब तीर्थोंका स्नान कर लिया। इधर लम्बोदर गणेशजी स्कन्दसे भी बढ़कर बुद्धिमान् निकले। वे माता-पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गये। क्योंकि माता-पिताकी परिक्रमासे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। यथा—'**सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता। मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥ मातरं पितरंचैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥**' (पद्मपु० सृष्टिखण्ड ४७। ११। १२) फिर स्कन्द भी आकर खड़े हुए और बोले, 'मुझे मोदक दीजिये'। तब पार्वतीजी बोलीं, समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके सम्पूर्ण व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते। इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गुणोंसे भी बढ़कर है। अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशको ही अर्पण करती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण ही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी। महादेवजी बोले, 'इस गणेशके ही अग्रपूजनसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हों'।

☞ यह कथा 'पूर्वकाल' किसी कल्पान्तरकी होगी। अथवा श्रीशिवजीने यहाँ आशीर्वादमात्र दिया जो आगे कुछ काल बाद श्रीरामनामके सम्बन्धसे सफल हुआ।

नोट—यहाँ 'प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार है, कही हुई बात सब जानते हैं।

जान आदिकबि नाम प्रतापू[1]। भयउ सुद्ध करि[2] उलटा जापू॥ ५॥

अर्थ—आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी श्रीरामनामका प्रताप जानते हैं (कि) उलटा नाम जपकर शुद्ध हो गये॥ ५॥

महर्षि वाल्मीकिजीकी कथा—आप प्रचेता ऋषिके बालक थे। बचपनहीमें भीलोंका संग हो जानेसे उन्हींमें आपका विवाह भी हुआ, ससुरालहीमें रहते थे, पूरे व्याधा हो गये, ब्राह्मणोंको भी न छोड़ते थे, जीवहत्या करते और धन-वस्त्रादि छीनकर कुटुम्ब पालते। एक बार सप्तर्षि उधरसे आ निकले, उनपर भी हाथ चलाना चाहा।..... ऋषियोंके उपदेशसे आपकी आँखें खुलीं। तब दीनतापूर्वक उनसे आपने अपने उद्धारका उपाय पूछा, उन्होंने 'राम-राम' जपनेको कहा। पर 'राम-राम' भी आपसे उच्चारण करते न बना, तब ऋषियोंने दया करके इनको 'मरा-मरा' जपनेका उपदेश किया। इनका विस्तृत वृत्तान्त दोहा ३ (३) और सोरठा १४ *'बंदउँ मुनिपदकंज.....'* में दिया जा चुका है।

नोट—१ *'जान नाम प्रतापू'* इति। उलटा नाम जपनेका यह फल प्रत्यक्ष देखा कि व्याधासे मुनि हो गये, ब्रह्मसमान हो गये, फिर ब्रह्माजीके मानस पुत्र हुए। 'मरा-मरा' जपका यह प्रताप है, तब साक्षात् 'राम-राम' जपनेका क्या फल होगा, कौन कह सकता है? अध्यात्मरामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ६ में उलटे नामजपका प्रमाण है। यथा—**'राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्। यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥'** (६४) अर्थात् हे राम! आपके नामके प्रभावसे ही मैं ब्रह्मर्षित्व पदवीको प्राप्त हुआ, इस नामकी महिमा कोई कैसे वर्णन कर सकता है। पुनश्च यथा— **'इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्। एकाग्रमनसात्रैव मरेति जप सर्वदा॥'** (८०) अर्थात् सप्तर्षियोंने आपके नामाक्षरोंको उलटा करके मुझसे कहा कि तू यहीं रहकर एकाग्रचित्तसे सदा 'मरा-मरा' जपा कर। ☞ स्वयं उलटा नाम जपनेका प्रताप देखा, इसीसे *'जान नाम प्रतापू'* कहा।

नोट—२ *'भयउ सुद्ध करि उलटा जापू'* इति। (क) मरा-मरा जपकर उसी शरीरमें व्याधासे मुनि हो गये। वाल्मीकि मुनि नाम हुआ। यथा—*'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥'* (२। १९४), *'महिमा उलटे नामकी मुनि कियो किरातो।'* (विनय० १५१), *'रामु बिहाइ 'मरा' जपतें बिगरी सुधरी कबिकोकिलहू की।'* (क० ७। ८९), *'जहाँ बालमीकि भए ब्याधते मुनिंदु साधु मरा मरा, जपे सिख सुनि रिषि सातकी।'* (क० ७। १३८)

नोट—३ उलटे नामके जपसे शुद्ध होना कहकर सूचित किया कि (१) जितने मन्त्र हैं, यदि वे नियमानुसार शुद्ध-शुद्ध न जपे जायँ तो लाभके बदले विघ्न और हानि ही होती है। परन्तु रामनाम ऐसा है कि अशुद्धका तो कहना ही क्या, उलटा भी जपनेसे लाभदायक—कल्याणकारक ही होता है। (२) 'राम' नामका प्रत्येक अक्षर महत्त्वका है। (३) इनको इतनी ब्रह्महत्या और जीवहत्या लगी थी कि शुद्धि किसी प्रकार न हो सकती थी सो ये भी नामके प्रतापसे शुद्ध हो गये।

नोट—४ शंका—सप्तर्षियोंने उलटा नाम जपनेको क्यों कहा?

समाधान—(क) श्रीजानकीशरणजी कहते हैं कि मकाररूपी जीवको प्रथम उच्चारण कराके 'रा' आह्लादिनीशक्तियुक्त परब्रह्मकी शरणमें गिरानेका भाव मनमें रखकर 'मरा-मरा' जपनेको कहा। (ख) कोई यह कहते हैं कि 'मरा-मरा' कहते-कहते 'राम-राम' निकलता ही है, यह समझकर उलटा नाम जपनेको कहा। (ग) वेदान्तभूषणजीका मत है कि 'मन्त्र देनेसे गुरु-शिष्यमें पाप-पुण्य आधो-आध बँट जाते हैं;

१— प्रभाऊ—१७२१, १७६२। प्रतापू—१६६१, १७०४, छ०, को० रा०। २— कहि उलटा नाँउ—१७२१, १७६२। करि उलटा जापू—१६६१, १७०४, छ०, को० रा०।

इसीसे सप्तर्षियोंने उन्हें मन्त्र न दिया। परन्तु शरणागतको त्यागना भी नहीं चाहिये, इसीसे 'मरा-मरा' जपनेका उपदेश दिया कि मन्त्र भी न हुआ और तीसरी बार वही उलटा नाम 'राम' होकर शरणागतका कल्याण भी कर दे।'

नोट—५ इस दोहे (१९) में श्रीरामनाममाहात्म्य जाननेवालोंमें श्रीशिवजीका परिवार गिनाया गया पर सबको एक साथ न कहकर बीचहीमें महर्षि वाल्मीकिजीका नाम दिया गया है। इसका भाव महानुभाव यह कहते हैं कि (क) यहाँ तीन अर्धालियोंमें तीन प्रकारसे नाममाहात्म्य बताया है, शिवजी सादर जपते हैं। यथा—***'सादर जपहु अनँग आराती।'*** (१। १०८) गणेशजीने पृथ्वीपर ही नाम लिखकर परिक्रमा कर ली, शुद्धता-अशुद्धता आदिका विचार न किया और वाल्मीकिजीने उलटा ही नाम जपा। सारांश यह है कि आदरसे शुद्धता वा अशुद्धतासे, सीधा वा उलटा कैसे ही नाम जपो, वह सर्वसिद्धियों और कल्याणको देनेवाला है। इसलिये महत्त्वके विचारसे इन तीनोंके नाम साथ-साथ दिये गये। (ख) पं० रामकुमारजी कहते हैं कि गणेशजी और वाल्मीकिजीकी प्रथम दशा एक-सी थी, इसलिये गणेशजीके पीछे प्रथम इनका नाम दिया। यथा—***'राम-नामको प्रभाउ पूजियत गनराउ कियो न दुराउ कही आपनी करनि।'*** (विनय०) [आनन्द रामायण राज्यकाण्डमें श्रीगणेशजीने अपनी पूर्व दशा श्रीसनत्कुमारजीसे यों कही है कि मैं प्रथम गजरूपसे महाकाय पैदा हुआ और वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर मुनियोंको मारता था। इस तरह बहुत-से मुनियोंके मारे जानेसे ब्राह्मणोंमें हाहाकार मच गया और ब्रह्महत्याओंसे वेष्टित होकर मैं मूर्च्छित हो गया। तब मेरी दशा देखकर मेरे पिताने श्रीरामजीका स्मरण किया। भगवान् सर्व उरवासी जगत्के स्वामी श्रीरामजी प्रकट हो गये और बोले—'हे महादेव! तुम तो समर्थ हो ही, फिर भी क्या चाहते हो, कहो। मैं प्रसन्न हूँ। त्रैलोक्यमें भी दुर्लभ जो तुम्हारा मनोरथ होगा वह मैं तुम्हें दूँगा।' शिवजीने कहा कि यदि आपकी मुझपर दया है तो ब्रह्महत्याओंसे युक्त इस पुत्रको पापरहित कर दीजिये। भगवान्की कृपादृष्टिसे मेरी ओर देखते ही मैं सचेत होकर उठ बैठा और दण्डवत् प्रणाम कर मैंने उनकी स्तुति की। उन्होंने कृपा करके अपने सहस्रनामका उपदेश मुझे दिया जिसे ग्रहणकर मैं निष्पाप हो गया। (पूर्वार्ध सर्ग १ श्लोक १४—२४)] (ग) श्रीशिवजी और श्रीपार्वतीजीके बीचमें दोनोंको देकर सूचित किया कि श्रीरामनाम और चरितके सम्बन्धसे वाल्मीकिजी दोनोंको गणेशजीके समान प्रिय हैं।

नोट—६ इस चौपाईमें तीन बातें कही गयी हैं। वाल्मीकिजीका 'आदि कवि' होना, वाल्मीकिजीका नामप्रताप जानना और उलटे जपसे शुद्ध होना। पूर्व इनका नाम तीन बार तीन प्रसंगोंके सम्बन्धमें आ चुका है। प्रथम बार मंगलाचरणमें **'वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ'।** दूसरी बार सत्संगकी महिमाके वर्णनमें दृष्टान्तरूपमें। तीसरी बार रामायणके रचयिता होनेसे और यहाँ उलटा नाम जपकर शुद्ध होने, नाम-प्रताप जानने और उसीके प्रभावसे आदिकवि होनेके प्रसंगमें उनका नाम आया है।

वाल्मीकिजी 'आदिकवि' कहे जाते हैं। इसके प्रमाण ये हैं। **'काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा। क्रौंचद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः॥'** (५), **'तथा च आदिकवेर्वाल्मीकेर्निहतसहचरविरहकातर-क्रौंचयाक्रन्दजनितः शोक एव श्लोकतया परिणतः।' (** ध्वन्यालोक उद्योत १ **), 'पद्ययोनिरवोचत्—ऋषे प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि तद्ब्रूहि रामचरितं.....। आद्यः कविरसि इत्युक्त्वाऽन्तर्हितः।'** (उत्तररामचरित-अंक २) वाल्मीकीय रामायणके प्रत्येक सर्गके अन्तमें **'इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये'** ये शब्द रहते ही हैं।

इसपर शंका होती है कि 'इनको 'आदिकवि' कैसे कहा, जब कि इनके पूर्व भी छन्दोबद्ध वाणी उपलब्ध थी?' वेदोंमें वैदिक छन्द तो होते ही हैं परन्तु ऐसे भी कुछ मन्त्र हैं कि जिनको हम अनुष्टुप् छन्दमें पढ़ सकते हैं। जैसे कि **'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वा.....'** (ऋग्वेद पुरुषसूक्त ऋचा १) उपनिषदोंमें भी श्लोकोंका उल्लेख मिलता है। यथा—**'अत्रैते श्लोका भवन्ति।', 'अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥'** (रा० उ० ता० १) इत्यादि।

कम-से-कम कुछ स्मृतियाँ भी वाल्मीकिजीके पूर्व होंगी ही और स्मृतियाँ प्रायः छन्दोबद्ध हैं। फिर वाल्मीकीयके ही कुछ वाक्योंसे भी श्लोकोंका लोकमें व्यवहार सिद्ध होता है। जैसे कि '**कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम्। ऐति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि॥**' (६। १२६। २) (श्रीभरतजी कह रहे हैं कि यह जो कहावत लोकमें कही जाती है वह सत्य ही है कि यदि मनुष्य जीवित रहे तो सौ वर्षके पश्चात् भी उसे एक बार आनन्द अवश्य मिलता है। इसमें जो यह कहावत '**ऐति जीवन्त.....दपि**' कही गयी है वह श्लोकबद्ध है); '**श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा। पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणुष्व गदतो मम॥**' (६। १६। ६। ८) इत्यादि। (अर्थात् पद्मवनमें हाथियोंको भी यह श्लोक गाते हुए सुना गया है.....। इसमें भी पूर्व श्लोकोंका व्यवहार कहा गया है।) पुनः, स्वयं वाल्मीकिजीके मुखसे व्याधाके शापरूपमें जो श्लोक निकला था उस प्रसंगके पश्चात् उनके ये वाक्य हैं— '**पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः। शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥**' (१। २। १८) (अर्थात् जिनके चरणोंमें समान अक्षर हैं ऐसे चार चरणोंमें बद्ध ताल आदिमें गानेयोग्य यह श्लोक शोकके कारण मेरे मुखसे निकल पड़ा है। यह श्लोक ही कहा जायगा।) इससे भी वाल्मीकीयके पूर्व श्लोकका होना सिद्ध होता है।

इसका समाधान यह है कि यद्यपि लोक और वेदोंमें इनके पहले छन्दोबद्ध वाणीका प्रचार पाया जाता है तथापि मनुष्योंके द्वारा काव्य और इतिहासकी जैसी रचना होती है, वैसी इनके पूर्व न थी। इस प्रकारकी रचना इन्हींसे प्रारम्भ हुई। इसीसे इनको 'आदिकवि' कहा जाता है।

नोट-७ उलटे जापसे शुद्ध हुए, यहाँ 'प्रथम उल्लास अलंकार' है। यथा—'***और वस्तु के गुणन ते और होत गुणवान।***' (अ० मं०)

सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी॥ ६॥

अर्थ—श्रीशिवजीके ये वचन सुनकर कि एक 'राम' नाम (विष्णु) सहस्रनामके समान है, श्रीपार्वतीजी (तबसे बराबर श्रीरामनामको) अपने प्रियतम पतिके साथ सदा जपती हैं॥ ६॥

नोट—श्रीपार्वतीजीकी इस प्रसंगके सम्बन्धकी कथा पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २५४ में इस प्रकार है। श्रीपार्वतीजीने श्रीवामदेवजीसे वैष्णवमन्त्रकी दीक्षा ली थी। एक बार श्रीशिवजीने श्रीपार्वतीजीसे कहा कि हम कृतकृत्य हैं कि तुम ऐसी वैष्णवी भार्या हमें मिली हो। तुम अपने गुरु महर्षि वामदेवजीके पास जाकर उनसे पुराणपुरुषोत्तमकी पूजाका विधान सीखकर उनका अर्चन करो। श्रीपार्वतीजीने जाकर गुरुदेवजीसे प्रार्थना की तब वामदेवजीने श्रेष्ठ मन्त्र और उसका विधान उनको बताया और विष्णुसहस्रनामका नित्य पाठ करनेको कहा। यथा—'**इत्युक्तस्तु तया देव्या वामदेवो महामुनिः। तस्यै मन्त्रवरं श्रेष्ठं ददौ स विधिना गुरुः॥**' (११), '**नाम्नां सहस्रविष्णोश्च प्रोक्तवान् मुनिसत्तमः।**'

एक समयकी बात है कि द्वादशीको शिवजी जब भोजनको बैठे तब उन्होंने पार्वतीजीको साथ भोजन करनेको बुलाया। उस समय वे विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रही थीं, अतः उन्होंने निवेदन किया कि अभी मेरा पाठ समाप्त नहीं हुआ। तब शिवजी बोले कि तुम धन्य हो कि भगवान् पुरुषोत्तममें तुम्हारी ऐसी भक्ति है और कहा कि '**रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। तेन रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥**' (२१), '**राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥**' (२२).....'**रामेत्युक्त्वा महादेवि भुङ्क्ष्व सार्धं मयाधुना॥**' (२३) (अर्थात् योगीलोग अनन्त सच्चिदानन्द परमात्मामें रमते हैं, इसीलिये 'राम' शब्दसे परब्रह्म कहा जाता है॥ २१॥ हे रमे (सुन्दरि)! मैं राम-राम इस प्रकार जप करते हुए अति सुन्दर श्रीरामजीमें अत्यन्त रमता हूँ। तुम भी अपने मुखमें इस राम-नामका वरण करो, क्योंकि विष्णुसहस्रनाम इस एक रामनामके तुल्य है॥ २२॥ अतः महादेवि! एक बार 'राम' ऐसा उच्चारण कर मेरे साथ आकर भोजन करो॥ २३॥) यह सुनकर श्रीपार्वतीजीने 'राम' नाम एक बार उच्चारण कर शिवजीके साथ भोजन कर लिया और तबसे पार्वतीजी बराबर

श्रीशिवजीके साथ नाम जपा करती हैं। यथा—**वसिष्ठ उवाच— 'ततो रामेति नामोक्त्वा सह भुक्त्वाथ पार्वती। रामेत्युक्त्वा महादेवि शम्भुना सह संस्थिता॥'**(२४)

नोट—१ सं० १६६१ की प्रतिमें पहले ***'जपि जेईं'*** पाठ था। पद्म० पु० अ० २५४ के अनुसार यह पाठ भी संगत है, क्योंकि '**राम रामेति**.....' यह श्लोक भोजन करनेके पूर्वहीका है, न कि पीछेका। सं० १६६१ में ***'जपि जेईं'*** पर हरताल देकर ***'जपति सदा'*** पाठ बनाया गया है। यह पाठ भी उपर्युक्त कथासे संगत है, क्योंकि उसी समयसे सदा 'राम' नाम वे जपने लगीं। इस पाठमें विशेषता है कि विष्णुसहस्रनामका पाठ तबसे छोड़ ही दिया गया और उसके बदले श्रीराम-नाम ही सदा जपने लगीं। इस कथनमें नामके महत्त्वका गौरव विशेष जानकर ही गोस्वामीजीने पीछे इस पाठको रखा। गोस्वामीजीने यह पूर्व भी लिखा है। यथा—***'मंगलभवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥'*** (१। १०। २) ***'जपि जेईं'*** पाठका अर्थ होगा 'पतिके साथ जाकर भोजन कर लिया'। इस पाठसे यह भाव नहीं निकलता कि तबसे फिर 'विष्णुसहस्रनामका' पाठ छोड़ दिया, श्रीरामनाम ही जपने लगीं। इस पाठमें ***'जपति सदा'*** वाला महत्त्व नहीं है।

नोट—२ ***'सिव बानी'*** इति। शिववाणी कहनेका भाव यह है कि यह वाणी कल्याणकारी है, ईश्वरवाणी है, मर्यादायुक्त है; इसीसे बेखटके श्रीपार्वतीजीको निश्चय हो गया। वे जानती हैं कि ***'संभु गिरा पुनि मृषा न होई।'*** (सत्पंचार्थप्रकाश)

नोट—३ पद्मपुराणकी उपर्युक्त कथासे यह शंका भी दूर हो जाती है कि 'क्या पतिके रहते हुए स्त्री दूसरेको गुरु कर सकती है?' जगद्गुरु श्रीशंकरजीके रहते हुए भी श्रीपार्वतीजीने वैष्णवमन्त्रकी दीक्षा महर्षि वामदेवजीसे ली। श्रीनृसिंहपुराणमें श्रीनारदजीने श्रीयाज्ञवल्क्यजीसे कहा है कि पतिव्रताओंको श्रीरामनाम-कीर्तनका अधिकार है, इससे उनको इस लोक और परलोकका सब सुख प्राप्त हो जाता है। यथा—**'पतिव्रतानां सर्वासां रामनामानुकीर्तनम्। ऐहिकामुष्मिकं सौख्यं दायकं सर्वशोभते॥'** (सी० ना० प्र० प्र०)

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥ ७॥

शब्दार्थ—**हेतु**=प्रेम। **ही** (हिय)=हृदय। **ती**=स्त्री।

अर्थ—उनके हृदयके प्रेमको देखकर श्रीशिवजी प्रसन्न हुए और पतिव्रता स्त्रियोंमें शिरोमणि अपनी स्त्री पार्वतीजीको अपना भूषण बना लिया। (अर्थात् जैसे आभूषण शरीरमें पहना जाता है, वैसे ही इनको अंगमें धारण करके अर्धांगिनी बना लिया)॥ ७॥

☞श्रीपार्वतीजीका पातिव्रत्य और अनन्यता उनके जन्म, तप एवं सप्तर्षिद्वारा परीक्षामें आगे ग्रन्थकारने स्वयं विस्तारसे दिखायी है।

नोट—१ ***'हरषे हेतु हेरि.....'*** इति। श्रीरामनाम और अपने वचनमें प्रतीति और प्रीति देखकर हर्ष हुआ। इसमें यह भी ध्वनि है कि सतीतनमें इनको सन्देह हुआ था। यथा—***'लाग न उर उपदेसु.....।'*** (१। ५१) और अब इतनी श्रद्धा।

नोट—२ यहाँतक चौपाई ४, ५, ६, ७ में गणेशजी, वाल्मीकिजी और पार्वतीजीके द्वारा 'राम' नामका माहात्म्य यह दिखाया है कि (क) सीधेमें जो फल देते हैं, वही उलटेमें भी देते हैं। (ख) जो फल धर्मात्माको देते हैं, वही पापीको और (ग) जो फल पुरुषको देते हैं वही स्त्रीको भी। (पं० रा० कु०)

नोट—३ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'ईश्वर हृदयके स्नेहको देखकर प्रसन्न होते हैं। इनकी प्रसन्नता निष्फल नहीं होती, फलदात्री होती है। इसलिये यहाँ फलका देना भी लिखते हैं, वह यह कि भूषण बना लिया।'

नोट—४ ***'किय भूषन तिय भूषन ती को'*** के और अर्थ ये हैं:—

अर्थ—२ ***'तिय भूषन'*** श्रीशिवजीने अपनी स्त्री (पार्वतीजी) को भूषण बना लिया। भाव यह कि अभीतक तो शिवजी ***'तिय भूषन'*** थे, क्योंकि स्त्रीका भूषण पति होता ही है, परन्तु अब श्रीशिवजीने

उनकी श्रीरामनाममें प्रीति देखकर उन्हें अपने भूषणयोग्य समझा। यहाँ *'तिय भूषन'* श्रीशिवजीका एक नाम है। उसके अनुसार यह अर्थ किया जाता है।

अर्थ—३ श्रीपार्वतीजीको श्रेष्ठ स्त्रियोंका भूषण कर दिया। भाव यह कि जितनी स्त्रियाँ स्त्रियोंमें भूषणरूपा थीं, उन सबोंकी शिरोमणि बना दिया। यहाँ, *'तिय भूषन'*=स्त्रियोंमें श्रेष्ठ वा शिरोमणि अर्थात् पतिव्रता स्त्रियाँ। इस अर्थसे यह जनाया कि पार्वतीजी सती स्त्रियोंमें शिरोमणि इस प्रसंगके सम्बन्धसे हुईं, पहले न थीं। यह बात रामरसायन-विधान ४ विभाग ८ में श्रीअनसूयाजीसे सतीत्वकी ईर्ष्या करके पराजित होने तथा पद्मपुराणमें सवतियाडाहके कारण पद्मादेवीसे घोर एवं अतिकालिक कलह आदि करनेकी कथाओंसे सिद्ध होती है कि वे श्रीरामनामजपके पूर्व तियभूषण नहीं थीं। श्रीरामनाममें प्रतीति और प्रीति होनेपर ही वे *'पतिदेवता सुतीय महँ प्रथम'* रेखावाली हुईं। नृसिंहपुराणमें भी कहा है कि श्रीरामनाममें अत्यन्त प्रेम रखनेवाली स्त्रियोंको पुत्र, सौभाग्य और पतिका प्रियत्व प्राप्त होता है। यथा—**'रामनामरता नारी सुतं सौभाग्यमीप्सितम्। भर्तुः प्रियत्वं लभते न वैधव्यं कदाचन॥'** (सी० रामनामप्रतापप्रकाश)

नोट—५ *'हरषे'*.....' में 'श्रुत्यनुप्रास अलंकार' है, क्योंकि एक ही स्थानसे उच्चारण होनेवाले अक्षरोंसे बने हुए शब्दोंका यहाँ प्रयोग हुआ है।

नोट—६ पातिव्रत्य धर्म स्त्रियोंका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उसके पालनसे उनको इस लोकमें पतिप्रेम और अन्तमें परलोककी प्राप्ति होती है। श्रीपार्वतीजी पतिव्रता तो थीं ही, परन्तु पतिका इतना विशेष प्रेम जो इनपर हुआ कि अर्धांगिनी बना लिया, यह उनका श्रीराम-नाममें इतना प्रेम देखकर ही हुआ। इस वाक्यसे ग्रन्थकार स्त्रियोंको उपदेश देते हैं कि उनको श्रीराम-नामका भी जप करना चाहिये।

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीशिवजी नामका प्रभाव भलीभाँति जानते हैं (कि जिससे) हालाहल विषने उनको अमृतका फल दिया॥ ८॥

नोट—१ *'नाम प्रभाउ जान सिव नीको'* इति। **'नीको'**=भलीभाँति। शिवजी सबसे अधिक इसके प्रभावको जानते हैं तभी तो *'सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है',* (विनय० २५४) *'रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि।'* (१। २५) और अहर्निश *'सादर जपहिं अनँग आराती'।* देखिये, सागर मथते समय सभी देवगण वहाँ उपस्थित थे और सभी नामके परत्व और महत्त्वसे अभिज्ञ थे, तब औरोंने क्यों न पी लिया? कारण स्पष्ट है कि वे सब श्रीरामनामके प्रतापको 'नीकी' भाँति न जानते थे। जैमिनिपुराणमें भी इसका प्रमाण है; यथा—**'रामनाम परं ब्रह्म सर्वदेवप्रपूजितम्। महेश एव जानाति नान्यो जानाति वै मुने॥'** (करु०) पद्मपुराणमें एक श्लोक ऐसा भी है, **'रामनामप्रभावं यज्जानाति गिरिजापतिः। तदर्धं गिरिजा वेत्ति तदर्धमितरे जनाः॥'** (वे० भू०) अर्थात् राम-नामका प्रभाव जो शिवजी जानते हैं, गिरिजाजी उसका आधा जानती हैं और अन्य लोग उस आधेका भी आधा जानते हैं।

नोट—२ *'कालकूट फल दीन्ह अमी को'* इति। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ८ अध्याय ५ से ७ तकमें यह कथा दी है कि 'छठे मन्वन्तरमें नारायणभगवान् अजितनामधारी हो अपने अंशसे प्रकट हुए देवासुरसंग्राममें दैत्य देवताओंका विनाश कर रहे थे। दुर्वासा ऋषिको विष्णुभगवान्ने मालाप्रसाद दिया था। उन्होंने इन्द्रको ऐरावतपर सवार रणभूमिकी ओर जाते देख वह प्रसाद उनको दे दिया। इन्द्रने प्रसाद हाथीके मस्तकपर रख दिया जो उसने पैरोंके नीचे कुचल डाला। इसपर ऋषिने शाप दिया कि 'तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा।' इसका फल तुरन्त उन्हें मिला। संग्राममें इन्द्रसहित तीनों लोक श्रीविहीन हुए। यज्ञादिक धर्मकर्म बन्द हो गये। जब कोई उपाय न समझ पड़ा, तब इन्द्रादि देवता शिवजीसहित ब्रह्माजीके पास सुमेरु शिखरपर गये। इनका हाल देख-सुन ब्रह्माजी सबको लेकर क्षीरसागरपर गये और एकाग्रचित्त हो परमपुरुषकी स्तुति करने लगे और यह भी प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! हमको उस मनोहर मूर्त्तिका शीघ्र दर्शन दीजिये, जो हमको अपनी इन्द्रियोंसे प्राप्त हो सके।' भगवान् हरिने दर्शन दिया, तब ब्रह्माजीने प्रार्थना की कि

'हमलोगोंको अपने मंगलका कुछ भी ज्ञान नहीं है, आप ही उपाय रचें, जिससे सबका कल्याण हो।' भगवान् बोले कि 'हे ब्रह्मा ! हे शम्भुदेव! हे देवगण! वह उपाय सुनो, जिससे तुम्हारा हित होगा। अपने कार्यकी सिद्धिमें कठिनाई देखकर अपना काम निकालनेके लिये शत्रुसे मेल कर लेना उचित होता है। जबतक तुम्हारी वृद्धिका समय न आवे तबतकके लिये तुम दैत्योंसे मेल कर लो। दोनों मिलकर अमृत निकालनेका प्रयत्न करो। क्षीरसागरमें तृण, लता, ओषधि, वनस्पति डालकर सागर मथो। मन्दराचलको मथानी और वासुकिको रस्सी बनाओ। ऐसा करनेसे तुमको अमृत मिलेगा। सागरसे पहले कालकूट निकलेगा, उससे न डरना, फिर रत्नादिक निकलेंगे इनमें लोभ न करना·····'। यह उपाय बताकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास सन्धिके लिये गये।···· समुद्र मथकर अमृत निकालनेकी इन्द्रकी सलाह दैत्य-दानव सभीको भली लगी। सहमत हो दानव, दैत्य और देवगण मिलकर मन्दराचलको उखाड़ ले चले। राहमें थक जानेसे पर्वत गिर पड़ा। उनमेंसे बहुतेरे कुचल गये। इनका उत्साह भंग हुआ देख भगवान् विष्णु गरुड़पर पहुँच गये।····· और लीलापूर्वक एक हाथसे पर्वतको उठाकर गरुड़पर रख उन्होंने उसे क्षीरसागरमें पहुँचा दिया। वासुकिको अमृतमें भाग देनेका लालच देकर उनको रस्सी बननेको उत्साहित किया गया।···· मन्दराचलको जलपर स्थित रखनेके लिये भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया। जब बहुत मथनेपर भी अमृत न निकला, तब अजितभगवान् स्वयं मथने लगे। पहले कालकूट निकला जो सब लोकोंको असह्य हो उठा, तब (भगवान्का इशारा पा) सब मृत्युंजय शिवजीकी शरण गये और जाकर उन्होंने उनकी स्तुति की। भगवान् शंकर करुणालय इनका दुःख देख सतीजीसे बोले कि 'प्रजापति महान् संकटमें पड़े हैं, इनके प्राणोंकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। मैं इस विषको पी लूँगा जिसमें इनका कल्याण हो।' भवानीने इस इच्छाका अनुमोदन किया। (सन्त श्रीगुरुसहायलाल शेषदत्तजीके खर्रेमेंसे यह श्लोक देते हैं—'**श्रीरामनामाखिलमन्त्रबीजं मम जीवनं च हृदये प्रविष्टम्। हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भयम्॥**' शिवजीने उस सर्वतोव्याप्त कालकूटको हथेलीपर रखकर पी लिया। नन्दीपुराणमें नन्दीश्वरके वचन हैं कि '**शृणुध्वं भो गणास्सर्वे रामनाम परं बलम्। यत्प्रसादान्महादेवो हालाहलमयीं पिबेत्॥**' (१) '**जानाति रामनाम्नस्तु परत्वं गिरिजापतिः। ततोऽन्यो न विजानाति सत्यं सत्यं वचो मम॥**' (२)

कई टीकाकारोंने लिखा है कि 'रा' उच्चारणकर शिवजीने हालाहलविष कण्ठमें धर लिया और फिर 'म' कहकर मुख बन्द कर लिया। इस दीनको इसका प्रमाण अभीतक नहीं मिला।

नोट—३ '***फल दीन्ह अमी को***' इति। विषपानका फल मृत्यु है, पर आपको वह विष भी श्रीराम-नामके प्रतापसे अमृत हो गया; यथा—'***खायो कालकूट भयो अजर अमर तन।***' (क० ७। १५८) इस विषकी तीक्ष्णतासे आपका कण्ठ नीला पड़ गया जिससे आपका नाम 'नीलकण्ठ' पड़ा। यहाँ 'प्रथम व्याघात अलंकार' है। जहाँ विरोधी अपने अनुकूल हो जावे, अन्यथाकारी यथाकारी हो जावे, जैसे यहाँ मारनेवाले विषने रामनामके प्रतापसे अमृतका फल दिया, वहाँ 'प्रथम व्याघात अलंकार' होता है। '***एकहि वस्तु जहाँ करै सुकाज विरुद्ध। प्रथम तहाँ व्याघात कहि बरनै कवि मति शुद्ध॥***' (अ० मंजूषा)

टिप्पणी—पं० रामकुमारजी यहाँतक ८ चौपाइयोंपर ये भाव लिखते हैं कि (१) '***बंदउँ नाम राम रघुबर को।.... अगुन अनूपम गुननिधान सो***'में मन्त्रके स्वरूपकी बड़ाई की। फिर यहाँतक जापकद्वारा मन्त्रकी बड़ाई की। ऊपर शिवजीका जपना कहा। अब मन्त्रके फलकी प्राप्ति कहते हैं कि '***कालकूट फल दीन्ह अमी को'।***(२) 'शिवजीको आदि-अन्तमें दिया क्योंकि ये जापकोंमें आदि हैं और फलके अवधि हैं कि अविनाशी हो गये।' (३) इस दोहेमें दिखाया है कि जो पंचदेव सूर्य, शिव, गिरिजा (शक्ति), गणपति और हरि जगत्का उपकार करते हैं, उनका उपकार भी श्रीराम-नाम करते हैं। सूर्यके प्रकाशक हैं, यह बात '***हेतु कृसानु भानु हिमकर को***'इस चौपाईमें जनायी। इसी तरह '***कालकूट फल दीन्ह अमी को***' से शिवजीको अविनाशी करना, '***प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ***' से गणेशजीको आदि पूज्य बनाना '***बिधिहरिहरमय***'से हरिको उत्पन्न करना और '***जपति सदा पिय संग भवानी····किय भूषन ती को***'से भवानीके साथ उपकार

सूचित किया।' *'सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा'* से पार्वतीजीकी श्रद्धा और *'कालकूट फल'*..... से शिवजीका अटल विश्वास दिखाया। इसीसे श्रद्धा और विश्वासको साथ रखा।

पं० श्रीकान्तशरणजीका मत है कि इस दोहेमें चारों प्रकारके नामके अर्चारूप कहे गये, स्वयंव्यक्त, दिव्य, सैद्ध और मानुष्य। जैसे श्रीशिवजीके हृदयमें 'स्वयंव्यक्त' रूप प्रकट हुआ, क्योंकि इन्हें स्वयं नामका ज्ञान एवं विश्वास हुआ। पार्वतीजीके हृदयमें इसी विश्वास तथा ज्ञानको महादेवजीने स्थापित किया। अत: 'दिव्य' हुआ। वाल्मीकिजीके हृदयमें सप्तर्षि सिद्धोंने स्थापित किया; अत: 'सैद्ध' हुआ। गणेशजीने स्वयं (अपने-आप) पृथिवीपर लिखकर और नाममूर्ति निर्माणकर परिक्रमा करके फल पाया। अत: यहाँ 'मानुष्य' हुआ।'

यद्यपि यहाँ नामका प्रकरण है, न कि नामीका, तथापि गणेशजीने जो पृथ्वीपर नाम लिखा था उसको नामका अर्चाविग्रह मानकर यह कल्पना की गयी है। कल्पना सुन्दर है। पूर्वोक्त शिवजी, पार्वतीजी और वाल्मीकिजी यदि वर्णात्मक नामका ध्यान करते हों तो उनके विषयमें भी यह कल्पना ठीक हो सकती है। क्योंकि मानसिक मूर्तिका भी अर्चाविग्रहमें ग्रहण होता है। जो विग्रह देवताओंके द्वारा स्थापित किया जाय वह 'दैव', जो सिद्धोंद्वारा स्थापित किया जाय वह 'सैद्ध' और जो मनुष्यके द्वारा स्थापित किया जाय उसे 'मानुष्य' कहा जाता है। श्रीगणेशजी देवता हैं इसलिये उनके द्वारा स्थापित विग्रहको 'दैव' विग्रह कहना विशेष ठीक होगा। चारोंको लाना हो तो शिवजी सिद्ध हैं ही अत: उनके द्वारा स्थापितको 'सैद्ध' और वाल्मीकिजी मनुष्य हैं अत: उनका 'मानुष्य' मान ले सकते हैं।

पुन:, श्रीपण्डितजी लिखते हैं कि 'इन आठ चौपाइयोंके अभ्यन्तर यह भाव दिखाया गया है कि शिवजीसे उतरकर गणेशजी नामप्रभाव जानते हैं। गणेशजी और वाल्मीकिजी दोनोंने बहुत ब्रह्महत्या की थी, दोनों नामसे पवित्र हुए, एक आदिपूज्य हुए, दूसरे आदिकवि, इसलिये दोनोंको एकत्र रखा। आगे फिर पार्वतीजीको शिवजीके समीप लिखते हैं।'

दोहा—बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव* मास॥ १९॥

शब्दार्थ—**सालि**=धान। आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार पाँच प्रकारके धानोंमेंसे यह एक प्रकारका धान है जो हेमन्त-ऋतुमें होता है। इसके भी अनेक भेद कहे जाते हैं। शालिधानको जड़हन और वासमती भी कहते हैं। यह प्राय: जेठ मासमें बोया जाता है। फिर श्रावणमें उखाड़कर रोपा जाता है। श्रावण-भादोंकी वर्षा इसकी जान है। यह अगहनके अन्त या पौषके आरम्भमें पककर तैयार हो जाता है। यह धान बहुत बारीक और सुन्दर होता है। इसका चावल सबसे उत्तम माना जाता है।

अर्थ—श्रीरघुपति भक्ति वर्षा-ऋतु है; तुलसी और सुन्दरदास 'शालि' नामक धान हैं। श्रीरामनामके दोनों श्रेष्ठ वर्ण सावन-भादोंके महीने हैं॥ १९॥

नोट—१ पं० रामकुमारजी कहते हैं कि 'ऊपर चौपाइयोंमें कुछ भक्तोंको सुख देना कहा था और अब सब भक्तोंको सुख देना कहते हैं। यहाँ सुख ही जल है। यथा—*'सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी।'*

नोट—२ यहाँ गोस्वामीजी अपनेको भी 'धान' सम कहते हैं। यथा—*'श्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुखात'* (वि० २२१) यह कवियोंकी उक्ति है। (श्रीरूपकलाजी) प्राय: लोग यह अर्थ करते हैं कि 'तुलसीदासजी कहते हैं कि 'सुदास धान हैं'।

नोट—३ *'तुलसी सालि सुदास'* इति। जबतक सावन-भादोंकी झड़ी न लगे, शालि नामक धान नहीं होता; वैसे ही श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि उत्तम दासोंका और मेरा भी आधार श्रीराम-नामके दोनों अक्षर 'रा', 'म' ही हैं, इन्हींकी वृष्टि अर्थात् जिह्वासे निरन्तर जपनेसे ही अपना जीवन है। यथा—*'रामनाम तुलसी*

* व्यासजी और रामायणीजीका पाठ 'भादौं' है।

को जीवन अधार रे' (वि० ६७) ***'तुम्हरेई नामको भरोसो भव तरिबे को बैठे उठे जागत बागत सोये सपने'*** (क० उ० ७८) ***'अति अनन्य जे हरिके दासा। रटहिं नाम निसिदिन प्रति स्वासा॥'*** (वैराग्यसंदीपनी) 'रामनाम' छोड़ और जितनी प्रकारकी भक्तियाँ हैं वे और अन्नों (चना, गेहूँ, ज्वार इत्यादि) के समान हैं जो और महीनोंके जल अथवा सींचसे भी हो जाते हैं। शालि अन्य सब धान्योंसे उत्तम होता है, इसीसे उत्तम दासोंको ही शालि कहा, अन्यको नहीं।

पं० शिवलाल पाठकजी कहते हैं कि 'जैसे और महीनोंकी वर्षासे कदापि धानकी उपज नहीं होती, वैसे ही भक्ति भक्तोंके दुःखको हरन नहीं कर सकती, यदि 'रामनाम' भक्तिकी आशाको पूर्ण न करे, तात्पर्य यह है कि बिना रामनामके अवलम्बके भक्ति असमर्थ है। ध्वनि यह है कि रामभक्ति होनेपर भी रामनाम ही भक्तोंको हराभरा रखता है'। (मानसमयंक)

नोट—४ वर्षा-ऋतुको भक्ति और युगाक्षरको श्रावण-भादों कहनेका भाव यह है कि (क) जैसे वर्षा चतुर्मासामें श्रावण-भादों दो महीने ही विशेष हैं, वैसे ही श्रीरामभक्तिमें 'रा', 'म' ही विशेष हैं। तात्पर्य यह कि भक्ति बहुत भाँतिकी है, परन्तु उन सबोंमें रामनामका निरन्तर रटना, जपना, अभ्यास—यही सबसे उत्तम भक्ति है, जैसे सावन-भादों ही वर्षाके मुख्य महीने हैं।

देवतीर्थ श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी और काशीनरेश दोनोंका मत भी यही है। रा० प० प० कार लिखते हैं कि वैद्यकादिमें वर्षा चार मासकी मानी गयी है। काष्ठजिह्वास्वामीजी इस दोहेका भाव यह लिखते हैं कि जैसे वर्षा ग्रीष्मसंतापसे जले हुए जीवोंको हरे करके सुफल कर देती है, वैसे ही जब रघुपतिभक्ति उत्पन्न हुई तब जीवोंके घोर संताप मिटे और जन्म सुफल हुआ; वर्षा चार मास रहती है, जिसमेंसे सावन-भादों दो मास सार हैं, इसी प्रकार भक्तिके साधन बहुत हैं परन्तु सार ये दो ही अक्षर हैं।' पुनः, (ख) प्राकृतिक अवस्थाओंके अनुसार वर्षाके दो-दो महीनेके छः विभागको ऋतु कहते हैं। ऋतु छः हैं। इसके अनुसार वर्षा-ऋतु केवल..... सावन-भादोंके लिये प्रयुक्त होता है। इस तरह दोहेका भाव यह होता है कि जैसे वर्षा-ऋतु सावन-भादों दो ही महीनेकी होती है, वैसे ही 'रा', 'म' हीका नित्य स्मरण केवल यही रघुपति-भक्ति है, इससे बाहर रघुपति-भक्ति है ही नहीं। श्रावण-भादों और वर्षा-ऋतुमें अभेद है, वैसे ही रामनाम और रघुपति-भक्तिमें अभेद है। इन्हींपर उत्तम दासरूपी धानका आधार है। * पुनः (ग) सालमें छः ऋतु होती हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हिम, शिशिर। इनमेंसे वर्षा-ऋतु ही सबका पोषक है; रघुपतिभक्ति वर्षा-ऋतु है और श्रीगणेश, गौरी, शिव, सूर्य और विष्णु—इन पंचदेवोंकी भक्ति अन्य पाँच ऋतुएँ हैं। यथा—***'करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥'*** ***'रमारमन पद बंदि बहोरी।'*** (अ० २७३) ***'सब करि माँगहिं एक फल रामचरन रति होउ।'*** (अ० १२९) श्रीरामभक्तिहीसे और भक्तियोंकी शोभा है; क्योंकि शिवजी, गणेशजी, पार्वतीजीका रामनाम ही जपना ऊपर कह आये हैं, सूर्य और विष्णुभगवान् भी रघुपतिभक्त हैं। यथा—***'दिनमनि चले करत गुन गाना।'*** (१। १९६) ***'हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥'*** (१। ३१७)

नोट—५ ऊपर ४ (क) में ***'बरषारितु'*** का अर्थ वर्षाकाल चौमासा है, जैसा साधारण बोलीमें कहा और समझा जाता है, अन्य अर्थमें दोहार्थकी जो चोखायी वा सुन्दरता है वह नहीं रह जाती, क्योंकि जब कई वस्तु हों तभी उनमें कोई प्रधान कहा जा सकता है। रघुपतिभक्तिमें 'रा', 'म' तभी मुख्य कहे जा सकते हैं जब रघुपतिभक्ति ही कई तरहकी हो, सो वह नौ प्रकारकी है ही, पुनः आगे दोहा २२ में भी 'रामभक्ति' में नामको श्रेष्ठ माना है।

---

* वर्षा-ऋतु=रघुपति-भक्ति | रघुपति-भक्ति=श्रावण-भादों='र' 'म'
वर्षा-ऋतु=श्रावण-भादों | 'र', 'म'=रघुपति-भक्ति।
अर्थात् रामनाम रटना ही रघुपति-भक्ति है।

नोट—६ *'बरन जुग सावन भादों मास'* का भाव यह भी कहते हैं कि जैसे सावन-भादों मेघकी झड़ी लगा देते हैं वैसे ही रामनामके वर्ण रामभक्तके हृदयरूपी थलपर प्रेमकी वर्षा करते हैं। सावन, भादोंकी वर्षासे धान बढ़ता और पुष्ट होता है, वैसे ही 'श्रीराम' नामके जपनेसे भक्तिकी वृद्धि होती है।

नोट—७ पूर्व रकार, अकार, मकार तीनों अक्षरोंका माहात्म्य कहा, अब यहाँसे *'एक छत्र एक.....'* तक 'रकार, मकार' इन दोनों अक्षरोंका माहात्म्य दूसरे प्रकारसे कहते हैं। (पं० रामकुमारजी)

नोट—८ यहाँ 'रा', 'म' पर श्रावण-भादों मास होनेका आरोप किया गया। सावन-भादों मास होनेकी सिद्धिके लिये पहले ही 'सुदास' और अपनेमें धान और रघुपतिभक्तिमें वर्षाका आरोप किया गया। अतएव यहाँ 'परम्परित रूपक' हुआ।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥ १॥

शब्दार्थ—**मनोहर**=मन हरनेवाला, सुन्दर। **बिलोचन**=नेत्र, दोनों नेत्र, विशेष नेत्र। **जन**=भक्त, दास, जापक, प्राणी। **जिय**=हृदय, **जी**=जीव, प्राण। **जोऊ**=जो (वर्ण ही)।=देख लो (यह गुजरात प्रान्तकी बोली है)। यह शब्द 'जोहना' का अपभ्रंश जान पड़ता है। देखनेके अर्थमें बहुत जगह आया है। यथा—*'करि केहरि बन जाइ न जोई।'* (अ० ११२) *'श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए।'* (अ० ९१) *'भरी क्रोध जल जाइ न जोई।'* (अ० ३४) *'समुझि मोरि करतूति कुल प्रभु महिमा जिय जोइ।'* (२। १९५)

अर्थ—१ दोनों अक्षर ('रा' और 'म') मधुर और मनोहर हैं। सब वर्णोंके नेत्र हैं और जो जनके प्राण भी हैं ॥ १॥ (पां०)

नोट—१ जैसे पूर्व दोहेमें जप और माहात्म्य जानना कहा, वैसे ही यहाँ कहते हैं। (पं० रामकुमारजी)

'आखर मधुर मनोहर दोऊ' इति। (१) नामका जप जिह्वा और मनसे होता है, सो जिह्वाके लिये तो 'मधुर' और मनके लिये 'मनोहर' हैं। अर्थात् उच्चारणमें 'मधुर' होनेसे जिह्वाको स्वाद मिलता है और समझनेमें अपनी सुन्दरतासे मनको (ये वर्ण) हर लेते हैं। (पं० रामकुमारजी)

[नोट—(क) *'दोऊ'* पद देकर यथासंख्यका निषेध किया। अर्थात् 'एक मधुर, दूसरा मनोहर' यह अर्थ नहीं है। (ख) प्राचीन ऋषियोंने इन्हें मधुर अनुभव किया है। इससे प्राचीन प्रमाण इनके मधुर होनेका पाया जाता है। यथा—**'हे जिह्वे ! मधुरप्रिये सुमधुरं श्रीरामनामात्मकं पीयूषं पिब प्रेमभक्तिमनसा हित्वा विवादानलम्। जन्मव्याधिकषायकामशमनं रम्यातिरम्यं परं श्रीगौरीशप्रियं सदैव शुभगं सर्वेश्वरं सौख्यदम्॥'** (श्रीसनकसनातनसंहिता); पुनः **'हे जिह्वे! जानकीजानेर्नाम माधुर्य्यमण्डितम्॥'** (श्रीहनुमत्संहिता) पुनः यथा— **'कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥'** (वाल्मीकीय रामायण) अर्थात् हे जिह्वे! तू मधुरप्रिय है। अत्यन्त मधुर प्रेमभक्तिपूर्वक वादविवाद छोड़कर जन्मरोग और कामादिका शमन करनेवाले, अत्यन्त रम्य, श्रीशिवपार्वतीजीके प्रिय, सबके स्वामी, सदा सुख और शुभ गतिके देनेवाले श्रीरामनामरूपी अमृतको पान कर। (श्रीसनकसनातन सं०) हे जिह्वे! श्रीजानकीपतिका नाम माधुर्यसे युक्त है उसे ले। (श्रीहनुमत्-सं०) कवितारूपी शाखापर चढ़कर मधुर जिसके अक्षर हैं ऐसे मधुर रामनामको मधुर स्वरसे बोलनेवाले वाल्मीकिरूपी कोकिलको मैं प्रणाम करता हूँ। पुनः (ग) महाराज श्रीयुगलानन्यशरणजी 'श्रीनामकान्ति' में लिखते हैं कि *'पक्षपातकी बात नहीं निज नयननसे लखि लीजै। परखो प्रीति सजाय उभय पुनि रटत महा मधु पीजै॥ और नाम सुमिरत रसना दसबीस बारमें छीजै। युगलानन्य सुनाम राम नित रटत जीह रस भीजै॥'* इसके उदाहरणस्वरूप श्रीसियानागरशरण, गर्जनबाबा श्रीराघोदास, श्रीमौनीबाबा रामशरणजी, श्रीसीतारामदास सुतीक्ष्णजी, श्रीसीतारामशरणजी, श्रीरामकृष्णदासजी आदि कई महात्माओंका परिचय इस दासको हुआ जिनके जिह्वापर भी नाम सदा विराजता रहता है, इतना मधुर लगता है कि कोई कैसा ही प्रलोभन देकर भी उसे नहीं छुड़ा सकता।]

(२) 'य र ल व म' को व्याकरणमें बिलकुल व्यंजन ही नहीं किन्तु स्वरप्राय कहा है। व्यंजनोंकी

अपेक्षा स्वर तो मधुर होते ही हैं। जो मधुर होता है वह मनोहर भी होता ही है; ये दोनों गुण एक साथ होते हैं। अतः मधुर और मनोहर कहा। (श्रीरूपकलाजी)

(३) 'र' और 'म' ये दोनों अक्षर संगीतशास्त्र और व्याकरणशास्त्रमें मधुर माने गये हैं। 'र' ऋषभ स्वरका सूचक है और 'म' मध्यम स्वरका। संगीतज्ञ इन दोनों स्वरोंको मधुर मानते हैं और मधुर होनेसे मनोहर हैं; क्योंकि मधुर रसको सारा संसार चाहता है। व्याकरणशास्त्रानुसार 'र' मूर्द्धन्य और 'म' औष्ठ्य अक्षर हैं। मिठाईका ठीक स्वाद ओठोंहीसे मिलता है। (यह अनुभवकी बात है, जो चाहे अनुभव करके देख ले कि मिठाई खानेसे हलक, तालू और जिह्वामें एक प्रकारकी जलन पैदा होती है; परन्तु ओठोंमें नहीं। 'म' को ओष्ठ्य इसलिये माना गया कि उसका उच्चारण तबतक स्पष्ट नहीं हो सकता जबतक दोनों ओठ विलग-विलग न हो जायँ।)

(४) प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी कहते हैं कि (क) 'र' और 'म' अक्षर 'मधुर' और 'मनोहर' शब्दोंके आदि और अन्तमें आते हैं। गोस्वामीजीका भाव इन शब्दोंके रखनेसे यह जान पड़ता है कि वे 'र' और 'म' को 'माधुरी' और 'मनोहरता' का आदि कारण और अन्तिम सीमा मानते थे। नहीं तो वे कोई अन्य शब्द भी रख सकते थे। (ख) गणितविद्यासे 'र' और 'म' की बाराखड़ियोंसे सीधे वा उलटे जितने भी शब्द बन सकते हैं, उन शब्दोंमें कुछ थोड़े तो निरर्थक होते हैं और कुछ ही अमधुर और अमनोहर। जो चाहे सो बनाकर देख ले; लगभग अस्सी प्रति सैकड़ा ऐसे शब्द बनेंगे जिनके अर्थसे किसी-न-किसी प्रकारकी मधुरता और मनोहरता प्रकट होती है।

(५) दोनों मधुर हैं; क्योंकि इनसे जिह्वाको रस मिलता है। मनोहर हैं अर्थात् मनको एकाग्र करते हैं। (पं०)

(६) श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'ह ष झ ठ ध घ भ' गम्भीर योगियोंके लायक हैं, 'म न य र ल ज द ग अ' मधुर हैं, माधुर्यगुणके लायक हैं। पुनः स्वर 'सा रे गा मा पा धा नी' में रकार ऋषभस्वर, मकार मध्यम स्वर हैं। इसलिये रागके साथ गानेमें मनोहर हैं। भाव-भेदमें मधुर, नादमें मनोहर हैं। पुनः मनोहर अर्थात् सुन्दर हैं। भाव यह कि सन्ध्यक्षर, द्वित्त्वाक्षर, संयोगादि नहीं हैं, इसलिये लिखने, देखने और सुननेमें भी मनोहर हैं।

(७) महात्मा श्रीहरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि यहाँ दोनों अक्षरोंके गुण कहते हैं। अवर्ग और स्पर्शनके पंचम यवर्गके अक्षर उच्चारणमें मधुर हैं और वर्गोंके चतुर्थ बहुत गम्भीर हैं, तीसरे आखर भी सुहावने हैं; बाकीके रूखे हैं। इसलिये रकार-मकार मधुर कहे गये और अर्थसे दोनों मनोहर हैं।

(८) जैसे आमका विचार आते ही आमके मीठे स्वाद और रसहीपर ध्यान जाता है और उसके खानेको जी ललचाता है, वैसे ही श्रीरामनामके अक्षरोंका महत्त्व नामके सुमिरते ही जीमें आता है तो वे जिह्वा और मन दोनोंको मीठे वा प्रिय लगने लगते हैं। प्रिय लगनेसे फिर उनको प्रेमसे सुमिरते ही बनता है और सुमिरन करनेसे मनके सब विकार दूर हो जाते हैं। अतः नामका महत्त्व विचारते हुए जप करना चाहिये।

नोट—२ '***बरन बिलोचन***' इति। (क) मानसदीपककार लिखते हैं कि 'अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग इत्यादि आठों वर्गोंके वर्ण सरस्वतीके अष्टांग हैं। चरणोंके क्रमसे 'र', 'म' दोनों नेत्रके स्थानमें पड़े हैं, 'य' नासिकास्थानमें है। इस विचारसे '***बिलोचन***' कहा। 'र' दाहिना नेत्र है, 'म' बायाँ। (ख) वर्णमालाके कुल अक्षरोंसे तन्त्रशास्त्रानुसार जब सरस्वतीका चित्र बनाया जाता है तो रकार-मकार नेत्रके स्थानपर स्थापित किये जाते हैं, जिससे यह प्रकट होता है कि यही 'र', 'म' सरस्वतीजीके नेत्र हैं। अर्थात् बिना इन दो अक्षरोंके सरस्वती अन्धी हो जायगी और अन्धी होकर संसारमें बेकाम हो जायगी और संसारका सारा काम गड़बड़ हो जायगा। पद्माकर कविके वंशजोंमें अब भी वर्णोंद्वारा बनाया हुआ यह सरस्वतीतन्त्र है और इसीके पूजनसे उस वंशके लोग कवि होते जाते हैं। (यह बात दीनजीसे संग्रहकर्त्ताको मालूम हुई।)

(ग) *'बरन बिलोचन',* यथा—'**लोचने द्वे श्रुतीनाम्**' अर्थात् ये दोनों वर्ण श्रुतियोंके नेत्र हैं। श्रुतियाँ जो यश-गान कर रही हैं, वह इन्हीं दो नेत्रोंसे देखकर। पुनश्च—'**उन्मीलत्पुण्यपुञ्जद्रुमललितदले लोचने च श्रुतीनां**....' महाशम्भुसंहिता। अर्थात् उदयको प्राप्त होनेवाला जो पुण्यसमूहरूपी वृक्ष है उसके यही दो दल हैं और श्रुतियोंके नेत्र हैं।

नोट—३ *'जन जिय जोऊ'* इति। इसके और अर्थ ये किये जाते हैं—

अर्थ—२ जो जनके हृदयमें रहते हैं।

अर्थ—३ 'जनके जीको देखनेवाले हैं।' अर्थात् उनके हृदयको देखते रहते हैं कि इनके जीमें जो इच्छा हो उसे हम तुरत पूरी करें।

अर्थ—४ 'जो जनके हृदयके भी नेत्र हैं'। भाव यह है कि जिन प्राणियोंके हृदयमें ये दोनों अक्षर नहीं हैं, वे अन्धे ही हैं, श्रीरामरूपादि नहीं देख सकते। यथा—*'काई बिषय मुकुर मन लागी॥....मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥'* (१।११५) *'ताही को सूझत सदा दसरथराजकुमार। चश्मा जाके दृगनमें लग्यो रकार मकार॥'* (श्री १०८ युगलानन्यशरणजी)

अर्थ—५ पं० रामकुमारजीका मत है कि 'दोऊ' देहलीदीपक है। अर्थात् दोनों वर्ण जनके हृदयके देखनेवाले दोनों नेत्र हैं। भाव यह कि औरोंके अन्तःकरणके नेत्र ज्ञान और वैराग्य हैं। यथा—*'ज्ञान बिराग नयन उरगारी।'* (७।१२०) परन्तु भक्तोंके अन्तःकरणके नेत्र 'रा' और 'म' ही हैं। इन्हींसे वे तीनों कालों और तीनों लोकोंकी बातें देखते हैं। यहाँ 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है।

अर्थ—६ जिन हृदयके नेत्रोंसे भक्त भगवान्‌का स्वरूप देखते हैं, वे (नेत्र) मानो ये दोनों अक्षर ही हैं। (पं०)

अर्थ—७ हे प्राणियो! अपने जीवके नेत्रोंसे देखो। (वै०)

अर्थ—८ हे भक्तजनो! (स्वयं अपने) हृदयमें विचार देखो। (दीनजी)

अर्थ—९ ये वर्ण नेत्र हैं, इनसे जीवको (आत्मस्वरूपको) देख लो।

सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥ २॥

अर्थ—स्मरण करनेमें सबको सुलभ और सुख देनेवाले हैं। लोकमें लाभ, परलोकमें निर्वाह करते हैं॥ २॥

नोट—१ 'स्मरण करते ही सुलभ हैं', ऐसा भी अर्थ किया जाता है। इसका भाव यह है कि सब मनोरथ इनसे सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। यथा—*'कासी बिधि बसि तनु तजै हठि तन तजै प्रयाग। तुलसी जो फल सो सुलभ रामनाम अनुराग॥'* (दो० १४), *'पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम। सुलभ सिद्धि सब साहिबो सुमिरत सीताराम॥'* (दो० ५७०), *'तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि'* (बरवै०), *'सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥'* (बा० ३२) पुनः, सुलभता यहाँतक कि *'धोखेहु सुमिरत पातक पुंज सिराने।'* (विनय० २३६)

नोट—२ स्मरण करनेमें 'सुलभ' हैं। इसका भाव यह है कि उच्चारणमें कठिन नहीं, जैसे ट ठ ड ढ ण झ क्ष छ इत्यादि कठिन हैं। इनके उच्चारणमें व्याकरणकी सहायता नहीं लेनी पड़ती। सहज ही बच्चे-बूढ़े, पढ़े-अनपढ़े—सभी उच्चारण कर लेते हैं। **सुलभ**=सुगम, सरल, आसान, सहल। पुनः सुलभ हैं अर्थात् सबको इनके स्मरणका अधिकार है।

नोट—३ *'सुलभ सुखद'* कहकर सूचित किया कि और मन्त्र एक तो स्मरणमें कठिन हैं, दूसरे सबको सुखद नहीं, अधिकारीको सुखद हैं, अनधिकारीको विघ्न करते हैं। (पं० रामकुमारजी) पुनः भाव कि स्मरण करनेमें स्थानादिका कोई विचार या नियम नहीं है। (रा० प्र०)

नोट—४ *'सुखद सुलभ सब काहू'* इति। गायत्री आदि बहुत-से मन्त्र ऐसे हैं कि उनके जपका अधिकार शूद्र और अन्त्यजको और विशेषतः स्त्रियोंको नहीं है, परन्तु 'रामनाम' के स्मरणका अधिकार स्त्री-पुरुष,

नीच-ऊँच, महा अधम पापी कोई भी किसी ही वर्ण या आश्रमका क्यों न हो सभीको है। यथा—***'नीचेहू को, ऊँचहू को रंकहू को, रायहू को, सुलभ सुखद आपनो सो घरु है।'*** (विनय० २५५) जैसे अपने घरमें रोक-टोक नहीं और सब सुख, वैसे ही रामनाममें सबका अधिकार और उससे सबको सुख प्राप्त हो सकता है।

नोट—५ ***'लोक लाहु परलोक निबाहू'*** इति। भाव यह है कि 'अन्य मन्त्रोंमेंसे कोई लोकमें लाभ देते हैं; परलोक नहीं बना सकते, कोई परलोक बनाते हैं, इस लोकमें लाभ नहीं देते। परन्तु रामनाम लोक और परलोक दोनों बनाते हैं, स्वार्थ-परमार्थ दोनोंके देनेवाले हैं। अर्थात् इस लोकमें रोटी, लूगा, धन, यश सभी सुखके पदार्थोंको देनेवाले हैं और परलोकमें प्रभुका धाम प्राप्त करा देते हैं। यथा—***'स्वारथ साधक परमारथ दायक नामु'*** (वि० २५४), ***'कामतरु रामनाम जोई जोई माँगि है। तुलसी स्वारथ परमारथ न खाँगि है॥'*** (वि० ७०), ***'रोटी लूगा नीकें राखे आगेहूके बेद भाषै भलो ह्वैहैं तेरो।'*** (वि० ७६) (पं० रामकुमारजी) पुनः भाव कि 'भगवान्‌के दिव्य धाममें दिव्य देहसे सदा भगवत्सेवामें नियुक्त रखते हैं।' (मानसांक) पुनः, भाव कि लोकमें सुख होनेसे अनेक शुभाशुभ कर्म भी अवश्य ही होंगे, जिनसे स्वर्ग-नरक आदि बाधाओंका भय होगा। अतः ***'लोक लाहु'*** कहकर ***'परलोक निबाहू'*** कहा। अर्थात् ये दोनों वर्ण उस बाधाको मिटाकर अकंटक शुभगति देते हैं। यथा—**'श्रीराम रामेति जना ये जपन्ति च सर्वदा। तेषां मुक्तिश्च भुक्तिश्च भविष्यति न संशयः॥'** (श्रीरामस्तवराज) यहाँ 'स्वभावोक्ति अलंकार' है। यहाँ 'र, म' का सहज स्वभाव वर्णित है।

कहत सुनत सुमिरत * सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥ ३॥

शब्दार्थ—**सुठि**=अत्यन्त, बहुत ही। यथा—***'दामिनि बरन लखन सुठि नीके।'*** (अयो० ११५), ***'सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू।'*** (अयो० १६१), ***जौं ए मुनिपट धर जटिल सुन्दर सुठि सुकुमार।'*** (अयो० ११९), ***'किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर।'*** (अयो० १२०), ***'सुठि सुंदर संबाद बर।'*** (१। ३६), ***'भूषन बसन बेष सुठि सादे।'*** (अयो० २२१)

अर्थ—कहने, सुनने और सुमिरनमें बहुत ही अच्छे हैं और मुझ तुलसीदासको तो श्रीराम-लक्ष्मणके समान प्यारे हैं॥ ३॥

प्रश्न—कहने-सुनने-सुमिरनेमें नीके होनेका क्या भाव है?

उत्तर—(१) कहनेमें नीके यह है कि नामके अक्षरोंके शब्दसे यमदूत डरकर भाग जाते हैं। यथा—**'भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्। तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥'** श्रीरामरक्षास्तोत्र। पुनः, ***'जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥'*** (बा० ३१५) सुननेमें नीके, यथा—***'जाकर नाम सुनत सुभ होई।'*** (बा० १९३) सुननेसे ही कल्याण हो जाता है। स्मरण करनेमें नीके हैं। यथा, ***'राम (नाम) सुमिरन सब बिधि ही को राज रे।'*** (विनय० ६७), ***'सुमिरत सकल सुमंगल मूला।'*** (२। २४८)

(२) पुनः कहनेमें जिह्वाको नीके हैं, क्योंकि मधुर हैं। सुननेमें कानको नीके हैं, क्योंकि मनोहर हैं। अर्थात् ऊपर जो बातें दो चौपाइयोंमें कही थीं उनको इस चौपाईमें एकत्र करके कहा है।

टिप्पणी—१(क) ***'प्रिय तुलसी के'*** कहनेका भाव यह है कि औरोंकी हम नहीं कहते, हमको श्रीराम-लक्ष्मण सम प्रिय हैं। 'रा' राम और 'म' लक्ष्मणके वाचक हैं। इसलिये ***'राम लखन सम प्रिय'*** कहा। 'हनुमानबाहुक' में भी ऐसा ही कहा है। यथा—***'सुमिरे सहाय रामलखन आखर दोउ जिन्हके समूह साके जागत जहान हैं।'*** ☞ग्रन्थकारकी प्रीति नाम-नामीमें समान है। रकार-मकार श्रीराम-लक्ष्मणसम हैं, इसीसे उनके समान प्रिय कहा। पुनः, (ख) ***'रामलखन सम'*** प्रिय कहा; क्योंकि ये सबके प्रिय हैं! यथा—

---

* समुझत—१७२१, १७६२, छ०, को० रा० सुमिरत—१६६१, १७०४।

'ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी।' (१। २१६) 'तुलसी' को 'राम-लखन' सम प्रिय हैं, क्योंकि 'तुलसी' इन्हींके उपासक हैं, इसीसे और किसीके समान प्रिय न कहा। (ग) ग्रन्थकार यहाँ और उपासकोंको उपदेश देते हैं कि नाममें श्रीराम-लक्ष्मण-सम प्रीति करो। यथा—*'बंदउँ राम लखन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही॥'* (विनय० ३६)

पं०—कोई वर्ण, श्लोक आदि कहनेमें सुन्दर होते हैं, पर अर्थ सुन्दर न होनेसे सुननेमें सुन्दर नहीं होते, कोई श्रवण-रोचक होते हैं पर शिष्टसमाजमें कथनयोग्य नहीं होते (जैसे कामवार्ता), कोई (अभिचारादिके) मन्त्र सुमिरनयोग्य होते हैं पर मनको मलिन करते हैं और फल भी उनका नीच होता है; पर श्रीरामनामके वर्णोंका कहना, सुनना, सुमिरना सभी अति सुन्दर हैं।

बैजनाथजी—यहाँ नाम और नामीका ऐक्य दिखाते हैं। भाव यह कि कोई यह न समझे कि रूपसे भिन्न नामका प्रभाव कहते हैं, अतएव कहते हैं कि हमको 'राम-लक्ष्मण' सम प्रिय हैं। श्रीजानकीरूप तो प्रभुके ही रूपमें प्रथम *'गिरा अरथ जलबीचि सम'* में बोध करा आये, इससे दो ही रूपमें तीनों रूप आ गये। 'र' राम हैं, अकार जानकीजी हैं परन्तु दोनों वर्ण एकहीमें हैं। 'म' लक्ष्मणजी हैं। इसीसे मुझे अत्यन्त नीके लगते हैं। *'कहत सुनत.....'* से जनाया कि मुखसे कहता हूँ, कानोंसे सुनता हूँ और मनसे स्मरण करता हूँ।

प्रोफेसर लाला भगवानदीनजी कहते हैं कि शालग्रामविग्रह रूपान्तरसे श्रीराम ही हैं, वे तुलसीको प्रिय हैं ही। अर्थात् तुलसी और शालग्रामका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार तुलसीके लिये 'र', 'म' हैं। यहाँ 'उपमा अलंकार' है।

बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम* सहज सँघाती॥ ४॥

अर्थ—रकार और मकारको (पृथक्-पृथक् वर्ण मानकर) वर्णन करनेमें दोनों वर्णोंकी प्रीतिमें पृथक्ता जान पड़ती है, (पर वास्तवमें ये वर्ण) स्वभावसे ही एक साथ रहते हैं, जैसे ब्रह्म और जीव ॥ ४॥

टिप्पणी—वर्णोंके वर्णन करनेमें प्रीति (मित्रता-मैत्री) बिलगाती है। अर्थात् 'रकार', 'मकार' (र, म) की वर्णमैत्री नहीं मिलती। क्योंकि (क) 'र' अन्तस्थ है, 'म' स्पर्श है। (ख) 'र' यवर्ग है और 'म' पवर्ग। (ग) 'र' मूर्द्धसम्बन्धी है और 'म' ओष्ठसम्बन्धी। पुनः, इनके वर्णनमें न संग है न प्रीति, पर अर्थमें संग और प्रीति दोनों हैं, रकार ब्रह्मवाचक है और मकार जीववाचक।

नोट—इस चौपाईके और भी अर्थ और भाव ये कहे जाते हैं।

(१) 'रा', 'म' के स्थान, प्रयत्न, आकार और अर्थ इत्यादि यदि पृथक्-पृथक् वर्णन करें तो इनकी प्रीतिमें अन्तर पड़ जाता है; क्योंकि एकका उच्चारण मूर्धा और दूसरेका ओष्ठ और नासिकासे होता है; एक वैराग्यका हेतु है तो दूसरा भक्तिका, इत्यादि। परन्तु वस्तुतः ये *'ब्रह्म जीव सम'* सहज ही साथी हैं। (२) 'वर्णोंका वर्णन करनेवालेकी प्रीतिको अपनेमें विशेष लगा लेती है।' यहाँ **बिलगाती**=विशेष करके लगाती है। यथा, *'भनिति मोरि सिवकृपा बिभाती।'* (बा० १५) में *बिभाती*=विशेष भाती। (३) मानसपरिचारिका और अन्य दो-एक टीकाकारोंने एक अर्थ, *'बरनत बर न प्रीति बिलगाती'* ऐसा पाठ मानकर, यह किया है कि 'वर्णन करनेमें श्रेष्ठ हैं, इनकी प्रीति विलग नहीं होती।' (४) इन अक्षरोंके वर्णन करनेसे प्रीति बिलग हो जाती (प्रकट हो जाती) है (जैसे दूधमेंसे मक्खन) अर्थात् अक्षरोंके वर्णन करनेसे प्रेम प्रत्यक्ष सबको देख पड़ता है। (श्रीरूपकलाजी) यहाँ *बिलगाती*=अलग हो जाती। यथा—*'सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।'* (बा० २७१) (५) 'यदि इन दोनोंका वर्णन करने लगें कि रामतापिनीमें ऐसा कहा है, सदाशिवसंहिता, ब्रह्मयामल, श्रीरामानुजमन्त्रार्थ, महारामायण इत्यादिमें इनके विषयमें ऐसा कहा है तो इस भाँतिके विवरण सुनकर प्रमोद विलग हो आता है अर्थात् जीवको फड़का देता है, सुना नहीं कि मारे आनन्दके रोमांचित हो आया' (मानसतत्त्वविवरण) (६) 'र' और 'म' का अलग-अलग वर्णन करनेमें प्रीति विलगाती है।

* इव—१७२१, १७६२, छ०। सम—१६६१, १७०४, को० रा०।

अर्थात् बीजमन्त्रकी दृष्टिसे इनके उच्चारण अर्थ और फलमें भिन्नता देख पड़ती है (मानसांक)। (७) बैजनाथजी लिखते हैं कि 'अब नित्यनैमित्य विभूतिका हेतु कहते हैं कि जिस प्रकार नैमित्यविभूति लीलामात्र श्रीराम, श्रीजानकी और श्रीलक्ष्मण—तीनों रूप भिन्न भी हो जाते हैं, उसी प्रकार रकार और मकारका अन्य वर्णोंके साथ वाणीसे वर्णन करनेमें इन ('रा, म') की प्रीति विलग हो जाती है। 'अर्थात् छन्दादिमें रकार कहो, अकार कहो, मकार कहो सो यह नैमित्य लीलामात्रवत् है और नित्य विभूतिमें तो 'रा', 'म' सहज सँघाती हैं। यथा—श्रीरामानुजमन्त्रमें '**रकारार्थो रामः सगुण परमैश्वर्यजलधिर्मकारार्थो जीवः सकलविधिकैंकर्यनिपुणः। तयोर्मध्याकारो युगलमथसम्बन्धमनयोरनन्याहं ब्रूते त्रिनिगमसु सारोऽयमतुलः॥**' अर्थात् 'र' का अर्थ है, दिव्य गुण और परमैश्वर्यसे युक्त श्रीरामजी, 'म' का अर्थ है सब प्रकारके कैंकर्यमें निपुण जीव। मध्यके 'आ' का अर्थ है, मैं आपका अनन्य हूँ। यह जीवका श्रीरामजीसे सम्बन्ध बतलानेवाला है। यह तीनों वेदोंका अपूर्व सार है। जबतक जीव अपना स्वरूप भूला है तबतक भटकता है। जब अपना स्वरूप जान लेता है तब भक्तिद्वारा प्रभुके निकट ही है, वैसे ही 'रा', 'म' नित्य साथी हैं।' (८) 'रकारमें स्पर्श थोड़ा और मकारमें बहुत है जिससे एकमें 'इषत्स्पृष्ट प्रयत्न' है और दूसरेमें स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्शका भी है। रकार भीतर मुखके, मकार बाहर मूर्धा ओष्ठस्थानसे। 'रा' नाम शब्दका है और 'म' अर्थज्ञानका। इन दोनोंके गुण कहते ही इनकी परस्परकी प्रीति छूटी-सी दिखाती है।' (रा० प०, रा० प्र०) (९) विलगाती गोरखपुर, बस्ती और बुन्देलखण्डमें देशबोली है। वहाँ 'दिखाती, देख पड़ती' को भी 'बिलगाती' कहते हैं। इस प्रकार यह अर्थ होगा कि वर्णोंके वर्णन (उच्चारण, जप) से ही उनकी प्रीति देख पड़ती है कि वे....। (शेषदत्तजी) (१०) श्रीविन्दुब्रह्मचारीजी—'वर्णन करनेसे वर्णकी प्रीति (मैत्री) विलग अर्थात् अलग होती है। क्योंकि ब्रह्मजीवकी तरह सहज संगी हैं। रामनाममें दो वर्ण रकार और मकार हैं। रकार परमात्मतत्त्वका वाची है और मकार जीवका बोधक है। जीवतत्त्व परमात्मासे इस तरहपर मिला हुआ है और परमात्मा जीवतत्त्वमें इस तरहसे रमण करता है कि उनका सम्बन्ध अथवा लगाव तनिक भी नहीं खण्डित होता। दोनोंका अभिन्न और अंग-अंगी-भावसे अन्योन्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार कि कोई उनका खण्ड एवं विच्छेद नहीं कर सकता। वे ऐसे सर्वव्याप्त हैं कि सर्वत्र सम्पूर्ण वही हैं, उनके भेदके लिये कहीं तिलमात्र भी अवकाश ही नहीं है। उनकी अभिन्नता यहाँतक सिद्ध है कि वे दो भिन्न वस्तु ही नहीं, '**जीवो ब्रह्मैव नापरः।**' 'तत्त्वमसि' इसीका प्रतिपादक है। इसी प्रकार जैसे जीव-ब्रह्मकी अभिन्नता सिद्ध है, श्रीरामनामके भी दोनों अक्षर एक हैं, वे परस्पर एक-दूसरेसे अत्यन्त मिले हुए हैं। 'श्रीरामनामकलामणिकोष' में गोस्वामीजी वन्दना करते हुए कहते हैं—'***बंदौं श्री दोऊ बरन तुलसीजीवनमूर। लसे रसे इक एक ते तार तार दोउ पूर॥***' दोनों वर्णोंके अभेदभावकी गोस्वामीजीकी यह उक्ति उनकी उपर्युक्त चौपाईके भावकी पुष्टि करती है। अस्तु, वे दोनों श्रीनामके वर्ण इतने मिले हुए हैं, उनका इतना एकाकार है कि शब्दगत होनेसे, कथनसे उनकी प्रीति अर्थात् मैत्री भंग हो जाती है। इसलिये वस्तुतः उनके संश्लिष्ट एवं संघनिष्ठ तत्त्वका वर्णन नहीं हो सकता, वह सर्वदा अनिर्वचनीय है। जिस तरह अंकुरसे उसके विकासस्वरूप दो दल फूटते हैं, इसी प्रकार उस अभिन्न तत्त्वसे उसके संकेतस्वरूप दो वर्ण प्रकट हुए और जैसे अंकुरमें उनका एकाकार है वैसे ही अपनी मूल अवस्थामें वे दोनों वर्ण एक (तत्त्व) हैं। वे अक्षर निरक्षर हैं, यह आर्षसिद्धान्त है, '**निवर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिपम्।**' इस रहस्यको यथावत् रामनामके आराधक योगिजन ही जानते हैं। (११) दोनों अक्षरोंका फल भिन्न-भिन्न कहनेसे अपनी प्रीतिमें भेद पड़ेगा, क्योंकि कुछ न्यूनता-अधिकता अवश्य कही जायगी और ये भिन्न-भिन्न होनेवाले नहीं हैं। अतएव इनके फलका भेदकथन ठीक नहीं (पं०)। (१२) वर्णन करनेमें प्रीति विलगाती है कि दो स्वरूप हो गये, नहीं तो वे तो ब्रह्मजीवके समान सहज सँघाती हैं। (शीलावृत्त)

नोट—२ '***ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती***' इति। (१) प्रोफेसर दीनजी कहते हैं कि 'र', 'म' ब्रह्म

और जीवकी तरह सहज सँघाती हैं। अर्थात् जहाँ एक है, वहाँ दूसरा भी है। बिना जीवके ब्रह्मका अस्तित्व नहीं प्रमाणित हो सकता, न बिना ब्रह्मके जीवका अस्तित्व हो सकता है। इसी तरह 'र', 'म' सहज सँघाती हैं। अर्थात् यद्यपि 'मकार' और 'रकारके' बीचमें 'य' अक्षर आ जाता है तो भी ये दोनों उसी प्रकार एक हैं जिस प्रकार बीचके नाक होनेपर भी दोनों नेत्र एक ही अवयव माने जाते हैं, जहाँ एक आँख जायगी वहाँ दूसरी अवश्य जायगी और तत्त्व भी 'दोनों' नेत्रोंका एक ही है, जो शक्ति एकमें है वही दूसरेमें भी है, यही उनका 'सहज सँघाती' होना है। 'र' को जब हम बीजरूप 'राँ' से उच्चारण करते हैं तो 'म' स्वयं अनुस्वाररूपसे आ जाता है, यही 'सहज सँघातीपन' है। अर्थात् बिना उसके उसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

(२) जैसे ब्रह्म सदा जीवके साथ रहकर उसकी रक्षा किया करते हैं। यथा—***'तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही'*** से ***'तू निज कर्म जाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तजेउ नहिं तेरो॥'*** तक (वि० १३६) ***'ब्रह्मजीव इव सहज सनेहू।'*** (बा० २१६)

(३) श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ११ में भगवान्ने उद्धवजीसे कहा है कि उद्धव! अब मैं तुमसे एक ही धर्मीकी बद्ध और मुक्त इन विरुद्ध धर्मोंवाली दोनों स्थितियोंकी विलक्षणताका वर्णन करता हूँ। ये दोनों पक्षी (जीव और ब्रह्म) समान (नित्य, चेतन) सखा हैं और एक ही वृक्ष (शरीर) में स्वेच्छासे (जीव कर्म-फलभोगार्थ और ब्रह्म सर्वव्यापक होनेके कारण) घोसला बनाकर रहते हैं। उनमेंसे एक (जीव) तो उसके फलों (दु:ख-सुखादि कर्मफलों) को खाता (भोगता) है और दूसरा (ब्रह्म) निराहार (कर्मफलादिसे असंग साक्षीमात्र) रहकर भी अपने ऐश्वर्यके कारण देदीप्यमान रहता है। यथा—**'अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते। विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि॥'**(५) **'सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे। एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्॥'** (६) 'यह भाव ***'सहज सँघाती'*** का है। इसी तरह 'रा' 'म' का नित्य साथ है। सेतुबन्धमें जब पत्थर एक साथ जुटे न रहने पाते थे तब एक पत्थरपर 'रा' लिख दिया जाता था, दूसरेपर 'म' और दोनोंको सटा दिया जाता था। बस, फिर तो वे पत्थर अलग न होते थे। (आनन्दरा० सारकाण्ड सर्ग १० में श्रीरामजीने नलसे कहा है।)

(४) भाव कि कोई संग ऐसा है कि पहले था अब छूट गया जैसे अज्ञान न जाने कबसे था अब छूट गया। इसे 'अनादि सान्त' कहेंगे। कोई संग पहले न था पीछे हुआ, जैसे ज्ञान पहले न था पीछे हुआ, इसे ***'सादि अनन्त'*** कहेंगे। कोई संग ऐसा है कि न तो पहले ही था न अन्तमें, किन्तु बीचमें कुछ समयतक रहा। जैसे कि पुत्र-मित्र आदिका संग। यह 'सादि सान्त' है। परन्तु यह ***'ब्रह्म-जीवका संग'*** तीनोंसे न्यारा है, यह पहले भी था, अब भी है और सदा रहेगा। अतएव ***'सहज सँघाती'*** कहा। अर्थात् इनका संग ***'अनादि अनन्त'*** है, यह बतानेके लिये ***'ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती'*** कहा।

इसपर शंका हो सकती है कि 'जब उनका संग अनादि-अनन्त है तब यह कैसे कहा जाता है कि जीव ईश्वरको प्राप्त हुआ। यथा—**'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** (तै० २। १) (ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको प्राप्त होता है), ***'होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।'*** (४। १४) इसका समाधान यह है कि परमात्माके व्यापक होनेसे उसके अव्यक्तरूपसे जीव कभी भी अलग नहीं हो सकता, क्योंकि इन दोनोंका अपृथक् सिद्ध सम्बन्ध है। परन्तु जैसे कोई मनुष्य किसी कार्यवश हाथसे अँगूठी उतार अपने गले या शरीरके किसी अंगमें बाँध ले और विस्मरण हो जानेसे फिर उसे सर्वत्र खोजा करे, जब किसीके बतानेसे वह उसे प्राप्त कर लेता है तब वह कहता है कि अँगूठी मिल गयी। इसी तरह जीव सहज सँघाती परमात्माको अनादि अविद्याके कारण भूल गया और परमात्माके हृदयस्थ होते हुए भी वह उसे यत्र-तत्र ढूँढ़ता फिरता है; जब परमात्माकी कृपासे कोई सद्गुरु परमात्माका ज्ञान करा देता है, तब वह समझता है कि मुझको भगवान् प्राप्त हो गये। अर्थात् शास्त्रोंमें जो प्राप्ति कही गयी है वह ज्ञान होनेको ही कही गयी है। यहाँ ***'सहज सँघाती'*** जो कहा गया है वह अव्यक्तरूपको लक्ष्य करके ही कहा गया है।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥ ५॥

अर्थ—(दोनों वर्ण) नर और नारायणके समान सुन्दर भाई हैं। (यों तो वे) जगत्‌भरके पालनकर्ता हैं (पर) अपने जनके विशेष रक्षक हैं॥ ५॥

नोट—१ 'नर-नारायणका भायप कैसा था' यह बात जैमिनीय भारतकी कथासे विदित हो जायगी। जैमिनी भारतमें कहते हैं कि सहस्रकवची दैत्यने तपसे सूर्यभगवान्‌को प्रसन्न करके वर माँग लिया था कि मेरे शरीरमें हजार कवच हों, जब कोई हजार वर्ष युद्ध करे तब कहीं एक कवच टूट सके , पर कवच टूटते ही शत्रु मर जावे। उसके मारनेको नर-नारायणावतार हुआ। एक भाई हजार वर्ष युद्ध करके मरता तब दूसरा भाई मन्त्रसे उसे जिलाकर और स्वयं हजार वर्ष युद्ध करके दूसरा कवच तोड़कर मरता, तब पहला इनको जिलाता और स्वयं युद्ध करता।..... इस तरहसे लड़ते-लड़ते जब एक ही कवच रह गया तब दैत्य भागकर सूर्यमें लीन हो गया और तब नर-नारायण बदरीनारायणमें जाकर तप करने लगे। वही असुर द्वापरमें कर्ण हुआ जो गर्भसे ही कवच धारण किये हुए निकला, तब नर-नारायणहीने अर्जुन-श्रीकृष्ण हो उसे मारा (यह कथा सुनी हुई लिखी गयी है)।

नोट—२ ***'नर नारायण'*** इति। धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे भगवान्‌ने शान्तात्मा ऋषिश्रेष्ठ नर और नारायणके रूपमें अवतार लिया। उन्होंने आत्मतत्त्वको लक्षित करनेवाला कर्मत्यागरूप कर्मका उपदेश किया। वे बदरिकाश्रममें आज भी विराजमान हैं। विनय० पद ६० में इनकी किंचित् कथा भी है और भा० ११।४६।१६ में कुछ कथा है। ये भगवान्‌हीके दो रूप हैं।

टिप्पणी—१ (क) निर्गुणरूपसे जगत्‌का उपकार नहीं होता, जैसा कहा है कि ***'ब्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँदरासी॥' 'अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥'*** (२३। ६-७) इसीलिये यहाँ सगुणकी उपमा दी। सगुणरूपसे सबका और सब प्रकारसे उपकार होता है, इसलिये रामनामके दोनों वर्णोंका नर-नारायणरूपसे जगत्‌का पालन करना कहा। (ख) भाईपना ऐसा है कि जिह्वासे दोनों प्रकट होते हैं। इसलिये जीभ माता है, 'र', 'म' भाई हैं। यथा—***'जीह जसोमति हरि हलधर से।'*** (२०। ८)

टिप्पणी—२ ***'बिसेषि जन त्राता'*** इति। अर्थात् (क) जैसे नर-नारायणने जगत्‌भरका पालन किया, पर भरतखण्डकी विशेष रक्षा करते हैं; वैसे ही ये दोनों वर्ण जगन्मात्रके रक्षक हैं, पर जापक जनके विशेष रक्षक हैं। जगन्मात्रका पालन इसी लोकमें करते हैं और जापक जनके लोक-परलोक दोनोंकी रक्षा करते हैं। वा, (ख) ईश्वरत्वगुणसे सबका और वात्सल्यसे अपने जनका पालन करते हैं। यथा—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाये।' से 'सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रान प्रिय'*** तक। (७। ८६-८७)

नोट—३ पुनः, नर-नारायण भरतखण्डके विशेष रक्षक हैं और वहाँ नारदजी उनके पुजारी हैं, वैसे ही यहाँ 'रा', 'म' भरतजीकी रीतिवाले भक्तोंरूपी भरतखण्डके विशेष रक्षक हैं, नामका स्नेह, नारदरूपी पुजारी है। (वै०) पुनः, नर-नारायण सदा एकत्र रहते हैं वैसे ही 'रा', 'म' सदा एकत्र रहते हैं! विशेष पालन अर्थात् मुक्तिसुख देते हैं। (पं०)

नोट—४ श्रीजानकीशरणजी 'जन' से 'दर्शक' का अर्थ लेते हैं। अर्थात् जो बदरिकाश्रममें जाकर दर्शन करते हैं उनके लोक, परलोककी रक्षा करते हैं। ***'जो जाय बदरी, सो फिर न आवै उदरी।'*** (मा० मा०)

भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ॥ ६॥

शब्दार्थ—**सुतिय**=सुन्दर अर्थात् सौभाग्यवती स्त्री। **कल**=सुन्दर। **करन (कर्ण)**=कान। **बिभूषन**=विशेष भूषण। **करन बिभूषन**=कर्णफूल। **बिधु**=चन्द्रमा। **पूषन**=सूर्य।=पोषण करनेवाले।

अर्थ—भक्तिरूपिणी सौभाग्यवती सुन्दर स्त्रीके कानोंके भूषण (दो कर्णफूल) हैं। जगत्‌के हितके लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं [अथवा, 'निर्मल चन्द्रमाके समान पोषण करनेवाले हैं।' परन्तु ऊपर दो-दो उपमाएँ देते आते हैं और उपमेय भी 'रा', 'म' दो हैं, अतः यह अर्थ अधिक उत्तम नहीं है।]॥ ६॥

श्रीसुदर्शनसिंहजी—इस चौपाई *'नर नारायन सरिस सुभ्राता।'''बिधु पूषन॥'* में गोस्वामीजीने उपमाओंका क्रम बदल दिया है। उन्होंने *'नर नारायन'* तथा *'बिधु पूषन'* में पहले 'म' की और पीछे 'रा' की उपमाएँ दी हैं। इसका कारण है। मन्त्र अनुलोम एवं प्रतिलोम दोनों विधियोंसे जप किया जाता है।* पहले अनुलोम-विधिसे महत्त्व बतला आये हैं, अब इस चौपाईमें प्रतिलोम-विधिसे महत्त्व दर्शित करते हैं।

यह प्रतिलोम विधि *'सुलभ सुखद सब काहू'* नहीं है। इतना तो स्मरण रखना ही चाहिये। यह तो *'भगति सुतिय कल करन बिभूषन'* है। 'राम' का उलटा होता है 'मरा' और इसी प्रतिलोम मन्त्रका जप करके वाल्मीकि महर्षि हो गये हैं। लेकिन इस प्रतिलोम-क्रमसे जपका वही अधिकारी है, जिसमें भक्ति हो। जिसमें अपार श्रद्धा एवं परिपक्व लगन न हो वह प्रतिलोम-विधिका अधिकारी नहीं। प्रतिलोम-विधि महत्त्वकी दृष्टिसे बता दी है किन्तु भक्तोंके लिये भी अनुलोम-क्रम राम-नाम ही आदरणीय है, यह अगली ही चौपाईमें गोस्वामीजी सूचित करना विस्मृत नहीं हुए हैं—*'जन मन मंजु कंज मधुकर से।'* भक्तोंके हृदयमें भी अनुलोम-क्रमसे ही श्रीराम-नाम विराजते हैं। यहाँ अनुलोम-क्रमका सूचक पद है *'कमठ-सेष'* और *'हरि हलधर'।* लेकिन प्रतिलोम-क्रममें भी वह प्रभावपूर्ण है, अवश्य ही इस क्रममें वे स्वयं घोर तपस्याकी मूर्ति हो जाते हैं और कठोर तपसे ही इस क्रमद्वारा लाभ होता है, यही सूचित करनेके लिये तपोमूर्ति *'नर नारायन'* का स्मरण किया गया।

'म' वाचक है 'नर' का और 'रा' वाचक है 'नारायण' का। दोनों भाई हैं।''' जगके पालक हैं। संसारके कल्याणके लिये ही नर-नारायण कल्पके प्रारम्भसे तप कर रहे हैं। 'राम' भी प्रतिलोम-क्रममें तपोमय हो जाता है। विश्वके कल्याणके लिये है उसका यह तपोरूप। वह विश्वको क्लेश देनेवाली रावण, हिरण्यकशिपु या भस्मासुरकी राजस-तामस तपस्याका रूप कभी भी धारण नहीं कर सकता।

सामान्य रूपसे तो वह 'जग-पालक' है। सभी जड-चेतनके लिये है उसकी शक्ति; किन्तु जिस प्रकार 'नर-नारायणकी तपस्या विशेषत: साधकोंके परित्राणके लिये है, जिस प्रकार उच्चकोटिके सन्तों एवं तपस्वियोंका वे सदा ध्यान रखते हैं, उनके तपोविघ्नोंको अपने प्रतापसे निवारित करते रहते हैं, समय-समयपर प्रकट होकर उपदेश एवं दर्शनसे मार्ग-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहन देते रहते हैं, उसी प्रकार श्रीरामनामकी प्रतिलोमजा शक्ति भी विशेषत: भक्तोंके परित्राणके लिये है। जपमें जब धुनी चलती है तो स्वत: अनुलोम जपमें भी प्रतिलोमजा शक्ति निहित रहती है और यही शक्ति विकारोंसे जापकका परित्राण करती है।

विकार उठे, कुतर्क तंग करे या श्रद्धाके पैर डगमगायें तो आप नामकी सतत धुन प्रारम्भ कर दें। नामकी शक्ति आपको तुरन्त परित्राण देगी। यह तो प्रत्येक साधकका प्रत्यक्ष अनुभव है। आप चाहें तो करके देख लें।

ये 'म' और 'रा' भक्तिके कर्णाभरण हैं। भक्तिको सुतिय कहा गया है। एक सुतियमें जितने सद्गुण सम्भव हैं, वे उसमें हैं और इसी कारण ये विलोमक्रमी रामनामके वर्ण उसको आभूषित करते हैं; क्योंकि ये उग्र तपस्याके प्रतिरूप बिना सद्गुणोंसे परिपूर्ण भक्तिके और किसीको विभूषित कर ही नहीं सकते।

सर्वप्रथम गुरुवाक्यमें अचल श्रद्धा, भगवान्‌में अविचल विश्वास तथा अहैतुक प्रेम हो तो विलोम-क्रमसे भी ये युगल वर्ण उस साधकको भूषित ही करते हैं। वह प्रथम कोटिका नैष्ठिक तितिक्षु साधक हो जाता है। क्योंकि इस विपरीत-क्रममें भी ये वर्ण परस्पर नर-नारायणकी भाँति वर्ण मैत्रीयुत ही रहते हैं। जैसे जगत्‌के कल्याणके लिये चन्द्र एवं सूर्य हैं, वैसे ही ये 'म' और 'रा' भी हैं। बीजाक्षर शक्तिसे

---

* मन्त्र अनुलोम एवं प्रतिलोम विधियोंसे जप किये जाते हैं। इसमें श्रीचक्रजीका आशय सम्भवत: भगवन्नाममन्त्रोंसे है, क्योंकि पाणिनीय शिक्षामें कहा है कि स्वर अथवा वर्णसे हीन मन्त्र इष्टदायक न होकर बाधक ही होता है। यथा—'मन्त्रो हीन: स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु: स्वरतोऽपराधात्।।'(५२)

दोनों वर्ण दोनोंके स्वरूप हैं। मेरी समझसे नामवन्दनाके प्रसंगमें यह चौपाई (*'नर नारायन'* से *'बिधु पूषन'* तक) श्रीरामनामके प्रतिलोम रूप अर्थात् 'म', 'रा' के स्वरूप, तपोमय स्वरूप, प्रभाव, सम्बन्ध, अधिकारी तथा कार्यको बतलानेके लिये आयी है। (मानसमणिसे)

टिप्पणी—१ (क) 'केवल कर्णभूषण ही नहीं हों किन्तु पहचाननेवाला भी चाहिये। अर्थात् यहाँ यह दिखाया है कि भक्ति करे और रामनाम जपे।' (ख) 'रामनामसे भक्तिकी शोभा है, इसलिये भक्ति-को स्त्री कहा। भक्ति (महारानी) से सुन्दर कुछ नहीं; इसीसे तो उसपर भगवान् सानुकूल रहते हैं और वह उनको 'अति प्रिय' है। यथा—*'पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। भगतिहि सानुकूल रघुराया॥'* (७।११६) इसलिये 'सुतिय' कहा।' (ग) आप रामनामको सिरका भूषण कहना चाहते थे, परन्तु सिरमें दो भूषण और कोई नहीं हैं और 'र' 'म' को दो-दोकी उपमा देते आये हैं। दूसरे, और बड़े लोगोंने भी इनको कर्णहीके विभूषण लिखे हैं, इसलिये आपने भी यही लिखा, नहीं तो सिरके नीचेका भूषण नामको नहीं कहना चाहते थे। (घ) 'ये वर्ण भक्तिहीके भूषण नहीं हैं' किन्तु बिधुपूषण भी हैं। अर्थात् विश्वमात्रके भूषण हैं। (ङ) *'करन'* सब इन्द्रियोंका भी नाम है। यथा—*'बिषय करन'*, **'षमिन्द्रियं हृषीकं च।'**

नोट—१ (क) कर्णफूल कानमें होना सुहागका चिह्न है। कानसे उसका गिरना सुहाग भंग होनेकी सूचना देता है और कानमें उसका न पहनना विधवापन जनाता है। यथा—*'मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥' 'सजल नयन कह जुग कर जोरी।'* से *'प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥'* तक (लं० १४-१५) इसी प्रकार भक्तिसुतियके लिये 'रा' 'म' ही कर्णफूल हैं। जिस भक्तिमें नामका यजन नहीं, वह भक्ति न तो भूषित ही है और न सौभाग्यवती ही है, किन्तु विधवावत् त्याज्य है। और जैसे विधवासे सन्तान-प्राप्तिकी आशा नहीं, वैसे ही उस भक्तिसे किसी सुफलकी आशा नहीं (प्रोफेसर दीनजी)। (ख) कर्णविभूषणकी उपमा देनेका कारण यह भी हो सकता है कि नाम और कर्णका सम्बन्ध है। नाम जो उच्चारण होता है उसे कान धारण करते हैं; इस सम्बन्धसे यह उदाहरण दिया। नामका सम्बन्ध मुख (जिह्वा) से भी है; परन्तु जिह्वामें कोई प्राकृत भूषण धारण नहीं किया जाता, दूसरे वह संख्यामें एक है और रकार-मकार दो वर्ण हैं और कान भी दो हैं तथा दोनों कानोंमें भूषण पहने जाते हैं।

नोट—२ (क) *'बिमल'* शब्दसे सूचित किया कि 'र' 'म' विकाररहित हैं और सूर्य-चन्द्रमा समल हैं। सूर्य जल बरसाता और सोखता भी है, उसे राहु ग्रसता भी है। पुनः, कमल सूर्यको देखकर खिलता है, सूर्य उसको भी जल न रहनेपर जला डालता है। यथा—*'भानु कमलकुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥'* (अ० १७) चन्द्रमा अपनी किरणोंसे जड़ी-बूटी-अन्न आदिको पुष्ट करता है और पालारूपसे उन्हींको जला डालता है, पुनः घटता-बढ़ता है, इत्यादि विकार उसमें हैं। 'र', 'म' विमल गुण उत्पन्न करके उनकी सदा वृद्धि किया करते हैं। इसमें 'अधिक अभेद रूपक' है; क्योंकि 'र', 'म' में विधु और पूषणसे कुछ अधिक गुण हैं। पुनः (ख) सूर्य और चन्द्रमासे जगत्का पालन-पोषण होता है। वे अन्नादिक उपजाते और जीवोंके पोषणयोग्य करते हैं। सूर्य अन्धकारको मिटाता और चन्द्रमा शरदातपको हरता है, वैसे ही 'र', 'म' जनके सुमतिभूमिथलपर विमल गुणोंकी उत्पत्ति करते, अविद्यातम मिटाकर ज्ञानरूपी प्रकाश फैलाते हैं और त्रिपाप हरकर हृदयको शीतल करते हैं। पुनः, (ग) शरद्पूनोंके चन्द्रमामें दो गुण निर्मल प्रकाश और अमृतका स्त्रवना हैं। प्रकाशसे तपन हरते और अमृतसे अमरत्वगुण देते हैं, वैसे ही 'रा', 'म' शरदातपरूपी जन्म-मरण और तापत्रयको हरते हैं और भक्तिरस द्रवते हैं। पुनः (घ) सूर्य तपकर भूमिको शुद्ध करता, जल सोखकर मेघरूपसे फिर वर्षाद्वारा जीविका प्रदान करता और प्रकाश फैलाता है जिससे सब वस्तुएँ देख पड़ती हैं। वैसे ही रकार (अग्निबीज होनेसे) शुभाशुभ कर्मोंको भस्म कर जीवकी बुद्धिको शुद्ध करके ज्ञान-प्रकाश देकर परमार्थ दिखाता है। कृपा जल है। शान्ति-सन्तोषादि अनेक चैतन्यतारूप जीविका देता है। यह उक्ति हनुमन्नाटककी है। यथा—**'मुक्तिस्त्रीकर्णपूरौ मुनिहृदयवयः**

पक्षती तीरभूमौ....' (महाशम्भुसंहिता) इसमें मुक्तिरूपी स्त्रीके कर्णफूल दोनों वर्णोंको कहा है। भाव कि रामनामहीन भक्तिकी शोभा नहीं है। 'जगपालक' से जनाया कि जो संसारमें पड़े हैं वे भी यदि रामनाम लेते हैं तो उनका भी पालन होता है। (वै०)

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥ ७॥

अर्थ—दोनों वर्ण सुगतिरूपी अमृतके स्वाद और सन्तोषके समान हैं, कच्छपभगवान् और शेषजीके समान पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं॥ ७॥

नोट—१ ***'स्वाद तोष सम सुगति सुधा के'*** इति। अमृतमें स्वाद और सन्तोष दोनों गुण हैं। पीनेसे मन प्रसन्न होता है और फिर किसी वस्तुके खाने-पीनेकी इच्छा ही नहीं रह जाती, मृत्युका भय जाता रहता है। इसी तरह 'रा', 'म' उस शुभ गतिको प्राप्त कर देते हैं जिससे मनको आह्लाद और सुख होता है और इनका स्वाद मिलनेपर अन्य साधनोंकी तृष्णा नहीं रह जाती। यथा ***'रामनाम मोदक सनेह सुधा पागिहै। पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै॥'*** (वि० ७०) सुगतिका अनुभव स्वाद है। (रा० प०)

नोट—२ बाबू इन्द्रदेवनारायणसिंह इस चौपाईका भावार्थ यों लिखते हैं कि 'जैसे अमृतमें यदि कुछ स्वाद न हो और उससे तुष्टता प्राप्त न हो तो वह व्यर्थ है, वैसे ही रामनाम बिना मुक्ति स्वादतोषहीन है।' इसका भाव यह कहा जाता है कि अद्वैतवादियोंकी जो मुक्ति है, जीवका ब्रह्ममें लय होना वह स्वाद-सन्तोषरहित है। मुक्ति होनेपर अर्थात् ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी शिवजी, हनुमान्‌जी, भरतजी, रसिकगण और परधामनिवासी पार्षदसमूह श्रीरामनामको सदैव जपते हैं, यही मुक्ति स्वादसन्तोषयुक्त अमृतके समान है।

नोट—३ श्रीबैजनाथजीका मत है कि 'यहाँ कर्मविपर्यय विशेष्य-विशेषण हैं। स्वाद अमृतसमान है और सन्तोष सुगतिके समान है। सुगतिकी प्राप्तिपर फिर कोई चाह नहीं रह जाती। इसी तरह 'रकार' वैराग्यरूप होनेसे संसारकी आशा छुड़ाकर जीवको शुद्ध कर देता है और 'अकार' ज्ञानरूप प्रकाश करके आत्मस्वरूप दर्शा देता है जिससे सहज ही सन्तोष आ जाता है। पुनः स्वाद तीन प्रकारका होता है, दिव्य (जो सदा बना रहे। जैसे जलमिले दूधमें ओषधि मिलाकर पीनेसे जन्मपर्यन्त पुष्टतारूप स्वाद बना रहता है), सूक्ष्म (जैसे मिश्री मिलाकर दूध पीनेसे एक दिनकी पुष्टता और कुछ जिह्वाका स्वाद है) और स्थूल (जैसे औटे हुए दूधमें चीनी आदि मिलाकर पीनेसे केवल स्वाद मिलता है।) अमृतमें तीनों स्वाद हैं। वैसे ही 'मकार' में अमृतरूपा भक्तिसे भगवल्लीलास्वरूप उत्साह अवलोकनादि स्थूल स्वाद, नाम-स्मरणसे मनमें आनन्द सूक्ष्मस्वाद और भगवत्प्राप्ति दिव्य स्वाद है। यह तो परमार्थवालोंकी बात हुई। और जो स्वार्थमें लगे हैं उनकी चाहरूपी वसुधाको धारण करनेके लिये दोनों वर्ण कमठ और शेष समान हैं, धर्मसहित उनको सुखी रखते हैं।'

नोट—४ ***'सुगति'*** का अर्थ ज्ञान और सदाचार भी कहा जाता है। इस अर्थसे भाव यह होगा कि जैसे अमृतमें स्वाद और सन्तोष न हो तो वह व्यर्थ है, वैसे ही ज्ञानादि होनेपर भी यदि ये दोनों वर्ण (अर्थात् रामनाम-स्मरण) न हो तो वे भी फीके हैं।

'कमठ सेष सम धर बसुधा के' इति

(१) पद्मपुराण उत्तरखण्डमें जहाँ चतुर्व्यूह और विभवोंका वर्णन है, उस प्रसंगमें मन्दराचलको धारण करनेके लिये श्रीकच्छप-अवतारका जो वर्णन है उसीमें यह लिखा है कि लक्ष्मीजीकी उत्पत्तिके पश्चात् सब देवता कूर्मभगवान्‌के दर्शनको आये और भक्तिपूर्वक पूजनकर उनकी स्तुति की, तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर वरदान माँगनेको कहा। देवताओंने वर माँगा कि शेष और दिग्गजोंकी सहायताके लिये आप पृथ्वीको धारण करें। 'एवमस्तु' कहकर भगवान्‌ने पृथ्वीको धारण किया। यथा—**'शेषस्य दिग्गजानां च सहायार्थं महाबल। धर्तुमर्हसि देवेश सप्तद्वीपवतीं महीम्॥ एवमस्त्विति हृष्टात्मा भगवाँल्लोकभावनः। धारयामास धरणीं सप्तद्वीपसमावृताम्॥'** (अ० २३४। १७-१८) सु० र० भा० दशावतार-प्रकरणमें कच्छपभगवान् और शेषजी किस

प्रकार पृथ्वी धारण करते हैं इस सम्बन्धमें यह श्लोक मिलता है। '**यो धत्ते शेषनागं तदनुवसुमतीं स्वर्गपातालयुक्तां युक्तां सर्वैः समुद्रैर्हिमगिरिकनकप्रस्थमुख्यैर्नगेन्द्रैः। एतद् ब्रह्माण्डमस्यामृतघटसदृशं भाति वंशे मुरारेः पायाद्वः कूर्मदेहः प्रकटितमहिमा माधवः कामरूपी॥ २२॥**' अर्थात् जिन कच्छपभगवान्‌की पीठपर यह सारा ब्रह्माण्ड (अर्थात् स्वर्ग, पाताल और हिमाचल तथा सुमेरु आदि पर्वतोंसे युक्त पृथ्वीसहित श्रीशेषनाग) एक अमृतघटके तुल्य सुशोभित हैं, वे अतुल महिमावाले कामरूपी भगवान् हमारी रक्षा करें।

(२) श्रीकच्छपभगवान् और शेषजी पृथ्वीको धारण करते हैं और 'रा', 'म' धर्मरूपी वसुधाको धारण किये हुए हैं। यथा—*'मातु पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥'* (२।३०६) *'जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास। राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास॥'* (दोहावली २९) पुनः **बसु**=धन। **बसुधा**=जो धनको धारण करे। इसी तरह धर्ममें जो अनेक सुख हैं वे ही धन हैं, उनको नाम धारण किये हुये हैं। (पं० रामकुमारजी)

जन मन मंजु* कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥ ८॥

अर्थ—(दोनों वर्ण) भक्तके सुन्दर मनरूपी सुन्दर कमल (वा, मनरूपी सुन्दर कमल) के लिये मधुकरके समान हैं, जीभरूपी यशोदाजीको श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान हैं॥ ८॥

टिप्पणी—१ (क) नाममें मन और जिह्वा दो इन्द्रियाँ लगती हैं। रकार-मकार जनके मनमें बसते हैं और जीभसे प्रकट होते हैं—यशोदाजीकी तरहसे। पुनः, (ख) यशोदाजी प्रभुका आना नहीं जानतीं, वैसे ही मन और वाणी रामनामके आनेको नहीं जानते। यथा—*'मन समेत जेहि जान न बानी।'* पुनः, (ग) यहाँ मनको कमल और 'रा', 'म' को भ्रमर कहनेका अभिप्राय यह है कि 'कमल भौंरेको नहीं ग्रहण कर सकता। भौंरा अपनी ओरसे आता है। वैसे ही श्रीकृष्णजी और बलदेवजी अपनी ओरसे आये, यशोदाजी नहीं जानतीं। इसी तरह जिह्वामें 'रामनाम' अपनी ओरसे आते हैं, इन्द्रियोंसे अग्राह्य हैं। इसी विचारसे यशोदाका उदाहरण दिया, अन्य माताएँ (गर्भ आदि सम्बन्धसे) जानती हैं, यथा—'**नाम चिन्तामणी रामश्चैतन्यपरविग्रहः। पूर्णशुद्धो नित्यमुक्तो न भिन्नो नामनामिनोः॥ अतः श्रीरामनामेदं न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः। स्फुरति स्वयमेवैतज्जिह्वादौ श्रवणे मुखे॥**' (सी० ना० प्र० प्र०, पद्मपु०) अर्थात् नाम चिन्तामणि शुद्ध और नित्य मुक्त चिद्विग्रह रामस्वरूप हैं क्योंकि नाम-नामीमें भेद नहीं है। अतः यह श्रीरामनाम इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है। (वह परमात्माकी कृपासे ही) स्वयं ही लोगोंके मुखमें, जिह्वा और कानोंमें प्राप्त होता है। श्रुति भी यही कहती है, '**स्वर्भून्र्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते।**' 'अर्थात् श्रीरामनाम स्वयं उत्पन्न हैं, ज्योतिः (तेज, प्रकाश) मय हैं, प्रणव आदि अनन्तरूपधारी हैं और भक्तोंके हृदय और जिह्वापर अपनी अनिर्हेतुकीय कृपासे ही भासित होनेवाले हैं (रा० पू० ता० २।१) (घ) 'मंजु' देहली दीपक है, मन और कंज दोनोंके साथ है। मनमें भक्ति होना ही उसकी सुन्दरता है। *'जन मन.....'* उपसंहार है और *'जन जिय जोऊ'* उपक्रम है।

नोट—१ बाबा जानकीदासजी आदि दो-एक महात्माओंने 'मधुकर' का अर्थ 'भ्रमर' लेनेमें यह शंकाएँ की हैं कि—(क) ''रकार, मकार दो वर्ण हैं, मधुकर एक ही है। दोके लिये दो दृष्टान्त होने चाहिये। (ख) 'भ्रमर तो कमलको दुःख ही देता है, उसका रस खींचता, पंखुरियोंको विथुराता है और सदा कमलपर बैठा नहीं रहता। और 'र', 'म' तो जनको सदा आनन्द देते हैं। अतएव भ्रमरकी उपमा ठीक नहीं'। (ग) कमलका स्नेही भ्रमर है, भ्रमरका कमल नहीं?'' और इन्हीं शंकाओंके कारण उन्होंने 'मधुकर' का अर्थ जल और सूर्यकिरण किया है।

इन शंकाओंका समाधान एक तो यों ही हो जाता है कि यहाँ उपमाका एक देश वा अंग लिया गया है। गोस्वामीजीने भक्तोंके मनको कमल और श्रीरामचन्द्रजीको भ्रमर अन्य स्थलोंमें भी कहा है। यदि ये शंकाएँ

* कंज मंजु—१७२१, १७६२, छ०। मंजु कंज—१६६१, १७०४, को० रा०।

यहाँ हो सकती हैं तो वहाँ भी हो सकती थीं, पर वहाँ इनका गुजर नहीं हुआ। प्रमाण—*'संकर हृदि पुंडरीक निबसत हरिचंचरीक, निर्व्यलीक मानस गृह संतत रहे छाई'* (गीतावली उ० ३) *'निज भक्त हृदय पाथोज भृंग॥'* (वि० ६४), *'हृदय कंज मकरंद मधुप हरि'* (उ० ५१)। यहाँ भ्रमर कहनेका स्पष्ट भाव यह है कि ये दोनों अक्षर भक्तोंके हृदयकमलमें निरन्तर निवास करते हैं—*'अति अनन्य जे हरि के दासा। रटहिं नाम निसि दिन प्रति स्वासा॥'* (वै० सं०) पराग-मकरन्द-सुगन्धयुक्त खिले हुए कमलमें भ्रमर आसक्त रहता है, यहाँतक कि रातमें उसके भीतर बन्द भी हो जाता है वैसे ही जापक-जनके मनसे 'र', 'म' दोनों नहीं हटते—*'जन जिय जोऊ'।* मधुकर भी दो कहे गये हैं। 'से' बहुवचन देकर जनाया कि 'रा', 'म' दो भ्रमर हैं। यहाँ अर्थमें दो भ्रमर समझने चाहिये। सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'आज्ञाचक्रमें द्वै दल कमल जहाँ भ्रमर-गुफा सर्वत्र प्रसिद्ध है और हृदयकमलमें वसिष्ठजीने एक भ्रमरका होना स्वर्ण-वर्णका लिखा है।' हृदयके अन्दर एक स्थान है (योगशास्त्रके अनुसार) जिसे भ्रमर गुफा कहते हैं। इस योगसे भ्रमर अर्थ और भी उत्तम और सार्थक प्रतीत होता है।

भ्रमर सदा बैठा नहीं रहता यह ठीक है, पर जबतक फूलमें मकरन्द रहता है तभीतक यह वहाँ रहता है। और 'रा', 'म' जापक-जनके मनमें सदा रहते हैं। यह 'रा', 'म' में विशेषता है।

तीसरी शंकाका समाधान यों किया जा सकता है कि जब सब आशा-भरोसा छोड़कर जीव प्रभुहीका हो रहता है, तभी 'जन' कहलाता है, तब फिर आश्चर्य ही क्या कि प्रभु अपने नाम-रूपादिको उसके हृदयमें बसा देते हैं। *'मंजु कंज'* कहकर मनकी विशेषता कमलसे सूचित की। कमल भ्रमरका स्नेही न सही, पर जनमन तो 'रा', 'म' का स्नेही है ही। पुनः आगे *'जीह जसोमति'* कहकर जनाया कि जब ये वर्ण जिह्वाको प्रिय होते हैं तभी ये जनके मनमें बसते हैं (नोट ३ भी देखिये)।

नोट—२ श्रीनंगे परमहंसजी *'जन मन मंजु....'* का अन्वय इस प्रकार करते हैं—*'जन मन मधुकर राम नाम मंजु कंज।'* अर्थात् 'रा' 'म' ये दोनों दो कमल हैं, जो जनोंके मन-मधुकरको सुखदाता हैं। दोनोंका ध्यान करके जनमन आनन्दित रहता है।' इस अर्थकी पुष्टिमें आप लिखते हैं कि 'रा', 'म' कमल होंगे तब अपने जनोंके मन-भ्रमरको सुख देनेवाले हुए और जब रामजी भ्रमर होंगे तब सुख भोगनेवाले हुए। कमल और भ्रमरमें यही दो बातें हैं, सुख देना और सुख भोगना। अतः सुख देनेके प्रसंगमें 'रा', 'म' को कमल अर्थ करना पड़ेगा और सुख भोगनेके प्रसंगमें 'रा', 'म' भ्रमर अर्थ किये जायँगे। नामवन्दनामें नाममहाराजका ऐश्वर्य कहा गया है, नाम-वन्दना सुख देनेका प्रसंग है, अतएव रामनाम कमल ही अर्थ किये जायँगे; वे जन मनभ्रमरको सुखद हैं। पुनः वे लिखते हैं कि 'जल' और 'सूर्य' की समता अयोग्य है क्योंकि (क) जल और सूर्यकिरणसे विरोध है, सूर्य जल शोषण करते हैं और 'रा', 'म' में परस्पर प्रीति है। (ख) सूर्यकी उपमा पूर्व इसी प्रसंगमें आ चुकी है। पं० रामकुमारजीने यह नहीं लिखा कि 'नाममें मन और इन्द्रियाँ कैसे लगती हैं। उसको मैं लिखता हूँ कि मन तो 'रा' और 'म' का ध्यान करता है क्योंकि मन-इन्द्रियका काम ही है ध्यान करना और जिह्वाका काम है नाम रटना। इन्हीं दोनों कामोंको नामजापक करते भी हैं और इन्हीं दोके लिये दो उपमाएँ दी भी गयी हैं।''

नोट—३ वे० भू० जी कहते हैं कि कमलकी कर्णिकामें एक चिकना मादक पदार्थ (द्रव्य) उत्पन्न होता है जो भ्रमरके बैठनेमात्रसे नष्ट हो जाता है। यदि भ्रमर न बैठे तो उस मादक द्रव्यके कारण कमलमें कीड़े उत्पन्न होकर कमलको नष्ट कर देते हैं। अतः भ्रमरका आकर बैठना कमलके लिये सुखावह है। वैसे ही 'रा', 'म' रूपी भौंरे जनके मनरूपी कमलपर बैठकर अविद्यारूपी मादक द्रव्यको नष्ट कर देते हैं। नहीं तो अविद्याके रहनेसे मानस रोगादि कीड़े लगकर मनको तामसी बना विनाशके गर्तमें पात कर दें। भ्रमर मकरन्दको पान करता है और रामनाम जनके दिये हुए मानसिक पूजन-ध्यान आदिको पान करता है, यह उपमा है। यथा—*'नील तामरस श्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥'* (७।५१)

नोट—४ उपर्युक्त टिप्पणीमें 'मधुकर' को एक शब्द मानकर 'भ्रमर' अर्थ किया गया। दूसरा अर्थ

है 'मधु+कर'=जल और सूर्य वा किरण। यथा—'**मधु दुग्धे जले क्षौद्रे मिष्टे चैव मनोहरे', 'करः सूर्यः करो हस्तो मागधेयो करः स्मृतः। शुण्डादण्डे च किरणे नक्षत्रे किरणे नरे॥**' (अनेकार्थ-शब्दमाला) इस तरह अर्थ होगा कि 'जनके मनरूपी सुन्दर कमलके लिये जल और सूर्य किरणके समान हैं। भाव यह कि जैसे कमलका पोषण जल और सूर्य दोनोंसे होता है। यदि जल न रहे तो सूर्य उसे जला डालेगा और यदि सूर्य न हुआ तो वह प्रफुल्लित नहीं होगा। रकार अग्निबीज है, अकार भानुबीज है, अतः 'रा' यहाँ रविकिरण हुआ और मकार चन्द्रबीज होनेसे जलरूप है। ये वैराग्य, ज्ञान और भक्ति देकर जनमनको सदा प्रफुल्लित रखते हैं।

नोट—५ बैजनाथजी—'***जन मन मंजु कंज मधुकर से***' यह हृदयमें नाम जपनेवालोंकी बात कहते हैं नाम-जपके प्रभावसे मन निर्मल हो गया है, इसीसे उनके मनको 'मंजु' कहा। मकार जलरूप सहायक है, मनको आनन्दरूप रस देकर लवलीन रखता है। रकार रविरूप है। अनुभवरूप किरण देकर मनरूपी कंजको प्रफुल्लित रखता है।

नोट—६ '***जीह जसोमति हरि हलधर से***' इति। (१) जैसे घर सब तरहके भोगोंसे परिपूर्ण हो, परन्तु एक लड़का ही न हो तो घरकी शोभा नहीं होती, घर सूना लगता है, वैसे ही मुखरूपी घरमें जिह्वारूपी माताकी गोदमें 'रा', 'म' बालक न हों तो मुखकी शोभा नहीं। पूर्ण रूपक दोहावलीके '***दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह। तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥***' (२४) इस दोहेसे स्पष्ट हो जाता है।

(२) यशोदाजीको '***हरि हलधर प्रिय***' वैसे ही भक्तोंकी जिह्वाको 'रा', 'म' प्रिय। यशोदाजी सदा उनके लालन-पालनमें लगी रहतीं, वैसे ही जापक-जन इन वर्णोंका सदा सँभाल रखते हैं। टिप्पणी १ भी देखिये।

(३) जैसे यशोदाजी ब्राह्मणी भी नहीं किन्तु अहीरिन थीं, पर हरि-हलधरसे प्रेम होनेसे वे विरंचि आदिसे पूजित हुईं, वैसे ही यह चमड़ेकी जिह्वा अपावन है पर 'रा', 'म' से प्रेम रखनेसे पावन और प्रशंसनीय हो जाती है।

(४) पूरा रूपक यह है—श्रीकृष्णजी देवकीजीके यहाँ प्रकट हुए पर गुप्त ही और यशोदाजीके यहाँ पुत्र प्रसिद्ध कहलाये। इसी तरह बलरामजी रहे तो देवकीजीके गर्भमें, पर योगमायाने खींचकर उन्हें रोहिणीके उदरमें कर दिया, वहींसे प्रकट होकर प्रसिद्ध हुए। नाममात्र वे यशोदाके कहलाये। ग्यारह वर्ष पुत्रका सुख देकर पश्चात् अपने स्थानको चले गये। उसी प्रकार परा वाणीसे नामोच्चारण नाभिस्थानसे प्रकट होता है। यह नाभिस्थान मथुरा है, परा वाणी देवकी हैं, मुख गोकुल है, जिह्वा यशोदा हैं, 'रा' श्रीकृष्ण हैं सो जिह्वाने उच्चारणमात्र पुत्र करके पाया। 'म' बलेदव, ओष्ठस्थान रोहिणीके पुत्र प्रसिद्ध, पर नाममात्र जिह्वारूपी यशोदाके कहलाये। जो जन ग्यारह वर्ष जिह्वासे जपे तो उसके स्वाभाविक ही नाम परा वाणीसे उच्चारण होने लगे (वै०)। बैजनाथजीके भाव लेकर किसीने यह दोहे बना दिये हैं। '***मनहिं स्वच्छ अरु सबल कर ह्वै मकार जल प्रेम। रबि अकार प्रफुलित करत रेफ तेज कर क्षेम॥ परावाणि देवकी गगन बन्दीगृह मधु ग्राम। मुख गोकुल यशुमति रसन र० म० हरि बलराम॥***'

टिप्पणी—२ (क) '***नरनारायन सरिस सुभ्राता***', '***राम लषन सम प्रिय***', '***जीह जसोमति हरि हलधर से***' कहकर तीन युगोंमें हितकारी होना सूचित किया। नर-नारायणरूपसे सत्ययुगमें (क्योंकि यह अवतार सत्ययुगमें हुआ), श्रीरामलक्ष्मणरूपसे त्रेतामें, श्रीकृष्णबलदाऊरूपसे द्वापरमें और कलियुगमें तो नाम छोड़ दूसरा उपाय है ही नहीं। यथा—'***कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ।***' या यों कहिये कि 'और सब युगोंमें सब अवतारोंके समान नामको दिखाया, अब कलिमें केवल 'रा', 'म' हैं, कोई अवतार नहीं है। ऐसे कराल कलिकालमें नाम ही कृतार्थ करते हैं। यथा—'***कलि केवल मल मूल मलीना॥....***' (ख) जो ऊपर '***बरनत बरन प्रीति बिलगाती***' में कहा है कि वर्णन करनेहीसे दोनोंकी प्रीति सूझ पड़ती है, अन्यथा नहीं, वही '***ब्रह्म जीव***

सम सहज सँघाती' और उक्त तीनों दृष्टान्त देकर दोनों वर्णोंका वर्णन करके दिखाया है कि इन चारोंके समान सहज प्रीति है। इन तीनों दृष्टान्तोंसे नामके वर्णोंका सौभ्रात्र गुण दिखाया।

नोट—७ ***'राम लषन सम', 'ब्रह्म जीव इव', 'नर नारायन सरिस', 'कल करन बिभूषन', 'बिधु पूषन', 'स्वादतोष सम', 'कमल शेष सम', मधुकरसे', 'हरि हलधर से',*** इतने उपमान एक उपमेय 'रकार-मकार'-के लिये इनके पृथक्-पृथक् धर्मोंके लिये चौपाई ३ से लेकर यहाँतक कहे गये। अतएव यहाँ 'भिन्न धर्मोपमालंकार' है। इन धर्मोंको इन चौपाइयोंमें लिख चुके हैं।

दो०—एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत* दोउ॥ २०॥

अर्थ—श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—देखो, श्रीरघुनाथजीके नामके दोनों वर्णोंमेंसे एक छत्ररूप (ॅ) दूसरा मुकुटमणिरूप (ं) से सब अक्षरोंपर विराजते (सुशोभित होते) हैं॥ २०॥

नोट—१ नाम-प्रकरणके पहले दोहेतक अर्थात् पूरे दोहा १९ में शब्दवत् रामनाम लेकर उसके स्वरूप, अंग और फल कहे, फिर बीसवें दोहेमें ***'हरि हलधरसे'*** तक नामके वर्णोंकी महिमा कही और युगाक्षरोंकी मित्रता दिखायी, अब यहाँ दोनों अक्षरोंको निर्वर्ण लेकर नामका महत्त्व दिखाते हैं।

नोट—२ यह दोहा महारामायणके, **'निर्वर्णरामनामेदं केवलं च स्वराधिपम्। मुकुटं छत्रं च सर्वेषां मकारो रेफव्यंजनम्॥'** (५२।१०१) इस श्लोकसे मिलता है।

नोट—३ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'सब पदार्थों और सब मूर्तियोंको देखनेके लिये इस प्रकरणके आदिमें प्रथम नेत्र वर्णन किया—***'बरन बिलोचन जन जिय जोऊ'।*** इस प्रकरणको 'जिह्वा' और 'मन' से उठाकर इन्हींपर समाप्त किया है। ***'रामनाम बर बरन जुग----'*** उपक्रम है और ***'रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ'*** उपसंहार है।

नोट—४ ***'एकु छत्रु एकु मुकुटमनि'*** इति। भाव कि—(क) छत्र और मणिजटित मुकुट जिसके सिरपर होता है वह राजा कहलाता है, वैसे ही जो भक्त इन वर्णोंको धारण करते हैं वे भक्तशिरोमणि कहलाते हैं जैसे प्रह्लादजी, शिवजी, हनुमान्‌जी। (ख) स्वरहीन होनेसे 'र', 'म' सब वर्णोंपर विराजने लगते हैं; वैसे ही जो जन इनका अवलम्ब लेते हैं वे भी स्वरहीन (श्वासरहित, मृत्यु) होनेपर ऊर्द्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं। यथा—**'यन्नामसंसर्गवशाद्द्विवर्णौ नष्टस्वरौ मूर्ध्नि गतौ स्वराणाम्। तद्रामपादौ हृदि सन्निधाय देही कथं नोर्ध्वगतिं प्रयाति॥'**

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥ १॥

अर्थ—नाम और नामी (नामवाला) समझनेमें एक-से हैं। दोनोंमें परस्पर प्रीति है जैसे स्वामी-सेवकमें॥ १॥

नोट—१ 'र', 'म' वर्ण हैं; इसलिये पहले इनको और वर्णोंसे बड़ा कहा था। नामका सम्बन्ध नामीसे है; इसलिये अब नामको नामीसे बड़ा कहते हैं। नामीके दो रूप निर्गुण और सगुण हैं; इसलिये इन दोनोंसे भी नामको बड़ा कहेंगे।

नोट—२ ***'सरिस'*** कहनेका भाव यह है कि जो गुण वा धर्म नामीमें हैं वे सब नाममें भी हैं। नाम बिना रूपके और रूप बिना नामके नहीं हो सकता देखिये २१ (२)।

नोट—३ ***'प्रभु अनुगामी'*** की प्रीति कैसी है? यथा—***'जोगवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे॥' 'सेवहिं लषनु सीय रघुबीरहिं।'*** (२।१४२)

नोट—४ गोस्वामीजीने 'नाम' को सब प्रकारसे श्रेष्ठतर सिद्ध किया है। वे लिखते हैं कि समझनेमें 'नाम' और 'नामी' (दोनों) समान हैं और परस्पर प्रेम भी है अर्थात् 'नामवाला' 'नाम' को चाहता

---

* बिराजित—१७२१, १७६२, छ०। बिराजत—१६६१, १७०४।

है, उसकी अपेक्षा करता है और 'नाम' 'नामवाले' की अपेक्षा करता है। दोनों अन्योन्याश्रय-सम्बन्धसे जकड़े हैं, किन्तु फिर भी 'प्रभु' 'नाम' के अनुगामी हैं, पीछे-पीछे चलनेवाले हैं। पीछे-पीछे चलनेवाला इसीलिये कहा है कि 'नाम' लेनेसे नामी (ईश्वर) आता है। इसका अनुभव कोई भी संसारमें कर सकता है। मान लीजिये किसीका 'नाम' 'मोहन' है। अब 'मोहन' संज्ञा और 'मोहन संज्ञावाला व्यक्ति' दोनों एक ही हैं। किन्तु जिस समय 'मोहन-मोहन' पुकारा जायगा, उस समय 'मोहन' नामधारी व्यक्तिको नामका अनुसरण करना ही पड़ेगा; वह पुकारनेवालेके पास अवश्य ही आवेगा। यद्यपि 'मोहन' नामधारीके साथ-साथ 'मोहन' नाम भी रहता है (यही सादृश्य है) पर व्यक्तिके द्वारा 'नाम' इंगित नहीं किया जायगा, वरं च 'नाम' के द्वारा वह व्यक्ति ही इंगित किया जायगा। यही कारण है कि नामी (व्यक्ति) को नामका अनुगमन करनेको बाध्य होना पड़ता है, 'नाम' को नहीं। यहाँपर विषयको स्पष्ट करनेसे हमारा अभिप्रेत यही है कि आगेका प्रसंग जिसमें सुगमतासे हृदयंगम हो सके। इन बातोंका विवेचन '**देखिअहिं नाम रूप आधीना।**' में देख लीजिये। (दोहावली, भूमिका प्रोफे० लाला भगवानदीनजीकृत)

नोट—५ बाबा जानकीदासजी कहते हैं कि 'नाम सेवक है या नामी?' यहाँ यह प्रश्न नहीं उठता। यहाँ दृष्टान्तका एक देश 'स्वामी-सेवक-जैसी परस्पर प्रीति, लिया गया है, यह भाव नहीं है कि एक स्वामी है, दूसरा सेवक। सेवक-स्वामीकी प्रीतिका लक्ष्य; यथा—*'पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥'* (२।२४०) यह सेवकका स्वामीपर प्रेम है और वैसे ही *'भरत प्रनाम करत रघुनाथा'। 'उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥'* यह भरतजीके प्रति स्वामीका प्रेम। दोनोंमें परस्पर प्रेम होता है वैसे ही नाम-नामीमें परस्पर प्रेम है। श्रीकाष्ठजिह्वास्वामीजी कहते हैं कि नामीमें जो धर्म हैं, नाम भी उन्हीं धर्मोंको कहता है, अतः सदृश कहा! प्रभु अनुगामी नाममात्र कहनेमें दो हैं, वस्तुतः दोनों तुल्य हैं। जैसे राजा हुक्म देनेका मालिक है और हुक्म बिना मन्त्रियोंकी सलाहके नहीं बनता। इस तरह दोनोंकी परस्पर प्रीति है। बैजनाथजीका मत है कि नाम सेवक है और नामी स्वामी है। दोनोंकी परस्पर प्रीति यही है कि दोनों कभी भिन्न नहीं होते। सेवक इस तरह जैसे देह-देही, अंग-अंगी, शेष-शेषी, प्रकाश-प्रकाशी तथा नाम-नामी। प्रकाश अनुगामी है, प्रकाशी (सूर्य) प्रभु हैं इत्यादि।

नाम रूप दुइ* ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥ २ ॥

अर्थ—नाम और रूप यही दो ईशकी 'उपाधियाँ' हैं। दोनों अकथनीय (अनिर्वचनीय) हैं, अनादि हैं, सुन्दर समझवालोंने इस बातको साधा है॥ २॥

नोट—१ इस चौपाईके और अर्थ भी किये गये हैं।

अर्थ—२ बाबा हरिदासजी यों अर्थ करते हैं कि 'नाम-रूप दोनों समर्थ हैं और दोनों अपने समीप प्राप्त हैं, [अर्थात् हमारे हृदयहीमें दोनों प्राप्त हैं, हम उनको मोहवश नहीं जानते। यथा—*'परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहर फिरत बिकल भयउ धायो।... अपनेहि धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो॥'* (वि० २४४)] पर सुन्दर समझहीसे सधते हैं।

अर्थ—३ अकथ अनादि ईशने उपाधि (धर्म-चिन्ता, कर्तव्यका विचार) विचारकर नाम और रूप दोनोंको धारण किया है। अर्थात् *'एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा॥'* जो ईश है उसने नाम-रूप दोनों धारण किये हैं जिससे उनका प्रतिपालन हो।

अर्थ—४, ५ मानसमयंककार *'ईश उपाधि'* का भाव यह लिखते हैं कि 'अगुण और सगुण दोनों ईशोंकी प्राप्ति करा देनेवाले हैं।' और अभिप्राय, दीपकमें इसके भावपर यह दोहा है। *'लखब सच्चिदानन्द दोउ, रूप उपाधी नाम। वा उपाधि पोषण भरन, प्रगट करत सुखधाम॥'* (३५) इसके अनुसार अन्वय यह है, 'नाम ईश (के) दुइ रूप (अगुण, सगुण) उपाधी अर्थात् नाम ब्रह्मके निर्गुण और सगुण दोनों

* किसी-किसी छपी पुस्तकमें 'दोउ' पाठ है।

रूपोंकी प्राप्ति करा देनेवाला है। उत्तरार्द्धमें दूसरा अर्थ है। उपाधि=भरण-पोषण। इसके अनुसार अर्थ है कि नामके दो रूप 'रा', 'म' हैं। ये दोनों जीवका ईश्वरके समान भरण-पोषण करते हैं।' (दीपकचक्षु)

अर्थ—६ श्रीकाष्ठजिह्वास्वामीजी लिखते हैं कि '***उप***=समीप। ***आधीन***=स्थापन; जो अपनेमें माना जाय उसे 'उपाधि' कहते हैं। जैसे फूलोंकी छाया पड़नेसे दर्पणमें वे सब रंग माने जाते हैं, वैसे ही कर्मोंकी छाया पड़नेसे जीवोंमें रूप माने गये हैं। ईश्वरमें कर्मका सम्बन्ध नहीं है, इसलिये उसमें जीवके समान नाम-रूप नहीं हैं। उसमें केवल भक्तोंके भावकी छाया पड़ी है और भाव सत्तारूप अविनाशी है; इससे ईश्वरके नामरूपादि नित्य हैं ऐसी समझ आवे तब ईश्वरके नाम-रूपमें ईश्वरहीका भाव सधे।

अर्थ—७ सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि '***समुझत सरिस नाम अरु नामी***' जो कह आये उसीका यहाँ हेतु कहते हैं। एक भाव इस चौपाईका यह भी हो सकता है कि 'अकथ अनादि उपाधि ईश्वरके नाम वा रूप ये दो ही हैं, लीला और धाम नहीं हैं। ये नाम-रूपहीके अभ्यन्तर हैं जैसा गर्गसंहितामें गोलोककी उत्पत्ति श्रीकृष्णजीके शरीरसे होना कहा है और लीला योगमायाद्वारा। एवं '**विष्णोर्पाद अवन्तिका**' इत्यादि। क्योंकि यह जो कहा है कि '**कार्योपाधिरयं जीवो कारणोपाधिरीश्वरः**' तहाँ कारणरूप उपाधि यही दो हैं।' (मा० त० वि०)

अर्थ—८ ईश्वरके नामरूप दोनोंका 'झगड़ा' (कि इनमेंसे कौन बड़ा है, कौन छोटा, कौन पहले हुआ, कौन पीछे इत्यादि) अनादिसे है और अकथनीय है।

अर्थ—९ शब्दसागरमें 'पाधि' के अर्थ ये भी लिखे हैं कि 'जिसके संयोगसे कोई वस्तु किसी विशेष रूपमें दिखायी दे'। 'वेदान्तमें मायाके सम्बन्ध और असम्बन्धसे ब्रह्मके दो भेद माने गये हैं, सोपाधि ब्रह्म (जीव) और निरुपाधि ब्रह्म।

अर्थ—१० प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि यहाँ 'उपाधि' का अर्थ है 'विकृत रूप वा दूसरा रूप'। अतः इस अर्द्धालीका अर्थ यह हुआ कि 'नाम और रूप ईशहीके दूसरे रूप हैं।' अर्थात् यदि हम नामको पकड़ लें तो हमने ईशको पा लिया और रूपको पकड़ लें तो भी वही बात हो चुकी। यह बात साधन करके भलीभाँति समझो।' वे '***दुइ***' की ठौर '***दोउ***' पाठ शुद्ध मानते हैं। यह 'उपाधि' का अर्थ वेदान्त- शास्त्रके अनुकूल बताते हैं।

नोट—२ पं० रामकुमारजी कहते हैं कि '***अकथ, अनादि, सुसामुझि साधी***' ये सब '***ईश***' के विशेषण हैं। जैसे—***अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥***' और '***ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥***' में अकथ आदि '***ब्रह्म सरूप***' और '***ब्रह्मसुख***' के विशेषण हैं।

नोट—३ '***नाम रूप दुइ ईस उपाधी***' इति। उपाधिके कई अर्थ हैं। (क) धर्मचिन्ता, कर्तव्यका विचार। (ख) उपद्रव, उत्पात। (ग) पदवी, प्रतिष्ठासूचक पद। (घ) समीप-प्राप्त।

इन अर्थोंको एक-एक करके लेनेसे '***दुइ ईस उपाधी***' के ये भाव निकलते हैं—(क) नामको सुमिरें या रूपका ध्यान करें, दोनोंहीसे प्रभुके चित्तमें भक्तका मनोरथ पूरा करने, दुःख हरने इत्यादिकी चिन्ता हो जाती है, क्योंकि उनको अपने 'बान' की लाज है। यथा—'***जो कहावत दीनदयाल सही जेहि भार सदा अपने पनको।***' (क० उ० ९) '***मम पन सरनागत भयहारी***' (सुं० ४३) '***कोटि बिप्रबध लागहिं जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू॥***' (सुं०४४) '***सो धौं को जो नाम लाज ते नहिं राख्यो रघुबीर***' (वि० १४४) मानसतत्त्व-विवरणकार लिखते हैं कि यहाँ 'पूर्व चौपाईका हेतु कहते हैं। 'ईश' अर्थात् ईश्वर जो सृष्टिका निमित्त कारण है, कार्यको उत्पन्न करके भिन्न रहता है। ऐसे भिन्न पुरुषकी प्रीतिकी कोई उपाधि खोजना अवश्य हुआ। अस्तु, महानुभावोंने केवल नाम और रूप यही दो पाया! दोनों सम इस कारणसे हैं कि ईशकी उपाधि अर्थात् 'धर्मचिन्ता' वा '***निज परिवार***' (**'उपाधिर्धर्मचिन्तायां कुटुम्बव्यापृते छले**' इति मेदिनी-कोश) नाममात्र है किंवा रूपमात्र'। (ख) '***उपाधि***' उपद्रवको भी कहते हैं। भाव यह कि नाम-रूपसे ईश पकड़े जाते हैं। इस प्रकार भी दोनों बराबर हैं (पं० रामकुमारजी)। (ग) जैसे पदवी पानेसे मनुष्य

प्रतिष्ठित हो जाता है। उसके गुण, अधिकार इत्यादि सभी जान जाते हैं। वैसे ही ईश्वरके नाम-रूपहीसे उसका यथार्थ बोध होता है। बिना नामरूपके उसका ध्यान, ज्ञान, समझना, उनमें और उनके गुणोंमें विश्वास होना इत्यादि असम्भव हैं। नाम और रूपहीसे परमेश्वर जगत्‌में सुशोभित होते हैं; उनकी चर्चा घर-घर होती है; अतएव नाम और रूप मानो पदवी हैं जिससे प्राणियोंकी दृष्टिमें परमेश्वरकी प्रतिष्ठा है (श्रीसीतारामप्रपन्न गयादत्त चौबे, जिला बलिया)। (घ) ईशके समीप (जापक-जनको) प्राप्त कर देनेवाले हैं। अर्थात् प्रभुकी प्राप्तिके दोनों ही मुख्य साधन हैं। प्रमाण यथा—**'रकारो योगिनां ध्येयो गच्छन्ति परमं पदम्। अकारो ज्ञानिनां ध्येयस्ते सर्वे मोक्षरूपिणः॥', 'पूर्णं नाम मुदादासा ध्यायन्त्यचलमानसाः। प्राप्नुवन्ति परां भक्तिं श्रीरामस्य समीपताम्॥'** (महारामायण मा० त० ५२, ६९, ७०)

नोट—४ पं० रामकुमारजी इस चरणपर यह श्लोक देते हैं, **'अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्। आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततो द्वयम्॥'** (उपनिषद्) अर्थात् जगत्‌का जो भान होता है उसमें अस्ति (है), भाति (भासता है), प्रिय, रूप और नाम इन पाँचोंका अनुभव होता है। इसमेंसे प्रथम जो तीन हैं वे ब्रह्मका रूप हैं जिसे सच्चिदानन्द कहा गया है और नाम तथा रूप ये मायाके हैं। (यह अद्वैत सिद्धान्तानुसार प्रतिपादन है।)

नोट—५ इन अर्थोंमें कोई-कोई शंका करते हैं कि 'ईशकी उपाधि' कहनेसे 'ईश' तीसरा पदार्थ ज्ञात होता है। यद्यपि यह शंका केवल शब्द कहनेमात्रका है तथापि 'ईश' और 'उपाधी' को पृथक् करके 'ईश' का अर्थ 'समर्थ' कर लेनेसे शंका निवृत्त हो जाती है।

नोट—६ ***'अकथ अनादि सुसामुझि साधी'*** इति (क) अकथनीय और अनादि यथा—***'नाम जपत शंकर थके शेष न पायो पार। सब प्रकार सो अकथ है महिमा अगम अपार॥'*** (विजयदोहावली), ***'महिमा नाम रूप गुन गाथा।'''''निगम सेष सिव पार न पावहिं।।'*** (उ० ९१) (ख) ***सुसामुझि***=अच्छी बुद्धिवालोंने। सुन्दर बुद्धिसे। भाव यह है कि उनमें भेद न मानकर इस उपदेशपर चले कि ***'रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहेरहु जौं चाहसि उजियार॥'*** पुनः ***'जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ'*** ऐसा समझकर प्रेमसे रामनाम जपें तो दोनोंका बोध आप ही हो जावेगा।

को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू ॥ ३ ॥

अर्थ—कौन बड़ा है, कौन छोटा, (यह) कहनेमें अपराध होता है। गुणको सुनकर साधु भेद (वा, गुणोंका भेद सुनकर) समझ लेंगे॥ ३॥

टिप्पणी—१ समझनेमें सुखद हैं। यथा—***'समुझत सुखद न परत बखानी।'*** इसीलिये ***'सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू'*** कहा। यहाँ कहते हैं कि बड़ा-छोटा कहनेमें अपराध होगा, इसीसे आगे कहेंगे कि **'न परत बखानी'।**

नोट—इस दोहेका सम्पूर्ण विषय कठिन है। इसी कारण विषयके साथ ***'समुझत'*** या समझसे सम्बन्ध रखनेवाले शब्द प्रसंगभरमें दिये हैं। यथा—***'समुझत सरिस नाम अरु नामी', 'सुसामुझि साधी', 'समुझिहहिं साधू', 'समुझत सुखद।'*** देखिये, कहते हैं कि ***'को बड़ छोट कहत अपराधू'*** और आगे चलकर बड़ा कह भी दिया है, ***'कहहुँ नाम बड़ राम ते।'*** यह क्यों? उत्तर—(१) पण्डित रामकुमारजी लिखते हैं कि 'यदि एकके गुण और दूसरेके दोष कहकर एकको बड़ा और दूसरेको छोटा कहें तो दोष है; इसीसे हम गुण-दोष न कहकर दोनोंके गुण ही कहकर बड़ा-छोटा कहते हैं, दोनोंके गुण सुनकर साधु समझ लेंगे; इसमें दोष नहीं। बड़ा-छोटा कहनेकी प्रायः यह रीति है कि एकके गुण कहे और दूसरेके अवगुण, जैसा ग्रन्थकारने श्रीसीताजीके प्रसंगमें (२३७, २३८ दोहेमें) श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दसे कहलाया है। यथा—***'सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥', 'जनम सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक॥'*** (२३७) ***'घटइ बढ़इ'*** इत्यादि। गोस्वामीजी कहते हैं कि हम इस रीतिसे बड़ाई-छुटाई नहीं कहते।' (२) प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि यहाँ बड़ा-छोटा कहनेमें अपराध मानते हुए

भी आगे बड़ा-छोटा कह ही डाला। इसका कारण यह है कि रामनामपर उनका इतना विश्वास है कि उनसे रहा न गया और अपने इष्ट (रामनाम) की बड़ाई कर ही डाली और अपना विश्वास प्रकट कर दिया कि इतना बड़ा अपराध करनेपर भी रामनाममें वह शक्ति है कि अपराध क्षमा हो ही जायगा। (३) मानसदीपिकाकार लिखते हैं कि 'इस रीतिसे वास्तविक सिद्धान्त न कहकर अब, केवल भक्तोंके उपासनानुसार और कलियुगमें नामीसे नामका प्रभाव अधिक समझकर निज भावके अनुकूल सिद्धान्त कहते हैं। (४) सू० प्र० मिश्र—***'को बड़ छोट कहत अपराधू'*** इस आधी चौपाईतक ग्रन्थकारने शास्त्रसिद्धान्तकी बातें कहीं, आगे केवल भक्तोंके उपासनानुसार कहते हैं। ***'सुनि गुन भेद'*** अर्थात् नामीसे नामके अधिक गुण सुनकर। (५) सु० द्विवेदीजी—'दोनोंमें समान गुण होनेसे एकको बड़ा, दूसरेको छोटा कहना अपराध है। साधु लोग अपनी-अपनी रुचिसे इन दोनोंके गुणोंको सुनकर तथा विचारकर आप इन दोनोंके भेदको समझेंगे। यह कहकर ग्रन्थकारने अपनी रुचिसे नामके बड़ा होनेमें हेतु दिखलाया।'

देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥ ४॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचानें॥ ५॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदय सनेह बिसेषें॥ ६॥

अर्थ—रूप नामके अधीन (आश्रित, वश) देखा जाता है। बिना नामके रूपका ज्ञान नहीं हो सकता॥ ४॥ विशेष रूपका पदार्थ भी हथेलीपर प्राप्त होनेपर भी बिना नामके नहीं पहचाना जा सकता ॥ ५॥ और बिना रूपके देखे नामको 'सुमिरिये' तो वह रूप हृदयमें बड़े स्नेहसमेत आ जाता है॥ ६॥

नोट—१ ***देखिअहिं***—श्रीरूपकलाजी कहते हैं कि इस शब्दसे भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों काल-का बोध होता है, जैसे फारसीमें मुजारैसीगासे। भाव यह कि सदैव देखते आये, देखते हैं और अब भी देखेंगे। अथवा, ऊपर कहा है कि साधु समझ लेंगे और अब कहते हैं कि वे स्वयं देख लेंगे कि रूप नामके अधीन है। ***देखिअहि***=देखिये, देखते हैं, देखा जाता है। यथा—***'नाथ देखिअहि बिटप बिसाला'*** (अयो० २३७) ***'बायस पलिअहिं अति अनुरागा'*** (बा० ५); ***'ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं'*** (अयो० १२१) में ***रखिअहिं***=रखिये, रख लें, रख लिया जाय। ***'करुनामय रघुनाथ गोसाईं। बेगि पाइअहि पीर पराईं॥'*** में ***पाइअहि***=पाते हैं।

नोट २—***'रूप नाम आधीना'*** इति। रूप नामके अधीन है, इसका प्रमाण इसी ग्रन्थमें देख लीजिये। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीको न पहचान सके, जबतक उन्होंने अपना नाम न बताया। यदि वे रूप देखकर पहचान गये होते तो यह प्रश्न न करते कि ***'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥....'*** जब श्रीरामचन्द्रजीने नाम बताया तभी पहचाना। यथा—***'कौसलेस दसरथ के जाये। नाम राम लछिमन दोउ भाई।.... प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना'*** (कि० २)। 'देखिये दस-पाँच मनुष्य एक ही स्थानपर सोये हों तो जिसका नाम लेकर पुकारोगे वही बोल उठेगा। नामहीके बेधनेसे नामीकी मृत्यु हो जाती है' (बैजनाथजी)। कोई मनुष्य किसी जाने हुए ग्राम वा नगर इत्यादिको जा रहा हो, रास्ता भूल जाय तो उस ग्रामका नाम न जाननेसे उसको उसका पता लगाना असम्भव हो जाता है। बिना नाम कहे कोई किसीको कोई वस्तु समझाना चाहे तो नहीं समझा सकता। इससे निश्चय है कि समग्र गुणोंसहित रूप सूक्ष्मरूपसे नाममें बसा है, नामकी प्रशंसासे रूप प्रसन्न होता है, अतः अधीन कहा (वै०)। श्रीलाला भगवानदीनजी लिखते हैं कि ***'नाम रूप दुइ ईस उपाधी।.... आवत हृदय सनेह बिसेषें।'*** में गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी दार्शनिक प्रवीणता भलीभाँति दिखला दी है। इसमें एक चौपाईपर मनन करनेकी आवश्यकता है। वह चौपाई यह है—***'देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥' 'रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतलगत न परहिं पहिचानें॥'*** बिना नामके किसी भी रूपका (वस्तुका) ज्ञान ही असम्भव है। सबसे भारी असमंजस यह है कि नामके बिना रूपकी विशेषता ही नहीं जानी जा

सकती; चाहे वे कितने ही समीप क्यों न हों। यह बात इस प्रकार स्पष्ट हो सकती है कि मान लीजिये आपके सामने दो भिन्न वस्तुएँ रखी हैं। अब जबतक उनका नामकरण नहीं होता, तबतक उन्हें दूसरेको समझाना तो दूर रहा, आप स्वयं भी समझ नहीं सकते। एक स्थानपर आम और आँवला रखे हों और उनके नाम यदि आप नहीं जानते, केवल रूपके जानकार हैं तो 'आँवला' कहनेपर 'आम' तथा 'आम' कहनेपर आँवलाका ग्रहण आपके लिये कोई असम्भव बात नहीं। केवल दो वस्तुओंमें जब 'अनामता' से भ्रम हो जाना सम्भव है तो असंख्य वस्तुओंमें 'अनामता' से गलती होना ही सर्वथा सम्भव है। यही 'नाम' और 'रूप' का अन्तर है। बिना दोनोंके सफल होना कठिन है। किन्तु 'नाम' में अधिक बल है, क्योंकि रूप नामका अनुगामी है। यथा किसी समाजमें बहुत-से व्यक्ति बैठे हैं और एकका नाम बताकर बुला लानेको कहा जाय तो वह शीघ्र आ जायगा। उसी प्रकार 'नाम' द्वारा 'रूप' का ग्रहण होता है। नाम लेकर पुकारनेपर जो व्यक्ति उठेगा उसके 'रूप' को भी बुलानेवाला हृदयंगम कर लेगा। किन्तु केवल 'रूप' जाननेसे इतना काम नहीं बन सकता। इस बातका प्रमाण मन्त्रशास्त्रसे प्रत्यक्ष मिलता है। इस शास्त्रके अनुसार मारण, मोहन इत्यादि प्रयोग केवल नामहीके द्वारा सिद्ध होते हैं और प्रभाव नामीपर पड़ता है। इसी बातको तुलसीदासजीने स्पष्ट किया है। ***'सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निरगुन मन तें दूर। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूर॥'*** (दोहावली ८) ***'ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि। रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥'*** इससे भी अधिक स्पष्ट रामचरितमानसमें कहा है। यथा—***'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।'*** इत्यादि।

नोट—३ ***'रूप बिसेष'*** इति। शब्दसागरमें 'विशेष' के अर्थ ये हैं—भेद, विचित्रता, तारतम्य, अधिकता और वैशेषिक दर्शनके अनुसार 'वे गुण जिनके कारण कोई एक पदार्थ शेष दूसरे पदार्थोंसे भिन्न समझा जाता है'। टीकाओंमें इसके अर्थ ये किये गये हैं—(क) विशेष रूपका पदार्थ जैसे कोई रत्न, हीरा, पन्ना आदि। इसके रूप-रंगको सुना है। वह मिला भी तो बिना उसका नाम जाने कितनोंहीने उसको साधारण पत्थर जानकर सेरभर सागके बदलेमें दे दिया है। जब उसका नाम जाना तब पछताये। विदेहजीने श्रीराम-लक्ष्मणको देखा, पर जबतक विश्वामित्रजीने नाम न बताया उनको न पहचाना (पंजाबीजी)। (ख) 'रूपका विशेष ज्ञान होनेपर भी नाम जाने बिना' (करुणासिन्धुजी, रा० प्र०)। (ग) 'रूपकी विशेषता' कि यह ऐसे गुणवाला है, इत्यादि। (घ) 'यद्यपि रूप विशेष है। अर्थात् जो गुण रूपमें हैं सो नाममें नहीं हैं। यथा वज्रोपल नाममें पत्थरका कठोरता गुण है और उसके रूपमें इतने गुण हैं कि वह अमूल्य है, पुत्रदायक है, सुखदायक है, विष और वज्रकी बाधाको हरता है, इत्यादि। इस प्रकार रूप गुणोंमें विशेष है तो भी ***'करतल गत.....'*** अर्थात् रूपके गुण नामहीसे प्रकट होते हैं, अन्यथा नहीं (वै०)। (ङ) श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि यहाँ ***'देखिअहि.....*** से लेकर चार चरणोंमें एक ही बात कही है, इससे पुनरुक्तिदोष होता है। ***'देखिअहि..... आधीना'*** से जनाया कि नामके अधीन होनेसे रूपका दर्शनमात्र होता है। ***'रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना'*** से जनाया कि नामकी विमुखतासे रूप किंचिन्मात्र भी पहचाना नहीं जाता। और ***'रूप बिसेष.....'*** से जनाया कि नामका उपकार, सबलता, माहात्म्य वा प्रभाव बिना जाने जो रूप करतलगत है उसका वह दिव्य रहस्य जाना नहीं जाता। (च) 'रूप विशेष करतलगत है पर नाम बिना.....'। (नं० प०)

नोट—४ ***'आवत हृदय सनेह बिसेषें'*** इति। इसके भी दो-तीन तरहसे अर्थ किये जाते हैं—(क) एक ऊपर लिखा गया कि 'रूप हृदयमें बड़े स्नेहसे आ जाता है।' प्रमाण यथा—**'रूपं श्रीरामचन्द्रस्य सुलभं भवति ध्रुवम्'** (मार्कण्डेयपुराण)। (ख) नाम जपनेसे हृदयमें नामीमें विशेष स्नेह आ जाता है; जिसका फल रूपदर्शन है (श्रीरूपकलाजी)। यथा—***'मन बच करम नामको नेमा। तब उपजै नामी पद प्रेमा।'*** (महात्मा श्री १०८ युगलानन्यशरणजी, लक्ष्मणकिला, श्रीअयोध्याजी) पुनः, यथा—***'हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥'*** (बा० १८५) ***'अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥'*** (अ० १०) (ग) 'विशेष स्नेहसे नामका स्मरण करनेसे बिना देखे रूप हृदयमें आ जाता है।' क्योंकि

देवता मन्त्रके अधीन हैं, यह श्रीजैमिनीय मीमांसा, तापिनी आदिसे प्रसिद्ध है। यथा—'**यथा नामी वाचकेन नाम्ना योऽभिमुखो भवेत्। तथा बीजात्मको मन्त्रो मन्त्रिणोऽभिमुखी भवेत्॥**' (रा० पू० ता० उ० ४। ३) अर्थात् जैसे वाचक नामके द्वारा नामी सम्मुख हो जाता है, उसी प्रकार बीजात्मक मन्त्र श्रीरामजीको जापकके सम्मुख कर देता है। पुनः यथा—'***मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व। महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब॥***' (बा० २५६) 'श्रीरामनाम' महामन्त्र है। यथा—'***महामंत्र जोइ जपत महेसू***' इसके अधीन देवताओंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं।

नोट—५ विनायकी टीकाकार लिखते हैं कि 'नाम लेनेसे वस्तुका अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है तभी तो व्याकरणमें नामको संज्ञा कहते हैं और संज्ञा शब्दका अर्थ अच्छी तरहसे ज्ञान करानेवाला ऐसा होता है। संज्ञाको मराठी व्याकरणमें नाम कहते हैं।'

नाम रूप गति* अकथ कहानी। समुझत सुखद न परत बखानी॥ ७॥

अर्थ—नाम और रूप दोनोंकी गतिकी कहानी अकथनीय है; समझनेमें सुखद है, वर्णन नहीं करते बनता॥ ७॥

नोट—१ '***अकथ***' का भाव यह है कि ये दोनों एक-दूसरेमें ऐसे गुँथे हैं कि एककी बड़ाईके साथ दूसरेकी बड़ाई झलक ही पड़ती है अर्थात् नामस्मरणसे रूप स्नेहसहित न आवे तो सेवककी स्वामीपर प्रीति ही कैसी? दूसरी ओर दृष्टि डालिये तो यह विचार होता है कि बड़ेका स्नेह छोटेपर होता है। यथा—'***बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरन्हि सदा तृन धरहीं॥***' (बा० १६७) इससे नामीका भी बड़प्पन झलक उठता है। अतएव '***अकथ***' कहा। विशेष २१ (३) में टिप्पणी पं० रामकुमारजीकी देखिये। (मानसपरिचारिका)

नोट—२ श्रीसुदर्शनसिंहजी—नामकी गति अवर्णनीय है। नामसे नामीका अभेद और नामके स्मरणसे हृदयमें नामीका प्रादुर्भाव, यह साधनकी वस्तु है·····। किस प्रकार नामका नामीसे अभेद है और किस प्रकार नामसे नामी आकर्षित होता है, यह नामका आश्रय लेनेसे समझमें आ जायगा और समझमें आनेसे उससे आनन्द प्राप्त होगा। यह सुखद है, परन्तु यह बात वर्णन नहीं की जा सकती। नामकी कहानी भी अकथ है। उसके द्वारा अनन्त जीवोंका उद्धार हुआ है, यह समझनेपर हृदय श्रद्धासे पूर्ण हो जायगा और श्रद्धाजन्य आनन्द उपलब्ध होगा पर नामके चरितका वह महत्त्व तो शेष भी नहीं कह सकते। रूपकी गति एवं कथा भी अकथ है।···· भगवान्‌का दिव्य रूप कैसा है? कैसे हृदयमें आता है? कैसे क्षणभरमें हृदय कुछ-से-कुछ हो जाता है? यह कौन बता सकेगा? यह तो अनुभव कीजिये! समझिये। राम अनन्त हैं, इसलिये रूपके चरित भी वर्णन नहीं किये जा सकते।···· इस प्रकार नाम एवं रूपमें दोनोंकी गति (कार्यशैली) तथा कहानी (चरित) अवर्णनीय है। वे अनुभवकी वस्तु हैं और अनुभव करनेपर उनसे आनन्द प्राप्त होता है। (मानसमणि)

नोट—३ पं० सूर्यप्रसाद मिश्र—यहाँ '***गति***' के तीन अर्थ हैं। राह, हालत और ज्ञान। नामरूपकी राह या उनकी हालत या उनका ज्ञान ये बातें कहाँसे कही जा सकती हैं? समझनेमें तो सुख देनेवाली हैं पर कही नहीं जा सकतीं। इसका कारण यह है कि प्रिय वस्तुका कहना नहीं हो सकता। क्योंकि उस वस्तुके साक्षात्कार होनेसे मन उसीके आनन्दमें डूब जाता है फिर कहनेवाला कौन दूसरा बैठा है? यही बात श्रुतिमें लिखी है। '**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**'(तै० ३। २। ४)

नोट—४ श्रीसुधाकर द्विवेदीजी—'नाम और रूपकी गति उनके माहात्म्य कहने और समझनेसे सुख देनेवाली है। अर्थात् और देव अनेक पूजादिसे प्रसन्न होकर तब सुखद होते हैं, परन्तु नामके स्मरण और

* गुन—(पं० रामकुमारजी, व्यासजी, रामायणीजी)। गति कहत कहानी—(मानस-पत्रिका), अर्थात् 'इनकी गति, कथा कहते और समझते सुख देनेवाली है' (मा० प०)। नंगे परमहंसजी नाम-रूपकी कहानीकी गति' यह अर्थ करते हैं।

उस नामके साथ-साथ उस नामीकी स्तुति करते ही वह नामीकी गति सुखद हो जाती है, इसलिये वह गति वर्णनसे बाहर है। (मानस-पत्रिका, सं० १९६४)

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥ ८॥

अर्थ—निर्गुण (अव्यक्त) और सगुणके बीचमें नाम सुन्दर साक्षी है। (नाम) चतुर दुभाषिया (दो भाषाएँ जाननेवाले) के समान दोनोंका (यथार्थ) बोध करानेवाला है॥ ८॥

नोट—१ नामको 'साक्षी, प्रबोधक और दुभाषिया' कहा। क्योंकि नामका जप करनेसे निर्गुण और सगुण दोनोंहीका बोध हो जाता है। दोहा २१ देखिये। जो ब्रह्मको नामरूपरहित कहते हैं वे भी तो उसको किसी-न-किसी नामहीसे पुकारते और जानते हैं, जैसे ईश्वर, परमात्मा, अलख। याज्ञवल्क्यस्मृति यथा—**'परमात्मानमव्यक्तं प्रधानपुरुषेश्वरम्। अनायासेन प्राप्नोति कृते तन्नामकीर्तने॥'** अर्थात् भगवन्नाम-कीर्तन करनेसे माया और जीवका स्वामी अव्यक्त परमात्मा अनायास प्राप्त हो जाता है।

नोट—२—***सुसाखी***=सु+साखी=सुन्दर साक्षी (गवाह)। 'सु' विशेषण इससे दिया कि एक गवाह ऐसे होते हैं कि जिधर झुकते हैं उधरहीकी-सी कहते हैं, सत्य-असत्यका विचार नहीं करते, जान-बूझकर दूसरेका पक्ष नाश ही कर देते हैं और श्रीरामनामके जपनेसे दोनोंकी यथार्थ व्यवस्था जानी जा सकती है। पुनः गवाह वादी-प्रतिवादी दोनों ओरके झगड़ेको साबित (निरूपण) करते हैं। इसी तरह नाम इस बातको साबित करते और इसका यथार्थ बोध भी करा देते हैं कि जो अगुण है वही सगुण और जो सगुण है वही अगुण ब्रह्म है। यथा—***'सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज विज्ञानरूप बल धामा॥'*** से ***'प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥····· भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप। किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥ जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ। जोइ जोइ भाव दिखावइ आपुन होइ न सोइ।'*** (उ० ७२ तक) इस तरह दोनोंका मेल करा देते हैं। अतः सुसाखी कहा।

नोट—३ ***'चतुर दुभाषी'*** इति। जब एक देशका रहनेवाला दूसरे देशमें जाता है जहाँकी बोली वह नहीं जानता, तब उसे दोनों देशोंकी बोली जाननेवालेकी आवश्यकता पड़ती है, जो इसकी बात उस देशवालोंको और उनकी इसे समझा दे—इन्हींको दुभाषिया कहते हैं। ***'नाम'*** को चतुर दुभाषिया कहा; क्योंकि—(क) देशभाषा समझा देना तो साधारण काम है और निर्गुण-सगुणका दृढ़ बोध कराना अति कठिन है, यह ऐसी सूक्ष्म बात है कि वेदोंको भी अगम है। (ख) दुभाषिया तो हर देशवालेको उसीकी बोलीमें समझाता है और श्रीनाममहाराज ऐसे चतुर हैं कि ये एक ही शब्दमें दोनोंका बोध करा देते हैं। यथा, राम=जो सबमें रमे हैं और सबको अपनेमें रमाये हैं। यथा, **'रमन्ते योगिनो यस्मिन्'** यह निर्गुणका बोध हुआ। पुनः राम=जो रघुकुलमें अवतीर्ण हुए सो सगुण हैं। मानसदीपिकाकार लिखते हैं कि 'राम' ऐसा नाम अक्षरोंके बलसे रूढ़िवृत्तिसे दशरथात्मजका बोध कराता है और योगवृत्तिसे निर्गुणका।

नोट—४ ***'उभय प्रबोधक'*** यथा—**'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥'** (रा० पू० ता० १। ६) इति निर्गुणप्रबोधन। अर्थात् जिस अनन्त, सत्य, आनन्द और चिद्रूप परब्रह्ममें योगीलोग रमते हैं वही 'राम' शब्दसे कहे जाते हैं। यह निर्गुणका प्रबोध हुआ। पुनः यथा—**'चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीं स्थितः॥ स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः।१। राक्षसा येन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा। रामनाम भुवि ख्यातमभिरामेण वा पुनः।२।** 'इति श्रीरामतापि सगुणरामप्रबोधन।' (रा० पू० ता०)। अर्थात् रघुवंशी नरेश दशरथमहाराजके घरमें पुत्ररूपसे महाव्यापकत्वादि गुणवाले इन चिन्मय, भक्तदुःखहारी श्रीराम नामक ब्रह्मके भक्तानुग्रहार्थ अवतीर्ण होनेपर विद्वानोंने इस लोकमें भी उस परब्रह्मका वही श्रीरामनाम ही इसलिये प्रकट किया कि मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होनेपर भी वह भक्तोंको यथेष्ट देता है और पृथ्वीपर रहते हुए भी अपने दिव्यगुणोंसे दीप्त रहता है॥ १॥ जिसके द्वारा राक्षसलोग मरणको प्राप्त

हुए। राक्षसका रकार और मरणका मकार मिलाकर सम्पूर्ण राक्षसोंके मारनेवालेका नाम राम प्रसिद्ध हुआ। अथवा, जो शक्ति आदिमें सबसे बढ़कर है, उसका नाम राम है। अथवा अत्यन्त सुन्दर विग्रह होनेसे पृथ्वीपर 'राम' नामसे विख्यात है। (पं० रा० कु०)

नोट—५ जिसका समझना-समझाना दोनों ही कठिन है उसका भी प्रबोध करा देते हैं।

नोट—६ श्रीकाष्ठजिह्वास्वामीजीका मत है कि 'नामका अर्थ अगुणरूपका साक्षी है और अक्षर सगुणरूपका साक्षी है; क्योंकि रूपवालेहीका नाम कहते बनता है। इस तरह नाम दोनोंको जनाता है और दोनोंसे अलग है। (रा० प०)

नोट—७ मानसमयंककार लिखते हैं, ***'जापक रघुबर बीचमें नाम दुभाषी राज। जो जापक अगुणहिं चहे अगुण जापकहि साज॥'*** अर्थात् नाम जापक और श्रीरघुनाथजीके बीचमें नाम दुभाषियाका काम करता है, रघुनाथजीके रहस्य जापकको समझाकर और जापककी दीनता प्रभुको सुनाकर उसको प्रभुकी प्राप्ति कराता है और यदि जापकको निर्गुण ब्रह्मकी चाह हुई तो नाम उस जापकको निर्गुणकी प्राप्ति करा देता है।

नोट—८ बैजनाथजी लिखते हैं कि अगुण अन्तर्यामीरूप है और पररूप साकेतविहारी, चतुर्व्यूह, अवतारादि विभु और अर्चा सगुणरूप हैं। नाम दोनोंका हाल यथार्थ कह सकता है। पुनः, अगुण और सगुण दो देश हैं। दोनोंकी भाषा भिन्न-भिन्न है। अगुण देशकी बोली है, सारासारका विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति (शम, दम, उपराम, तितिक्षा, समाधान और मुमुक्षुता) इत्यादि। सगुण देशमें श्रवण, कीर्त्तन आदि नवधा, प्रेमा, परा भक्ति मिलते हैं। वहाँकी बोली, धर्म, शान्ति, सन्तोष, समता, सुशीलता, क्षमा, दया और कोमलता आदि। नाम दोनोंकी बोली समझाकर दोनोंसे मिला देता है।

श्रीसुदर्शनसिंहजी—पहले कह आये हैं कि ***'नामरूप गति अकथ'*** और साथ ही उसे अनुभूतिका विषय भी बता आये हैं। अब यहाँ रूपके दो भेद बताकर दोनोंसे नामका अभिन्न सम्बन्ध एवं नामके द्वारा ही दोनोंके अभेदकी उपलब्धिका निरूपण किया गया। रूपके दो भेद कर दिये, निर्गुणस्वरूप और सगुणस्वरूप। समझ लेना चाहिये कि नाम और रूप ***'अकथ'*** हैं। अतएव नामके द्वारा इन दोनोंका सामंजस्य भी अकथ ही है। नामकी साधनासे ही ज्ञान होता है कि वस्तुतः दोनों अभिन्न हैं। तर्कके द्वारा अभेद प्रतिपादित नहीं हो सकता।

'समुझत सरिस नाम अरु नामी' से प्रारम्भ करके यहाँतक नाम और नामीका परस्पर सम्बन्ध, नामके द्वारा नामीकी उपलब्धि, नामीके दो स्वरूप निर्गुण और सगुण तथा दोनोंकी उपलब्धि एवं एकात्मता नामके द्वारा बतायी गयी। अब इसके पश्चात् नामके साधनका स्पष्टीकरण करेंगे।

नाम-वन्दनाके इस प्रसंगमें नामीकी इस चर्चाका क्या प्रयोजन था? नामीके चरितके वर्णनके लिये तो पूरा 'मानस' ही है। यह बात समझ लेनी चाहिये। सामान्यतः साधक नामका जप करता है और उसका ध्यान नामीपर रहता है। इस प्रकार निष्ठामें विपर्यय होनेसे उसे साध्यकी प्राप्तिमें विलम्ब होता है। विलम्ब कई बार अश्रद्धा तथा उपरतिका कारण होता है। अतः इस दोषका यहाँ निराकरण हुआ है।

यहाँ यह समझाया गया है कि नाम स्वयं साधन और साध्य दोनों है। तुम आराध्यका सगुणरूप मानो या निर्गुण, दोनोंका स्वरूप है नाम। नाम स्वयं आराध्य है। वह स्वतः प्राप्य है। अतः साधककी निष्ठा नाममें आराध्यकी होनी चाहिये। नाममें प्रेम और निष्ठा होगी तो नामी तो बिना बुलाये हृदयमें प्रत्यक्ष हो जायगा। उसके लिये इच्छा एवं अपेक्षाकी आवश्यकता नहीं। नाममें ही सम्पूर्ण अनुराग होना चाहिये। (मानसमणि)

दो०—रामनाम मनि दीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ[१] जौं[२] चाहसि उँजियार॥ २१॥

१—बाहरौ—१७२१, १७६२, छ०। बाहरहु—१७०४। बाहेरहुँ—१६६१। २—जों—१६६१

अर्थ—श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि (मुखरूपी दरवाजेकी) जीभरूपी देहलीपर श्रीरामनाम मणिदीपक रख, जो तू भीतर और बाहर भी उजाला चाहता है॥ २१*॥

नोट—१ श्रीरामनामको 'मणिदीप' कहनेका भाव यह है कि—(क) साधारण दीपकमें तेल-बत्तीके समाप्त होनेका भय तथा पतंगों और हवा इत्यादिका डर रहता है, फिर प्रकाश भी एक-सा नहीं बना रहता। नाम छोड़ अन्य साधन उस दीपकके समान हैं। उनमें धनके समाप्त होनेका डर और काम-क्रोधादिकी बाधाका भय रहता है। नाम-साधन मणिदीपसम है जिसमें किसी विघ्नका भय नहीं है। विनयपद ६७ और १०५ में भी नामको मणि कहा है। यथा—***'रामनाम महामनि', 'पायो नाम चारु चिंतामनि।'*** भक्ति चिन्तामणिके लक्षण उ० १२० में कहे गये हैं और श्रीरामभक्तिमें नाम मुख्य है हीं। (बा० १९) अतएव वे लक्षण यहाँ भी लगते हैं। लक्षण, यथा—***'परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥ मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥ अचल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥ खल कामादि निकट नहिं जाहीं।'*** (७।१२०) (ख) जैसे मणिदीप बुझता नहीं, वैसे ही श्रीरामनाम जिह्वापर बराबर चलता रहे, जिह्वा कभी नामसे खाली न रहे, यह भी सूचित किया। वा, (ग) दुभाषियारूपसे अगुण-सगुणका यथार्थस्वरूप बताते हैं और मणिरूपसे उनके दर्शन भी करा देते हैं।

---

* श्रीनंगे परमहंसजी 'देहरी' का अर्थ 'दीयठ' करते हुए यह अर्थ लिखते हैं कि 'जीहरूपी दीयठपर रखकर द्वारपर धरु।' उनका आग्रह है कि 'जब दीपकका रूपक कहा जाता है तब दीयठका रूपक भी कहा जाता है, क्योंकि दीयठ दीपकका आधार है। अतः आधार आधारीरूपसे दीपक-दीयठका सम्बन्ध है। प्रमाण 'मनिदीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।' 'चित्त दिया भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।' 'मणिदीप राजहिं।....' में 'देहरी' का अर्थ सिवाय दीयठके दूसरा हो ही नहीं सकता, क्योंकि दरवाजेका प्रसंग अभी तीन प्रसंगके बाद कहा गया है। यदि कोई महाशय हठवश 'देहली वा चौखटा' अर्थ करेंगे तो अल्पबुद्धिका विचार कहा जायगा।' दोहेके भाव ये हैं कि—(क) जैसे दीप-देहरी-संयोग वैसे ही नाम और जीहका 'संयोग' नाम जीभपर निरन्तर बना रहे। (ख) द्वारपर धरना मुखसे रटना है, क्योंकि जब द्वार खुला रहेगा, तभी भीतर उजाला होगा। मुख रटनेपर ही खुला रहता है। (ग) जैसे दीयठ दीपकके अतिरिक्त अन्य कार्योंमें नहीं लायी जाती, वैसे ही जिह्वाको अन्य शब्दके उच्चारणमें न लाया जाय।'

वे० भू० पं० रा० कु० दासजी लिखते हैं कि अमरकोशमें गृहद्वारके अधोभाग (चौखट) को देहली बताया गया है। (अमरविवेक टीकाने विस्तारसे इसपर टीका की है।) पद्माकर और व्रजभाषाके ख्यातनामा कवियोंने भी इसी अर्थमें 'देहरी' का प्रयोग किया है। यथा—'एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरै, एक कर कंज एक कर है किंवार पर।' 'देहरी थरथराइ देहरी चढ़्यो न जाइ देह री! तनक हाथ देह री लंघाइ ले।' इत्यादि। 'मनिदीप राजहिं ..... देहरी विद्रुम रची' इस तुकमें मूँगेका चौखट रचा जाना कहा जा चुका, इसीसे इस छन्दके चौथे तुकमें जब फाटकका वर्णन किया गया तब चौखटका वर्णन नहीं है। अतः 'देहरी' का चौखट अर्थ ही प्रामाणिक और समीचीन है। 'दीयठ' अर्थ उपयुक्त नहीं, क्योंकि दीयठका नियम नहीं कि द्वारपर ही रहे। दूसरे, दीयठ तो जहाँ चाहे तहाँ ही उठाकर रख सकते हैं और उससे काम ले सकते हैं, परन्तु उपमेयभूत जिह्वाको चाहे जहाँ रखकर काम नहीं ले सकते, वह तो मुखद्वारपर ही रहनेसे काम दे सकेगी। यहाँ शरीर घर, मुख द्वार, जिह्वा द्वारके अधोभागमें स्थित चौखट है, जो इसलिये है कि उसपर रामनामरूपी मणिदीप रखा जाय।

नोट—'देहरी' के 'दीयट' अर्थका प्रमाण किसी उपलब्ध कोशमें नहीं है। देहलीका सम्बन्ध घरके भीतर और बाहर दोनोंसे रहता है। देहलीपर दीपक रखनेसे भीतर और बाहर दोनोंमें प्रकाश रहता है। इसी सम्बन्धसे 'देहलीदीपकन्याय' प्रसिद्ध है। दीपके साथ ही 'देहरी' का नाम रखनेका उद्देश्य यह हो सकता है कि 'देहली' और दीपकका इतना घनिष्ठसम्बन्ध है कि 'देहलीदीपकन्याय' ही प्रसिद्ध हो गया और उस न्यायका प्रयोग देहली (चौखट) अर्थात् द्वारके मध्य भागपर दीपक रखनेसे जो दोनों ओर प्रकाश होता है उस भावको दर्शित करनेके लिये होता है। देहलीका अर्थ दीयठ यदि लें तो देहलीदीपकन्यायमें जो द्वार या चौखटका सम्बन्ध आ जाता है उसका बोधक शब्द फिर यहाँ कोई नहीं मिलता और ज्ञानदीपकप्रसंगमें भीतर-बाहरका कोई विषय नहीं है, केवल दीपक रखनेका प्रसंग है, इसलिये वहाँ दीयट ही कहा गया, देहरी न कहा गया।

नोट—२ द्विवेदीजी—डेवढ़ीपर दीपक रखनेसे भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला हो जाता है, इसी लिये संस्कृतमें 'देहलीदीप'-न्याय प्रसिद्ध है। और दीपकी शिखामें मोहसे अनेक अधम कीट-पतंगादि पतित होकर प्राण दे देते हैं, इसलिये वे सब दीप हिंसक हैं; परन्तु मणिदीपकी ऐसी शिखा है कि प्रकाश तो इतर दीपोंसे सौगुणा होता है और जीवहिंसा एक भी नहीं। यदि उस प्रकाशमें अधम, पतित आदि कीटपतंगादिके समान पतित हों तो शरीरनाशके बिना ही सब कल्मष भस्म हो जायँ और उनका रूप भी पवित्र होकर दिव्य हो जाय। और यह दीपशिखा प्रचण्ड विघ्नरूप प्रखर वायुसे भी नहीं बुझ सकती, इसलिये संसारमें यह अनुपम मणिदीप है। यह ग्रन्थकारका अभिप्राय है।

मिश्रजी—यह देह मन्दिरके समान है, उसका द्वार मुख है, जिह्वा देहली है और जिह्वा इस तरहसे भी देहली है कि नेत्र और बुद्धि दोनोंके बीचमें है। इसपर नाम रहता है। अर्थात् जैसे डिब्बेके भीतर रत्न रहता है, उसी तरह बुद्धि और नेत्र दोनोंके बीच रसनापर रत्नरूपी नाम रहता है। रामनाम जपनेवालेको दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

टिप्पणी—१ गोस्वामीजीने मनसे और वचनसे भजन करनेके फल भिन्न-भिन्न दिखाये हैं। ***'सुमिरिय नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदय सनेह बिसेषें॥'*** यह मनसे स्मरण करनेका फल है। और, ***'तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उँजियार'*** यह जिह्वासे भजन करनेका फल दिखाया। अर्थात् मनमें भजन करनेसे भगवान् हृदयमें आते हैं और जिह्वाद्वारा भजन करनेसे भीतर-बाहर देख पड़ता है। भीतर-बाहर उजाला हुआ तो भीतर निर्गुण, बाहर सगुण देख पड़ा। २ प्रथम कह आये कि नाम दोनों ब्रह्मको कहते हैं, अब नामजपसे दोनों ब्रह्मका प्रकट होना कहते हैं। नामके जपसे भीतर प्रकाश होता है तब निर्गुण ब्रह्मका अनुभव होता है, बाहर प्रकाश हो तब सगुण ब्रह्म देख पड़ेगा। [नोट—हृदयमें जो निर्गुण (अव्यक्त) रूप है उसका बोध होना भीतरका उजाला है, सगुण रूपका बोध होना बाहरका उजाला है। इस अर्थका प्रमाण दोहावलीमें है जिसमें यही दोहा देकर फिर ये दो दोहे दिये हैं। ***'हिय निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम। मनहु पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥'*** (दोहा ७) ***'सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन तें दूरि। तुलसी सुमिरहु रामको नाम सजीवन मूरि॥'*** (दोहा ८) 'भीतर-बाहरका उजाला क्या है और वह कैसे मिले?' यही इनमें बताया गया है जो इस अर्थसे मिलता है। दूसरे यहाँ प्रसंग भी सगुण-निर्गुणका है।] ३ 'निर्गुणके बिना जाने सगुणकी उपासना करें तो मोह हो जाता है, जैसे गरुड़जी और भुशुण्डिजीको हुआ। निर्गुणको बुद्धिसे निश्चित करके सगुणमें प्रीति करना चाहिये। (निर्गुण-उपदेश, यथा, ***'माया संभव भ्रम सकल.....।'*** सगुण उपदेश, यथा—***'मोहि भगति प्रिय संतत।'***) इसी तरह सगुणको बिना जाने निर्गुणकी उपासना करें तो कष्ट ही है जैसा कहा है, ***'जे अस भगति जानि परिहरहीं।....।'*** ४ निर्गुण-सगुण दोनोंको छोड़कर केवल नाम जपनेमें यह हेतु है कि ***'सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन तें दूरि। तुलसी सुमिरहु रामको नाम सजीवन मूरि॥'*** ५ मणिदीप स्वत:सिद्ध है, उपाधिरहित है। इसको द्वारकी देहरीपर रखे तो निर्गुण ब्रह्म मकानके भीतर अन्त:करणमें देख पड़ता है सो जीभके भीतर है और सगुण मकानके बाहर नेत्रोंके आगे देख पड़ता है। नेत्रसे सगुणका दर्शन होता है सो जीभके बाहर है। इसलिये भीतर-बाहर कहा। ६ हृदयका मोहान्धकार दूर होना, निर्गुण-सगुण देख पड़ना, उजियार होना है।' [कोई-कोई महानुभाव ऐसा भी कहते हैं कि मोहका दूर होना भीतरका उजाला है। यथा—***'अचल अबिद्या तम मिटि जाई'*** और इन्द्रियोंका दमन होना ही बाहरका उजाला है। यथा—***'खल कामादि निकट नहिं जाहीं।'*** ७ ***'जौं'*** का भाव यह है कि बिना रामनामके जपे हृदयमें प्रकाश नहीं हो सकता, निर्गुण-सगुण ब्रह्म नहीं देख पड़ते। आगे भक्तोंके द्वारा इसका उदाहरण देते हैं।

शंका—आजकलके कुछ मतानुयायी कहते हैं कि ***'जीह'*** का अर्थ यहाँ जीभ नहीं है, क्या यह सही है?

समाधान—श्रीगोस्वामीजीने 'जीह शब्द बहुत जगह दिया है उससे निस्संदेह यह स्पष्ट है कि

श्रीगोस्वामीजीने 'जीह' से 'जीभ' ही बताया है। यथा—*'जीह हूँ न जपेउँ नाम बकेउँ आउ बाउ मैं'* (वि० २६१) वह कौन 'जीह' है जिससे अनाप-शनाप बकना कहते हैं? *'गरैगी जीह जो कहउँ और को हौं'* (वि० २२९); *'कान मूँदि करि रद गहि जीहा'* (अ० ४८); *'गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा'* (अ० १६२); *'साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारउँ तव दस जीहा॥'* (लंका० ३३); *'संकर साखि जो राखि कहउँ कछु तौ जरि जीह गरो'* (वि० २२६) इत्यादिमें जो जीह शब्द आया है वह इस जीभके लिये यदि नहीं है तो वह और कौन 'जीह' है जिसका गलना, दाँतोंसे दाबना, उखाड़ना, जलकर गिरना इत्यादि कहा गया है?

नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥ १॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥ २॥

अर्थ—१ योगी जीभसे नामको जपकर जागते हैं (जिससे) वे ब्रह्माके प्रपंचसे विशेष योग रखते हुए भी पूर्ण विरक्त हैं॥ १॥ उपमारहित ब्रह्मसुखका अनुभव करते हैं जो अकथनीय है, निर्दोष है और जिसका न नाम है न रूप॥ २॥ (प्रोफे० दीनजी)

अर्थ—२ जो वैराग्यद्वारा ब्रह्माके प्रपंचसे (संसारके व्यसनादिके) वियोगी हैं (छोड़े हैं) वे योगी भी जिह्वासे नामको जपकर जागते हैं और अनिर्वचनीय, अनामय, नामरूपरहित ब्रह्मके अनुपम सुखका अनुभव करते हैं। (द्विवेदीजी, मिश्रजी)

अर्थ—३ योगी जीभसे नामको जपकर जागते हैं। (जिससे वे) वैराग्यद्वारा (अर्थात् वैराग्य प्राप्त करके) विधिप्रपंचसे वियोगी (उदासीन) हो जाते हैं और अनुपम, अकथ्य, अनामय (रोगरहित, निर्दोष), नामरूपरहित ब्रह्मके सुखका अनुभव करते हैं। (पं० रामकुमारजी प्रभृति)

नोट—१ प्रोफेसर दीनजी कहते हैं कि यहाँ *'बियोगी'* शब्द मेरी रायसे जोगीका विशेषण है अर्थात् योगसाधनसमय भी कुछ वस्तुओं (वल्कल-वस्त्र, कमण्डल आदि) से निर्वाहार्थ योग (सम्बन्ध) रखते हुए भी नामको जिह्वासे जपकर ब्रह्माकृत सृष्टिसे विरति प्राप्त करके चेतनात्माका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे राजा जनक आदि विधिप्रपंचसे विशेष योग रखते हुए भी पूर्ण विरक्तवान् थे। विशेषण न माननेसे 'वियोगी' और 'विरति' में पुनरुक्ति दोष हो जायगा।

टिप्पणी १—पहले कहा कि *'रामनाम मनिदीप धरु।'* यह कहकर अब मनका उत्साह बढ़ानेके लिये चार प्रकारके भक्तोंका उदाहरण देते हैं कि देख, सबका आधार रामनाम ही है, सभी इसको जपते हैं, तू भी जप। देख, नामजपसे केवल अगुण-सगुणहीका ज्ञान नहीं होता, किन्तु सब पदार्थ प्राप्त होते हैं, संकट दूर होते हैं, सब मनोरथ पूरे होते हैं और वैराग्य होकर ब्रह्मसुखका आनन्द प्राप्त होता है। (पं० रामकुमारजी)

नोट—२ *जोगी*=जो आत्माका परमात्मासे योग किये रहते हैं। यथा—*'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥'* (१। २६) पुनः, योगदर्शनमें अवस्थाके भेदसे योगी चार प्रकारके कहे गये हैं। (१) प्रथम कल्पिक, जिन्होंने अभी योगाभ्यासका केवल आरम्भ किया हो और जिनका ज्ञान अभी दृढ़ न हुआ हो। (२) मधुभूमिक, जो भूतों और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करना चाहते हों। (३) प्रज्ञाज्योति, जिन्होंने इन्द्रियोंको भलीभाँति अपने वश कर लिया हो। और, (४) अतिक्रानभावनीय, जिन्होंने सब सिद्धियाँ प्राप्त कर ली हों और जिनका केवल चित्तलय बाकी रह गया हो। (श० सा०)

पं० रामकुमारजीके मतसे योगी=ज्ञानी, संयमी। और बैजनाथजी योगीसे अष्टांगयोग-साधन करनेवाले ऐसा अर्थ करते हैं। श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि यहाँ ज्ञानीको 'योगी' नहीं कहा। ज्ञान, योग, वैराग्य और विज्ञान चारों भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। यहाँ 'योगी' मुमुक्षु है, मुक्ति पानेकी इच्छासे योगद्वारा ब्रह्मसुखका अनुभव करता है, विधिप्रपंचसे वियोगी होकर विरागी होता है। इनमें योगके सब लक्षण यम-नियम आदि घटते हैं। आगे गूढ़ गतिके जाननेवाले ज्ञानी हैं, क्योंकि उनको और कोई आकांक्षा नहीं है।

श्रीसुदर्शनसिंहजीका मत है कि यहाँ *'जोगी'* से परोक्ष ज्ञानी अभिप्रेत है। 'वह परोक्ष-ज्ञान रखता है और अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) के लिये नाम-जप करता है।' (मानसमणि)। इस प्रसंगपर विशेष दोहा २२ में लिखा जायगा, वहाँ देखिये।

पं० रामकुमारजीका तथा प्रायः अन्य टीकाकारोंके मतानुसार यहाँ 'ज्ञानी भक्त' ही योगी हैं। ज्ञानी भी नाम जपते हैं। यथा—**'प्रायो विवेकिनः सौम्य वेदान्तार्थैकनैष्ठिकाः। श्रीमतो रामभद्रस्य नामसंसाधने रताः॥'** (बृहद्विष्णुपुराण) गोस्वामीजीने आगे कहा भी है कि *'रामभगत जग चारि प्रकारा। ग्यानी प्रभुहिं बिसेषि पियारा॥'* ज्ञानी विशेष हैं, इसीसे यहाँ ज्ञानीहीका दृष्टान्त प्रथम देते हैं।

नोट—३ *'जागहिं जोगी'* का भाव यह है कि यह संसार रात है, इसमें योगी जागते हैं। यथा, *'एहि जग जामिनि जागहिं जोगी।'* (२। ९३) तथा **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।'** (गीता २। ६९) पुनः, यहाँ मोह रात्रि है। इस संसारके व्यवहार स्वप्न हैं, जो मोहरूपी रात्रिमें जीव देख रहा है और सत्य मानता है। इस संसार वा मोहरात्रिमें योगी नामके बलसे जागते हैं। (अर्थात् संसारी सब व्यवहार और वस्तुओंसे योगीको वैराग्य रहता है) यथा—*'सपने होइ भिखारि नृप रंक नाकपति होइ। जागें लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोइ।।'* (२। ९२)

प्रश्न—*'जागहिं'* से पहले सोना पाया जाता है। यहाँ रात, सोना और जागना क्या है? नोट (३) में इनका उत्तर संक्षेपसे दिया जा चुका है। पुनः, देह, स्त्री, पुत्र, धन, धाम, देह सम्बन्धमात्रको अपना मानकर उनमें ममत्व करना, आसक्त होना ही सोते रहना है। यथा—*'सुत बित दार भवन ममता निसि सोवत अति न कबहुँ मति जागी।'* (वि० १४०) *'मोह निसा सब सोवनिहारा.....।'* (अ० ९३) इन सबको नाशवान् और बाधक जानकर इनकी मोह-ममता छूटना, विषयसे वैराग्य होना 'जागना' है। यथा—*'अहंकार ममता मद त्यागू।', 'मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सूतत जागू॥'* (लंका० ५५), *'जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।'* (अ० ९३), *'जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी।'* (वि०), *'बिषया परनारि निसा तरुनाइ, सुपाइ परेउ अनुरागहि रे। जम के पहरू दुखरोग बियोग बिलोकतहू न बिरागहि रे॥ ममता बस तैं सब भूलि गयउ, भयो भोर महाभय भागहिं रे। जरठाइ दिसा रविकाल उयउ अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥'* (क० उ० ३१)

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'जागना' योगसिद्धिको भी कहते हैं। यथा *'गोरख जगायो जोग भगति भगायो.....'* (क० ६। ८४) इस तरहसे यह भाव निकलता है कि नामके जपसे योगी जागते हैं, उनका विरागयोग जागता है अर्थात् सिद्ध होता है—*'राग रामनाम सों बिराग जोग जागि है।'*

नोट—४ जागना कहकर *'बिरति'* होना और *'बिधि प्रपंच'* से वियोगी होना कहा। क्योंकि ये क्रमशः जागनेके चिह्न हैं। जबतक चित्तमें प्रपंच रहता है तबतक ब्रह्मसुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये प्रपंचसे वियोग होना कहकर ब्रह्मसुखका अनुभव करना कहा।

नोट—५ *बिरंचि प्रपंच*=ब्रह्माके भवजालसे। *प्रपंच*=सृष्टि; सृष्टिके व्यवहार, जंजाल, सांसारिक सुख और व्यवहारोंका फैलाव। यथा—*'जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥ जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति कर्म अरु कालू॥ धरनि धामु धनु पुर परिवारू। देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं'* (अ० ९२) *'बियोगी'* अर्थात् 'प्रपंचमें अभाव हो जाता है, उससे मन हट जाता है।=उदासीन। ऐसा ही टीकाकारोंने लिखा है।'

नोट—२२ (१) के जोड़की चौपाई यह है **'एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी।'** (२। ९३)

नोट—६ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि *'अनूपा, अकथ* इत्यादि ब्रह्मके विशेषण हैं। उपमा देकर उसे दिखाना चाहे तो नहीं हो सकता। पुनः उसे कहकर भी नहीं दिखा सकते। क्योंकि *'मन समेत जेहिं जान न बानी।'* तो उसका वर्णन कैसे हो सके ? *'अनामय'* पद देकर सूचित किया कि प्रपंचके द्वारा

भी दिखाना असम्भव है। जो कहो कि नामरूपद्वारा तो दिखा सकोगे तो उसपर कहते हैं कि वह (मायिक) नामरूपरहित है। ऐसे ब्रह्मसुखको नाम प्राप्त करा देता है।'

नोट—७ ***'अकथ अनामय नाम न रूपा'*** इति। श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'ब्रह्मसुख नाम है ही, तब 'अनाम' कैसे हुआ ? 'अनाम' कहनेमें अभिप्राय यह है कि ब्रह्मसुख तो यौगिक नाम अथवा लाक्षणिक है, रूढ़ि नहीं है। जैसे दाशरथी, रघुनन्दन आदि यौगिक हैं। रघुसिंह, काकपक्षधर लाक्षणिक हैं। ऐसा ही ***'ब्रह्मसुख'*** को जानिये। ब्रह्मका जो सुख वह ब्रह्मसुख। 'ब्रह्म ऐसा पद छोड़के अनाम हैं, सुखेति वस्तुतः नामशून्य, कौन वस्तुका नाम है सुख? अतएव अनाम है। अरूप कैसे है? जैसे देही-देह है। जब देही देहाश्रित है तब देहवत् है और जब देही देहभिन्न है, तब अरूप है। इसी प्रकार जब ब्रह्मसुख ब्रह्माश्रित है तब रूपवान् है और जब ब्रह्मसे भिन्न देखना चाहें तो रंचक भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतएव अरूप है।'

जाना[१] चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं[२] तेऊ॥ ३॥

अर्थ—जो गूढ़ गतिको जानना चाहते हैं, वे भी नामको जिह्वासे जपकर जान लेते हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) ***'जेऊ'*** और ***'तेऊ'*** से तात्पर्य उन मनुष्योंसे है जो योगी नहीं हैं और ब्रह्मसुखको जानना चाहते हैं। (ख) 'गूढ़ गतियाँ' अनेक हैं। आत्मा-परमात्माकी गति; कालकर्मकी गति; ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी गति; तत्त्व, माया और गुणकी गति; इत्यादि। [विज्ञानी अखण्ड ज्ञान कैसे प्राप्त करके उसमें मग्न रहता है? वह सुख कैसा है? श्रीपार्वतीजीने यह कहकर कि ***'गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं'*** (१। ११०) फिर प्रश्न किया है कि ***'पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनि ज्ञानी॥'*** (१। १११) अथवा, प्रभुके गुप्त रहस्य; जीव और परमात्माके बीचमें जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, बुद्धि, अहंकार और माया ये आठ आवरण हैं उनका जानना, इत्यादि 'गूढ़ गति' में आ जाते हैं।] इसीसे 'गूढ़ गति' का कोई विशेष नाम नहीं दिया। अथवा, 'गूढ़ गति' से 'ब्रह्मसुखका अनुभव' ही सूचित किया। (ग) क्रियाका सम्बन्ध वस्तुके साथ होता है, नामके जपसे हृदयमें प्रकाश होता है। इसीसे गूढ़ गति जानते हैं। (घ) ये जिज्ञासु भक्त हैं। जिज्ञासु ब्रह्मकी जिज्ञासा करता है, इसीसे योगीके पीछे जिज्ञासुका उदाहरण दिया। श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि पहले ज्ञानीको कहकर अब जिज्ञासुको कहते हैं। इसको न परोक्ष ज्ञान है और न अपरोक्ष। इसको दोनोंकी चाह है। ज्ञानीको अपरोक्ष ज्ञानकी चाह थी, परोक्ष ज्ञान उसे था ही। (मानसमणि)

साधक नाम जपहिं लय[३] लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥ ४॥

शब्दार्थ—**लय**=तदाकार वृत्ति। चित्तकी वृत्तियोंका एक ही ओर प्रवृत्त होना। **अनिमादिक**=अणिमा आदि सिद्धियाँ। अणिमाको आदिमें देकर यहाँ प्रधान आठ या अठारह सिद्धियाँ सूचित कीं। भा० ११। १५ में भगवान्ने उद्धवजीसे कहा है कि आठ सिद्धियाँ प्रधान हैं, जो मुझे प्राप्त होनेपर योगीको मिल जाती हैं। ये मेरी स्वाभाविक सिद्धियाँ हैं। मं० सोरठा १ ***'जो सुमिरत सिधि होइ'*** में देखिये।

अर्थ—साधक लौ लगाकर नामको जपते हैं और अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त करके सिद्ध हो जाते हैं॥ ४॥

१—जानी—१७२१, १७६२, छ०, १७०४। जाना—१६६१ ('जानी' को हरताल देकर 'जाना' शुद्ध किया है)। को० रा०।

२—जानहु (शं० ना० चौ०)—१७०४। (परन्तु रा० प० में 'जानहिं' है।) १६६१ में 'जानहु' था, हरताल देकर शुद्ध किया गया है।

३—लौ—१७२१, १७६२, छ०। लउ-को० रा०। लय-१६६१, १७०४।

नोट—१ 'साधक' शब्द स्वभावतः पारमार्थिक साधन करनेवालेमें रूढ़ है। वह साधक यहाँ अभिप्रेत नहीं है। उसकी निवृत्तिके लिये यहाँ 'अनिमादिक' शब्द दिया है। 'अनिमादिक' शब्द देकर उसका अर्थार्थित्व सूचित किया है। 'साधक' शब्द देनेका तात्पर्य यह है कि अनिमादिक सिद्धियाँ (जो परम्परासे अर्थप्रद होती हैं) प्राप्त करनेके लिये जप आदि साधन करना पड़ता है। गीतामें जो 'अर्थार्थी' शब्द आया है उसका अर्थ गोस्वामीजीने 'साधक' शब्द देकर खोल दिया है कि संसारी जीवोंसे खुशामदादि करके अर्थप्राप्ति चाहनेवाला यहाँ अभिप्रेत नहीं है, किन्तु जो भगवदाराधनद्वारा ही अर्थकी प्राप्ति चाहता है उसीसे यहाँ तात्पर्य है।

नोट—२ (क) ***'लय लाएँ'*** इति। अर्थात् उसीमें लगन, गूढ़ अनुराग, लगाये हुए, एकाग्रमनसे। ब्रह्माण्ड-पुराणमें 'लय' के सम्बन्धमें यह श्लोक मिलता है—'**पाठकोटिसमा पूजा पूजाकोटिसमो जपः। जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः॥**' (अज्ञात) पूजा करोड़ों पाठके समान है, जप करोड़ों पूजाके समान है, ध्यान करोड़ों जपके समान है और लय करोड़ों ध्यानके समान है। [पं० रामकुमारजीके संस्कृत खर्रेमें यह श्लोक है; पर मेरी समझमें यहाँ 'लय' का अर्थ 'लगन' है। यथा—***'मन ते सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥'*** (७। ११०)] (ख) ***'लय लाएँ'*** अर्थात् अपनी कामना या सिद्धियोंमें मनको लगाये हुए। (श्रीव्यासजी, श्रीरूपकलाजी) श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि जहाँ भी कामना है वहाँ विधि है। विधिका ठीक पालन होनेपर ही कामनाकी सफलता निर्भर है। यह स्मरण रहे कि कामनाओंके विनाशकी कामना, ब्रह्मात्मैक्यकी इच्छा, स्वरूपके प्रति जिज्ञासा, भगवत्साक्षात्कारकी कामनाको कामना नहीं माना जाता। अतएव योगी तथा जिज्ञासु ये दो निष्काम भक्त हैं। उनके लिये किसी विधिका बन्धन नहीं। उन्हें ***'जीह जपि'*** केवल नामका चाहे जिस अवस्थामें चाहे जैसे जप करनेको कहा गया पर साधकको तो सिद्धि चाहिये। अतएव उसे विधिका पालन करना पड़ेगा। उसके लिये कहा है कि ***'लय लाये'*** जप करना चाहिये। नामजपमें उसका मन लगा होना चाहिये और जिस सिद्धिकी कामना हो भगवान्‌के वैसे रूपमें चित्त स्थिर होना चाहिये। भा० ११। १५ में विविध सिद्धियोंके लिये ध्यान बताये गये हैं। अतः यहाँ ***'लय लाये'*** कहा। (ग) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि ये अर्थार्थी भक्त हैं। इनका मन धनकी प्राप्तिमें अत्यन्त लगता है। ये भक्त अणिमादिक सिद्धियोंको पाकर अर्थको सिद्ध होते हैं। पुनः, (घ) किसी-किसीका यह मत है कि यद्यपि मन सिद्धियोंमें लगा है तो भी उनकी प्राप्तिके लिये एक लयसे नाम जपते हैं। (ङ) ***'होहिं सिद्ध'।*** यथा—***'सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥'*** (बा० १११)

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होंहिं सुखारी॥ ५॥

अर्थ—बड़े ही आर्त (पीड़ित, दुःखित) प्राणी (भी) नाम जपते हैं तो उनके बड़े बुरे संकट (दुःख, आपत्ति) मिट जाते हैं और वे सुखी होते हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ ***'आरत भारी'*** इति। (क) भाव यह कि बड़े-बड़े कठिन दुःख दूर हो जाते हैं, छोटे-मोटेकी बात ही क्या? 'आर्तजनके कुसंकट ही नहीं मिटते, किन्तु वे सुखी भी होते हैं। क्योंकि प्रभु संकट मिटाकर दर्शन भी देते हैं। जैसे गजेन्द्र, प्रह्लाद, द्रौपदी आदिके संकट मिटाये और दर्शन दिये। (ख) मिलता हुआ श्लोक यह है—'**आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः। संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं ते मुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति॥**'(पाण्डवगीता) अर्थात् आर्त, दीन, ग्लानियुक्त, घोर व्याधियोंमें वर्तमान ऐसे लोग भी भगवन्नाम जपकर दुःखसे मुक्त और सुखी हो जाते हैं। (ग) '**भारी**' पद देकर सूचित किया है कि साधारण दुःखमें तो भक्त प्रभुको संकोचमें नहीं ही डालते, जब ऐसा कोई भारी ही कष्ट आ पड़ता है कि जो प्रभु ही निवारण कर सकते हैं, अन्यथा दूर नहीं हो सकता, तभी प्रभुसे कष्ट दूर करनेके लिये कहते हैं।' इसके उदाहरणमें श्रीद्रौपदीजीहीको लीजिये। जब आप राजसभामें लायी जाने लगीं तब प्रथम तो आपने साड़ी कसकर बाँध ली थीं, पुनः, दरबारमें

भीष्मपितामहजी, द्रोणाचार्यजी, आदि गुरुजनोंका भरोसा था। पुनः पाँचों विख्यात वीर पाण्डव पतियोंका भरोसा जीमें रहा। जब इन सब उपायोंसे निराश हुईं तभी उन्होंने भगवान्‌को कष्टनिवारणार्थ स्मरण किया। ऐसा ही गजेन्द्रका हाल है। इत्यादि।

टिप्पणी २ (क) इन पाँच चौपाइयोंमें यह दिखाया है कि योगी (ज्ञानी), जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त्त इन चारोंको अपनी मनोकामनाकी सिद्धिके लिये नामका जप आवश्यक है। इसीसे सब प्राप्त हो जाते हैं। (ख) अर्थार्थीके पीछे आर्त भक्तोंको कहा। क्योंकि द्रव्यके पीछे दुःख होता है।

नोट—१ *'जीह जपि'* और *'जपहिं* इन शब्दोंका प्रयोग इन चौपाइयोंमें किया गया है। हिन्दी-शब्दसागरमें 'जप' शब्दकी व्याख्या यों की गयी है—(१) किसी मन्त्र वा वाक्यका बारम्बार धीरे-धीरे पाठ करना। (२) पूजा वा सन्ध्या आदिमें मन्त्रका संख्यापूर्वक पाठ करना। पुराणोंमें जप तीन प्रकारका माना गया है। मानस, उपांशु और वाचिक। कोई-कोई उपांशु और मानस जपके बीच जिह्वा-जप नामका एक चौथा जप भी मानते हैं। ऐसे लोगोंका कथन है कि वाचिक जपसे दसगुना फल उपांशुमें, शतगुना फल जिह्वा-जपमें और सहस्रगुना फल मानसजपमें होता है। मन-ही-मन मन्त्रका अर्थ मनन करके उसे धीरे-धीरे इस प्रकार उच्चारण करना कि जिह्वा और ओंठमें गति न हो, 'मानसजप' कहलाता है। जिह्वा और ओंठको हिलाकर मन्त्रोंके अर्थका विचार करते हुऐ इस प्रकार उच्चारण करना कि कुछ सुनायी पड़े 'उपांशु जप' कहलाता है। जिह्वा-जप भी उपांशुहीके अन्तर्गत माना जाता है, भेद केवल इतना ही है कि 'जिह्वा-जपमें जिह्वा हिलती है पर ओष्ठोंमें गति नहीं होती और न उच्चारण ही सुनायी पड़ सकता है। वर्णोंका स्पष्ट उच्चारण करना 'वाचिक जप' कहलाता है। जप करनेमें मन्त्रकी संख्याका ध्यान रखना पड़ता है, इसलिये जपमें मालाकी भी आवश्यकता होती है।' श्रीमद्‌गोस्वामीजीने 'नामजप' के प्रसंगमें 'जपना, रटना, रमना, सुमिरना, कहना, घोखना, जतन करना इन शब्दोंका प्रायः प्रयोग किया है। 'जप' शब्द बहुत जगह साधारण ही बारम्बार कहनेके अर्थमें कहा है और इस शब्दके साथ ही 'रसना' 'जीह' वा अन्य पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग भी जहाँ-तहाँ किया है जिससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वे 'जप' शब्द प्रायः जिह्वासे बारम्बार उच्चारणहीके लिये लिखते हैं। और कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल मन लगाकर स्मरण वा 'जिह्वा-जप' करनेके अर्थमें भी लाये हैं। श्रीगोस्वामीजीने साधनावस्थामें उच्च-स्वरसे ही उच्चारणको विशेष माना है। कारण यह कि इससे सुननेवालेका भी उपकार होता है।

नोट—२ यहाँ कुछ लोग शंका करते हैं कि गोस्वामीजीने तो मनके कर्मको स्थान-स्थानपर प्रधान कहा है, यथा—*'तुलसी मन से जो बनै बनी बनाई राम'* (दोहावली), *'मन रामनाम सों सुभाय अनुरागिहै'* (वि० ७०) इत्यादि। फिर यहाँ जिह्वासे जपना क्यों लिखा? इसका कारण महारामायणसे स्पष्ट हो जाता है। वह यह है कि अन्तःकरणसे जपनेसे जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होती है और जीभसे जपनेसे भक्ति मिलती है जिससे प्रभु शीघ्र 'द्रवते' हैं। पुनः, जापकको दूसरेकी सहायताकी जरूरत नहीं पड़ती। यथा—'**अन्तर्जपन्ति ये नाम जीवन्मुक्ता भवन्ति ते। तेषां न जायते भक्तिर्न च रामसमीपकाः॥ जिह्वयाऽप्यन्तरेणैव रामनाम जपन्ति ये। तेषां चैव परा भक्तिर्नित्यं रामसमीपकाः॥', 'योगिनो ज्ञानिनो भक्ताः सुकर्मनिरताश्च ये। रामनाम्नि रताः सर्वे रमुक्रीडात्तु एव वै॥**' (महारामायण ५२। ७१। ७३) अर्थात् वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा किसी वाणीका अवलम्बन लेकर अन्तर्निष्ठ होकर जो नाम जपते हैं वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं, किन्तु उनको श्रीरामसामीप्यकारिणी परा भक्ति नहीं मिलती है॥ ७१॥ जो अन्तःकरणके अनुरागसहित जिह्वासे नाम जपते हैं उनको नित्य ही भगवत्-सान्निध्यकारिणी प्रेमपराभक्ति प्राप्त होती है॥ ७२॥ योगी, ज्ञानी, भक्त तथा कर्मकाण्डी ये चारों श्रीरामनाममें रत रहते हैं। अतएव रामनामसे निष्पन्न रमु क्रीडा कहा जाता है। पुनः यहाँतक जो साधन बताया गया वह उनके लिये है जिन्हें कुछ भी कामना है। कामनाओंके रहते मनसे जप हो नहीं सकता, क्योंकि मन बराबर चंचल रहेगा। जब समस्त कामनाहीन हो जाय तभी मानसिक जप स्वाभाविक

हो सकेगा। उस अवस्थाके प्रेमी जापकोंकी चर्चा आगे दोहेमें ग्रन्थकारने की है। साधनावस्थावालोंके लिये जिह्वासे ही जप करना बताया है। इसीसे धीरे-धीरे वह अवस्था प्राप्त होनेपर तब मनसे जप होगा।

राम-भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥ ६॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पियारा॥ ७॥

शब्दार्थ—**सुकृती**=पुण्यात्मा, भाग्यवान्, धन्य। यथा—'**सुकृति पुण्यवान् धन्य इति**' (अमरकोश ३। १। ३) **अनघ**=पापरहित। **उदार**=श्रेष्ठ। **अधारा**=आधार, सहारा, अवलम्ब।

अर्थ—जगत्में श्रीरामभक्त चार प्रकारके हैं। चारों पुण्यात्मा, निष्पाप और उदार होते हैं॥ ६॥ चारों चतुर भक्तोंको नामहीका अवलम्ब है। इनमेंसे ज्ञानी भक्त प्रभुको अधिक प्रिय हैं॥ ७॥

टिप्पणी—१ (क) श्रीमद्भगवद्गीतामें चार प्रकारके भक्त कहे गये हैं। उसीका अनुसरण करते हुए गोस्वामीजीने भी चार प्रकारके भक्तोंका होना कहा। (ख) यहाँ चार प्रकारके भक्त कहे और चार ही विशेषण दिये। सुकृती, अनघ, उदार और चतुर ये चारों विशेषण प्रत्येक भक्तके हैं। क्योंकि चारोंको और किसी साधन वा देवादिका भरोसा नहीं है। अर्थकी कामना होगी तो भी अपने ही प्रभुसे माँगेंगे; संकटमें भी अपने ही प्रभुका स्मरण करेंगे, क्योंकि ऐसा न करें तो फिर विश्वास ही कहाँ, यथा—***'मोर दास कहाइ़ नर आसा। करइ़ त कहहु कहाँ बिस्वासा॥'*** (७। ४६)

नोट—१ चारों विशेषण प्रत्येक भक्तके हैं। इस प्रकार कि—(१) जो सब आशा-भरोसा छोड़कर श्रीरामजीके हो रहे वे ही सुकृती हैं, यथा—***'सो सुकृती सुचिवंत सुसंत सुजान सुसील सिरोमनि स्वै।.... सति भायँ सदा छल छाँड़ि सबै तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै।'*** (क० उ० ३४) ***'सकल सुकृतफल राम सनेहू।'*** (१। २७) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'सुकृती' भगवान्को प्राप्त होते हैं। जो दुष्कृती हैं वे प्रभुका भजन नहीं करते और न प्रभुको प्राप्त होते हैं। यथा—'**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।**' (गीता ७। १५) (२) जो भजन करते हैं वे अनघ हैं, क्योंकि जो प्रभुके सम्मुख हो उनका नाम जपने लगे उसमें पाप रह ही नहीं सकता। जिनको भजन भाता ही नहीं, जो भजन नहीं करते और श्रीरामविमुख हैं वे ही 'अघी' हैं, उन्हींके लिये कहा है कि ***'पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥'*** (५। ४४) पुनः स्मरण रहे कि पुण्यसे पाप कटते हैं पर यह नियम नहीं है कि प्रत्येक पुण्यसे प्रत्येक पाप कटे। जो जिसका बाधक होता है उसीको वह काटता है। इस नियमानुसार सुकृती भी पापयुक्त हो सकते हैं, इसीके निराकरणार्थ ***'सुकृती'*** कहकर ***'अनघ'*** कहा। तात्पर्य कि यह पुण्यवान् भी हैं और पापरहित भी। (३) जो उदारका साथ करता है वह भी उदार ही हो जाता है। ये भक्त श्रीरामनामको धारण किये हैं जो उदार हैं, यथा—***'एहि महुँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन.....।'*** (१। १०) इसलिये भी उदार हुए। आप पवित्र हुए और दूसरोंको नाम-भजनका उपदेश दे पवित्र करते हैं, यह उदारता है। पुनः 'उदार' शब्दका एक अर्थ है 'महान्'; यथा—'**उदारो दातृमहतोः**' इति (अमरकोश ३। २। ९१)। '**महतो महीयान्**' ऐसे परमात्माका आश्रय करनेवाला भी तो महान् होना चाहिये। इस भावमें तात्पर्य यह है कि तुच्छ वस्तुओंके लिये भगवान्का आश्रय करनेसे कोई-कोई इनको तुच्छ या छोटा कह सकते हैं, अतः कहते हैं कि ये छोटे नहीं हैं बड़े हैं। यद्यपि ज्ञानी और जिज्ञासुकी अपेक्षा ये छोटे हो सकते हैं तथापि अन्य लोगोंकी अपेक्षा बड़े ही हैं; जैसे राजा-महाराजाका टहलुआ हम सब साधारण लोगोंके लिये बड़ा है। पुनः, उदार वह है जो अपना कुछ त्याग करे। इन भक्तोंने अपना क्या छोड़ा है? जीवके पास सबसे बड़ा उसका अपनापन है उसका अहंकार, उसका अपनी शक्तिका भरोसा। नामका आश्रय लेनेवाला अपनी शक्तिके अहंकारको छोड़कर भगवान्के द्वारा अपना लौकिक या पारलौकिक उद्देश्य पूर्ण करनेमें लगा है। उसने अपने अहंकारको शिथिल करनेकी महती उदारता दिखलायी है, अतः वह उदार कहा गया। (श्रीचक्रजी)

पुनः, 'उदार' का एक अर्थ 'सरल' भी है, यथा—'**दक्षिणे सरलोदारौ।**' इति (अमरकोश ३। १। ८) इस अर्थके अनुसार चारों रामभक्तोंको 'सरल' अर्थात् सीधा-सादा जनाया। यह गुण भक्तों-संतोंमें श्रीरामजीने आवश्यक बताया है, यथा—'***सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती।***' (३। ४६। २) '***सीतलता सरलता मयत्री। द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री॥***' (७। ३८। ६) '***सरल सुभाव न मन कुटिलाई। यथालाभ संतोष सदाई॥***' (७। ४६। २)'***नवम सरल सब सन छलहीना।***' (३। ३६। ५) इत्यादि। (४) जो श्रीरामजीका भजन करते हैं, वे ही चतुर हैं। यथा—'***परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर।***' (आ० ६) अतएव इन सबको चतुर कहा। यहाँ और गीतामें आर्त्त और अर्थार्थीको भी, सुकृती, उदार और अनघ कहनेसे भगवान्‌की उदारता, दयालुता आदि देख पड़ती है कि किसी प्रकारसे भी जो उनके सम्मुख होता है, स्वार्थके लिये ही क्यों न हो तो भी वे उसको सुकृती आदि मान लेते हैं। यथा—'**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥**' (गीता ९। ३०) आर्त्त आदि सकाम भक्तोंको भी सुकृती, अनघ आदि कहनेका यह भी भाव हो सकता है कि कदाचित् कोई कहे कि साधारण कामनाओंके लिये उस '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ**' को कष्ट देना यह उचित नहीं जँचता तो उसके निराकरणार्थ उनको '***सुकृती***' कहा। पुनः, यदि कोई कहे कि 'पापीने यदि किसी कामनासे नाम जपा तो उसका फल 'कामनाकी पूर्ति' उसको मिल गया, तब पाप तो उसका बना ही रहा। तब अनघ कैसे कहा?' तो इसका समाधान यह है कि जैसे कोई किसी कार्यके निमित्त अग्नि जलावे, तो उससे वह कार्य (रसोई आदि) तो होता ही है पर साथ-ही-साथ शीतका भी निवारण हो जाता है, उसी प्रकार श्रीरामनामके जपसे कामनाकी सिद्धिके साथ-साथ जापकके पाप भी नष्ट हो जाते हैं। अतः वह अनघ कहा गया।

टिप्पणी २—ज्ञानीको विशेष प्रिय कहा। कारण कि ये एकरस रहते हैं और भक्त प्रयोजनमात्रके लिये बड़ी प्रीति करते हैं। प्रयोजन सिद्ध होनेपर वैसी प्रीति फिर बनी नहीं रहती। ज्ञानी परमार्थमें स्थित हैं। अन्य तीन भक्त स्वार्थसहित भजन करते हैं। स्वार्थसे परमार्थ विशेष है ही। इसीलिये ज्ञानीको श्रेष्ठ कहा। ''विशेष'' कहकर जनाया कि अन्य भी प्रिय हैं पर ये उनसे अधिक प्रिय हैं।

नोट—२ मिलते हुए श्लोक ये हैं—'**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥**'(गीता ७। १५-१८) अर्थात् मायाद्वारा हरे हुए ज्ञानवाले और आसुरी स्वभावको प्राप्त मनुष्योंमें नीच और दूषित कर्मवाले मूढ़ मुझे नहीं भजते हैं ॥ १५॥ चार प्रकारके सुकृती पुरुष मुझे भजते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी॥ १६॥ इनमेंसे मुझमें नित्य लगा हुआ और मुझमें ही अनन्य प्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त विशेष उत्तम है; क्योंकि मुझे तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अति प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझको अत्यन्त प्रिय है॥ १७॥ यद्यपि ये सभी उदार हैं तथापि ज्ञानी तो मेरी आत्मा (स्वरूप) ही है। ऐसा मेरा मत है क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझ सर्वोत्तम प्राप्य वस्तुमें ही भली प्रकार स्थित है॥ १८॥ गीताके उपर्युक्त अठारहवें श्लोकमें ज्ञानीको भगवान्‌ने अपनी आत्मा कहा है और गोस्वामीजीने 'आत्मा' के बदले 'विशेष प्रिय' कहा है, इस तरह उन्होंने 'आत्मा' का भाव स्पष्ट कर दिया कि ज्ञानी भक्त भगवान्‌को वैसा ही विशेष प्रिय है जैसे मनुष्योंको आत्मा प्रिय है। पुनः 'आत्मा' शब्द यहाँ न देकर उन्होंने अपना सिद्धान्त भी बता दिया है। 'आत्मा' शब्दसे अद्वैतमतका प्रतिपादन किया जा सकता है पर '***बिसेषि पियारा***' शब्दसे अद्वैतमत नहीं रह जाता।

नोट—३ यहाँ गोस्वामीजीने चार प्रकारके भक्तोंमेंसे एककी ज्ञानी संज्ञा दी है। इससे यह स्वयं सिद्ध है कि जो रूखे ज्ञानी हैं और रामभक्त नहीं हैं उनका यहाँ कथन नहीं है। भक्तिहीन ज्ञानी अन्य सब साधारण

प्राणियोंके समान प्रभुको प्रिय हैं, भक्त सबसे अधिक प्रिय हैं। यथा—*'भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई॥ भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥'* (उ०८६)

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥ ८॥

अर्थ—चारों युगों और चारों वेदोंमें 'नाम' का प्रभाव (प्रसिद्ध) है और खासकर कलियुगमें तो दूसरा उपाय है ही नहीं॥ ८॥

नोट—१*'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ'* इति। (क) सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तीन युगोंके प्रमाण क्रमसे ये हैं—*'नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।'* (१। २६) *'ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥'*(१। २६) *'जो सुनि सुमिरि भाग भाजन भइ सुकृतसील भील भामो।'*(विनय० २२८), *'आभीर जमन किरात खस श्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते॥'* (७। १३०) *'श्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात। राम कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥'* (२। १९४) कलियुगके उदाहरण तो भक्तमालमें भरे पड़े हैं। गोस्वामीजी और चाण्डालकी कथा प्रसिद्ध ही है। (ख) *'चहुँ श्रुति'* इति। श्रुतियोंमें नामके प्रभावके प्रमाण ये हैं—(१) **'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरिनाममनामहे। विप्रासो जातवेदसः।'** (ऋग्वेद ५।८।३५), (२) **'स होवाच बालाकिर्य एवैषोऽप्सु पुरुषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मामैतस्मिन्समवादयिष्ठा नाम्न्यस्यात्मेति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपासते नाम्न्यस्यात्मा भवतीत्यधिदैवतमयाध्यात्मम्।'** (ऋग्वेदान्तर्गत कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् ४।९) (३) **'न तस्य प्रतिमाअस्ति यस्य नाम महद्यशः।'** (यजुर्वेद अ० ३२ मं० ३), (४) **'स होवाच श्रीरामः कैवल्यमुक्तिरेकैवपारमार्थिकरूपिणी। दुराचाररतो वापि मन्नाम भजनात्कपे॥ १८॥ सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्।'** (यजुर्वेदान्तर्गत मुक्तिकोपनिषद् अ० १) (५) **'किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्रयद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि। मावर्पा अस्मदपगूह एवद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ॥'** (सामवेद अ० १७ खण्ड १) (६) **'सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छुत ँह्येव मे भगवद् दृशेभ्यस्तरति शोकमात्म विदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति त ँहोवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत्॥ ३॥ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः आथर्वणश्चतुर्थ इतिहास पुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्वेति॥ ४॥ स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥ ५॥'** (छान्दोग्योपनिषद् अ० ७ खण्ड १) (७) **'नाम नाम्नो जोहवीति पुरा सूर्यात्पुरोषसः। यदजः प्रथमं सम्बभूव सहतत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्॥ ३१॥'** (अथर्ववेदसंहिता काण्ड १० सूक्त ७) (८) *श्रीराम उवाच*—**'अथ पंच दण्डकानि पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्मघ्नो गुरुहननः कोटियतिघ्नोऽनेककृतपापो यो मम षण्णवतिकोटिनामानि जपति स तेभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यते। स्वयमेव सच्चिदानन्दस्वरूपो भवेन्न किम्।'** (अथर्ववेदान्तर्गत श्रीरामरहस्योपनिषद् अ० १) श्रीसीतारामनामप्रतापप्रकाशमें कुछ प्रमाण ये आये हैं—(९) अथर्वणोपनिषद् यथा—**'जपात्तेनैव देवतादर्शनं करोति कलौ नान्येषां भवति॥ यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं वदेत्तेन सह संवसेत्तेन सह सम्भुंजीयात्॥'** (१०) ऋग्वेदे यथा—**'ॐ परब्रह्म ज्योतिर्मयं नाम उपास्यं मुमुक्षुभिः।'** (११) यजुर्वेदे यथा—**'रामनामजपादेव मुक्तिर्भवति।'** (१२) सामवेदे यथा—**'ओमित्येकाक्षरं यस्मिन्प्रतिष्ठितं तन्नामध्येयं संसृतिपारमिच्छोः।'**

नोट—२*'कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ'* इति। यथा—**'कलौ केवलं राजते रामनाम,' 'हरेर्नामैव नामैव मम नामैव जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥'** (पाण्डवगीता ५३); *'सोइ भवतरु कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माँही॥'* (७। १०३; १। २७, ७) भी देखिये।

यदि *'कलि बिसेषि'* का अर्थ यह लें कि 'कलिमें नामका विशेष प्रभाव है' तो भाव यह होगा कि इस युगमें ध्यान, यज्ञ और पूजा है ही नहीं, कारण कि मन स्थिर नहीं रहता, वासनाओंसे सदा चंचल रहता है, बनियों-व्यापारियोंके पाप और अधर्मकी कमाईसे यज्ञ होते हैं, वनस्पति और चर्बी गोघृतकी

जगह होममें पड़ते हैं, पूजनके लिये चमड़े और रक्तसे भीगी हुई केसर मिलती है, शक्कर, घृत आदि सभी अपवित्र मिलते हैं। नाम छोड़ दूसरा उपाय है ही नहीं, मन लगे या न लगे, जीभपर नाम चलता रहे, बस इसीसे सब कुछ हो जायगा। यह विशेषता है। उत्तरकाण्डमें जो कहा है कि ***'कृत जुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥'*** (७। १०२)। ***कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।'*** वही भाव यहाँ ***'कलि बिसेषि'*** का है। अर्थात् और युगोंमें अन्य साधनोंके साथ नाम-जपसे जो फल होता था वह इस युगमें केवल नाम-जपसे ही प्राप्त हो जाता है, यह विशेषता है। **'नहिं आन उपाऊ'** का भाव यह है कि इस युगकी परिस्थिति जैसी है उसमें अन्य साधन हो नहीं सकते।

दो०—सकल कामना-हीन, जे राम-भगति-रस लीन।
नाम-सुप्रेम[1] पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥ २२॥

शब्दार्थ—**लीन**=तन्मय, मग्न, डूबा हुआ, अनुरक्त। **'सुप्रेम'**=सुष्ठु, सुन्दर प्रेम। **'पियूष'** (पीयूष)=अमृत। **'ह्रद'**=कुण्ड।=अगाध जल, यथा—**'तत्रागाधजलोह्रदः'** (अमरकोश १। १०। २५)।

अर्थ—जो सब कामनाओंसे रहित हैं, श्रीरामभक्तिरसमें लीन हैं वे भी नामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृतके अगाध कुण्डमें अपने मनको मछली बनाये हुए हैं॥ २२॥

नोट—१ ***'कामना हीन'*** कहकर सूचित किया कि ऊपर कहे हुए चारों प्रकारके भक्त कामना-युक्त हैं। यह भक्त सकल-कामना-हीन है, इसे कुछ भी चाह नहीं, यह सहज ही स्नेही है।

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता (७। १६) में जो यह श्लोक है—**'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥'** इसमें चार भक्त स्पष्ट कहे हैं। श्रीमधुसूदनस्वामीजीके भाष्यके अनुसार इसमें **'च'** अक्षर जो अन्तमें दिया है वह पाँचवें भक्तका बोधक है। जैसे मधुसूदनीटीकाके अनुसार श्रीगीताजीमें चार भक्त स्पष्ट कहे गये और एक गुप्त रीतिसे, वैसे ही पूज्यपाद गोस्वामीजीने चारको स्पष्ट कहा और एकको गुप्त रीतिसे, इससे हमारे पूज्य कविकी चतुरता झलक रही है।

मधुसूदनीटीका देखनेपर मालूम हुआ कि **'च'** शब्दसे उन सबोंका भी ग्रहण 'ज्ञानी'—शब्दमें कर लिया गया जो इन चारोंमें न होनेपर भी भगवान्के निष्काम भक्त हैं; जैसे कि श्रीशबरीजी, गृध्रराज श्रीजटायु, श्रीनिषादराज और गोपिकाएँ आदि। इस तरहसे ***'सकल कामना हीन जे—'*** ये **'च'** से ज्ञानियोंमें ही गिने जायँगे। यथा—**'तदेते त्रयः सकामा व्याख्याताः। निष्कामश्चतुर्थ इदानीमुच्यते। ज्ञानी च। ज्ञानं भगवत्तत्त्वसाक्षात्कारस्तेन नित्ययुक्तो ज्ञानी। तीर्णमायो निवृत्तसर्वकामः। चकारो यस्य कस्यापि निष्काम प्रेमभक्तस्य ज्ञानिन्यन्तर्भावार्थः॥'** अर्थात् प्रथम तीन सकाम कहे गये, अब निष्काम कहा जाता है। भगवत्तत्त्वसाक्षात्कारको ज्ञान कहते हैं, उस ज्ञानसे जो नित्ययुक्त है वही ज्ञानी है। वह मायासे उत्तीर्ण हो चुका है और उसकी सब कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं। यहाँपर **'ज्ञानी च'** में जो **च** शब्द है वह जिस किसी निष्काम प्रेमी भक्तका ज्ञानियोंमें अन्तर्भाव करनेके लिये है। इस प्रकार भक्तोंकी संख्या गीताके भगवद्वाक्यानुसार चार-की-चार ही रह जाती है और ***'राम भगत जग चारि प्रकारा'*** तथा **'चतुर्विधा भजन्ते माम्'** से संगति भी हो जाती है। करुणासिन्धुजीका भी यही मत है कि इस दोहेमें भी 'ज्ञानी भक्त' का वर्णन है।

नोट—२ श्रीरामभक्तिकी कामना कामना नहीं मानी जाती। इसके अनुसार ज्ञानी भक्त भी निष्काम भक्त हैं। परन्तु इस दोहेमें उन ज्ञानी भक्तोंको कहा गया है जिनमें पूर्ण परिपक्व भक्ति है, जिन्हें भक्तिकी वृद्धि या परिपक्वताके लिये साधन नहीं करना है। ये तो श्रीरामभक्तिरसमें सदा लीन ही हैं। श्रीसुदर्शनसिंहजी

१-प्रेम पीयूष—१७२१, १७६२, छ०, १७०४। प्रेम पीयूष—को० रा०। सुप्रेम पीयूष—१६६१। (इसमें 'प्रेमपीयूष' था, चिह्न देकर 'सु' बढ़ाया गया है।)

लिखते हैं कि जब मनसे समस्त कामनाएँ दूर हो जाती हैं और वह श्रीरामके प्रेमरसमें डूबता है तो नामके अमृतरसका उसे स्वाद मिलता है। कामना न होनेसे उसे कहीं जाना नहीं है। फलतः वह उस नामके सरोवरमें मीन बनकर निवास करता है। उस समय मनसे स्वतः जप होता रहता है। मानसिक जपकी इस सहजावस्थाका इस दोहेमें निदर्शन किया गया है। इसी सहज जपमें नामकी साधना समाप्त होती है। अतएव नामकी साधनरूपताका वर्णन भी यहीं समाप्त हुआ है।

'नाम जीह जपि जागहिं जोगी।....रस लीन' इति।

पं० श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं कि (१) 'ब्रह्मसुखके ज्ञानमात्रसे आनन्द होता है क्योंकि वह स्थूल वस्तु नहीं है। (२) वह स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहोंसे भिन्न अणु-परिमाण है।...(३) वह प्राकृत विकार क्षीणपीनादि आमयों (रोगों) से रहित है। (४) इस आत्मसुखके समान दूसरा प्राकृत सुख नहीं है।'

यहाँपर (१) और (२) का विषय किसीके मतका अनुवाद या पूर्वपक्षके रूपमें ही कहा गया जान पड़ता है, क्योंकि सुख स्वप्रकाश है। जैसे रातमें पदार्थोंको देखनेके लिये दीपककी आवश्यकता पड़ती है परन्तु दीपकको देखनेके लिये अन्य दीपककी आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही ज्ञान और सुखका अनुभव करनेके लिये अन्य ज्ञानकी आवश्यकता नहीं, वे स्वप्रकाश होनेसे स्वयं अनुभवमें आते हैं। जो ब्रह्मको सुखस्वरूप ही मानते हैं (जैसे कि अद्वैती आदि) उनके मतानुसार ब्रह्म अप्रमेय होनेसे उसको अणु-परिमाण नहीं कहा जा सकता। जो सुखको गुण मानते हैं (जैसे कि नैयायिक आदि) उनके मतसे भी उसको अणु-परिमाण नहीं कह सकते क्योंकि परिमाण गुण है और गुण गुणका आश्रित नहीं होता। जो सुखको द्रव्य मानते हैं, उनके मतसे जीव अणु होनेसे उसके सुखको अणु-परिमाण कह सकते हैं। परन्तु जिस परब्रह्मको आनन्दसिन्धु सुखराशि कहा जाता है उस ब्रह्मसुखको अणु-परिमाण कैसे कहा जायगा? अतः उपर्युक्त कथन (१) और (२) को परमतका अनुवाद या पूर्वपक्ष कहा गया। नम्बर (३) में धर्मी और धर्ममें अभेद मानकर ही प्रयोग किया गया है। अर्थात् क्षीणसे क्षीणत्व तथा पीनसे पीनत्वका ग्रहण करनेसे कोई आपत्ति नहीं आती। नं० (४) में यद्यपि आत्मा शब्दसे प्रायः जीवात्माका ही ग्रहण होता है पर यहाँ आत्मसुखसे परमात्मसुख ही लक्षित है, क्योंकि यहाँ ब्रह्मसुखका ही प्रतिपादन हो रहा है।

पं० श्रीकान्तशरणजीके मतानुसार यहाँ 'योगी' शब्दसे गीतोक्त चार प्रकारके भक्तोंसे अलग 'निर्गुणमतरूपी रुक्ष ज्ञान' वाले तथा 'निष्कामकर्मयोग' वाले अथवा जिज्ञासु अभिप्रेत हैं। उनका मत है कि यहाँ जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त्त भक्तोंका वर्णन करके तब ज्ञानीको अति प्रिय कहा और तत्पश्चात् ***'सकल कामना-हीन जे.....'*** से उस ज्ञानीका वर्णन किया इत्यादि।

परन्तु इसमें यह शंका उठती है कि, 'जो नाम-जपद्वारा वैराग्यपूर्वक ब्रह्मसुखका अनुभव करता है, उसको 'रुक्ष ज्ञानवाले कर्मयोगी' कहना उचित होगा?' तथा, 'इनको यथा—कथंचित् जिज्ञासुका अंग माननेसे जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त्त इन तीनका ही कथन करके ***'राम भगत जग चारि प्रकारा'*** कैसे कह सकेंगे? चौथेका उल्लेख ही नहीं हुआ तब ***'चारि प्रकारा,'*** कहना कैसे संगत होगा?' (क्योंकि 'जगमें चार प्रकारके भक्त हैं ऐसा कहते ही प्रश्न उठता है कि 'चौथा कौन है?' और फिर 'ज्ञानी विशेष प्रिय है' इसको सुनते ही शंका होगी कि यह ज्ञानी कौन है और क्यों प्रिय है?)'

आगे ***'सकल कामना-हीन जे....'*** के ***'जे'*** से 'ज्ञानी भक्तका संकेत' उन्होंने माना है। परन्तु ऐसा मानना कहाँतक ठीक होगा? क्योंकि बीचमें ***'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ....'*** यह चौपाई पड़ी है, तथा ***'सकल कामना-हीन जे....'*** इस दोहेमें 'ज्ञानी' का संकेत करनेवाला कोई शब्द नहीं है। हाँ, निष्काम प्रेमीभक्त आ सकता है।

इसकी अपेक्षा प्रसंगकी संगति इस प्रकार लगाना ठीक होगा कि यहाँ नामका महत्त्व प्रतिपादन कविका मुख्य उद्देश्य है। साथ-ही-साथ सबको नामजपका उत्साह दिलाना है, नाममें प्रवृत्त करना है।

नामस्मरण निष्काम प्रेमीभक्तोंका तो प्राणाधार ही है, सर्वस्व है, जीवन है; परन्तु अर्थार्थी और आर्त्त तथा जिज्ञासु और ज्ञानी, अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गोंवाले, सभी लोग नामके जपसे अपना-अपना साध्य प्राप्त करते हैं। इनमेंसे प्रथम तीन तो सकाम होनेसे अपने स्वार्थ-साधनके लिये नामका जप करेंगे, इसमें कोई विशेष बात नहीं है। परन्तु वैराग्यपूर्वक प्रपंचको छोड़कर नामरूपातीत उस अनिर्वचनीय ब्रह्मसुखमें निमग्न रहनेवाले ज्ञानी भी नाम-जपद्वारा ही उस ब्रह्मसुखका अनुभव करते आये हैं, इससे बढ़कर नामका महत्त्व क्या कहा जा सकता है?

इस प्रसंगमें शाब्दिक प्रयोग भी बड़ी चतुरतासे किया गया है। यहाँ 'योगी' शब्दसे ज्ञानयोगीका ग्रहण है, क्योंकि नाम-जपद्वारा नामरूपातीत अकथनीय ब्रह्मसुखका अनुभव लेना यहाँ कहा गया है और यह अनुभव ज्ञानी भक्तके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता।—'**योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।**' श्रीश्रीधरस्वामीजीने '**योगिनाम्**' का अर्थ '**ज्ञानिनाम्**' किया है। दोहा २६ (१-२) देखिये। अतएव यहाँ ज्ञानी भक्तका ही वर्णन है।

यहाँ 'ज्ञानी' शब्द न देकर 'योगी' शब्द देनेमें अभिप्राय यह है 'योगी' से 'ज्ञानयोगी और भक्तयोगी वा प्रेमयोगी दोनोंका ग्रहण हो सके। प्रारम्भमें '***ब्रह्मसुखहिं अनुभवहिं***' यह ज्ञानी भक्तका विशेष लक्षण दिया और बीचमें '***ज्ञानी प्रभुहि बिसेषि पियारा***' कहकर गीताके '**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्**' इन शब्दोंका अपना अभिमत अर्थ सूचित किया और अन्तमें '***सकल कामना-हीन जे…***' से प्रेमयोगीके विशेष लक्षण देकर अत्यन्त प्रिय तथा इसी प्रसंगमें इनका भी ग्रहण दिखाया। पं० श्रीरामकुमारजीने जो लिखा है 'एकको गुप्त कहा' उसका तात्पर्य सम्भवतः यही है।

'योगी' के पश्चात् जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त्तका वर्णन करके इन चारोंको सुकृती, अनघ और उदार आदि कहकर सर्वप्रथम कहे हुए ज्ञानीको विशेष प्रिय कहा। श्रीरामजीके नामका ही आधार लिया है, अन्य साधन वा अन्य देवोंके नामका आश्रय दुःख मिटाने आदिमें भी नहीं लिया, इसीसे चारोंको चतुर कहा। '***चहूँ***' कहकर पूर्व ही चारों भक्तोंका कथन इंगित कर दिया गया। '***नाम अधारा***' यह '***चतुर***' कहनेका कारण बताया। ज्ञानी होकर भी भक्ति करना यह ज्ञानियोंकी चतुरता है। जो भक्ति नहीं करते उनको गिरनेका भय रहता है। यथा—'***जे ज्ञान मान बिमत्त तव भवहरनि भक्ति न आदरी। ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।***' (७। १३) '***मोरे प्रौढ़…तजहीं।***' (३। ४३) यही ज्ञानियोंकी चतुरता है। चारों भक्तोंको कहकर आगे प्रमाणमें कहते हैं—'***चहुँ जुग…बिसोका॥***' '***अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी॥***' (२१। ८) और आगेके '***अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।***' (२३। १) के बीचवाले दोहे और आठ चौपाइयाँ प्रसंगसे कुछ अलग-सी जान पड़ती हैं। परन्तु विचार करनेसे ज्ञात होता है कि असंगति नहीं है, केवल अन्य विषयका साथ-ही-साथ प्रतिपादन होनेसे वह असंगत-सा जान पड़ता है। पहले नामको अगुण-सगुणके बीचमें साक्षीरूपसे कहा, फिर यह कहा कि भीतर सूक्ष्म सच्चिदानन्दरूपसे तथा बाहर विश्वरूपसे अथवा सगुण विग्रहरूपसे यदि दर्शन करना चाहते हो तो नाम जपो। दृष्टान्तरूपमें ज्ञानीभक्तका निर्देश किया, क्योंकि ज्ञानी भक्त ही अव्यक्त और व्यक्त स्वरूपका अनुभव करनेवाला होता है। साथ ही अन्य भक्तोंका निर्देश करके चारोंको चतुर और उनमेंसे ज्ञानीको विशेष प्रिय कहा, उसका कारण दोहेमें बताकर इस विषयको यहाँ समाप्त किया और पूर्वोक्त अगुण-सगुणके प्रसंगकी जो बातें रह गयी थीं उनका कहना प्रारम्भ किया।

अथवा, इन सब प्रसंगोंकी पृथक्-पृथक् संगति कर सकते हैं। इस प्रकार कि—'***अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।***' (२१। ८)। पर एक प्रसंग समाप्त हो गया। '***रामनाम मनिदीप धरु…***' यह दूसरा प्रसंग है। फिर '***नाम जीह जपि जागहिं जोगी***' से लेकर '***कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ***' तक तीसरा प्रसंग है। इस प्रसंगमें गीतामेंके स्पष्टरूपसे चार भक्तोंकी चर्चा करके तब चौथे प्रसंगमें '***सकल कामना-हीन…***' से प्रेमी भक्तका भी नाममें ही निमग्न रहना कहा।

नोट—३ (क) यहाँ 'श्रीरामभक्ति' को 'रस' और 'नाम सुप्रेम' को 'अमृतकुण्ड' कहकर श्रीरामभक्तिमें नामप्रेमको सर्वोपरि बताया। जलको और गुड़, शक्कर, ओले, संतरे आदिके रसको भी रस ही कहते हैं। इनमें स्वाद तो होता है पर संतोष नहीं होता। अमृतमें स्वाद और संतोष दोनों हैं। इसे पीकर फिर किसी पदार्थके खाने-पीनेकी इच्छा ही नहीं रह जाती। २० (७) देखिये। अमृतको किसी रसके समान नहीं कह सकते। यथा—***'राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी काम नदी पुनि गंगा॥ पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा।'*** (लं० २६)। वैसे ही रामभक्ति रसके समान है और नामप्रेम अमृतकुण्डके समान है। (ख) ***'पियूष-ह्रद'*** कहनेका भाव यह है कि अगाध जलके कुण्डमें मीन सुखी तो रहती हैं पर कभी-न-कभी मर ही जाती हैं और नामजापक जन सदा अमर हैं। अतएव उनके मन-मीनके लिये अमृतकुण्ड कहा। (ग) पं० शिवलाल पाठकजी इस दोहेका भाव यों कहते हैं—***'रामरूप रस भक्ति को रघुबर को रस नाम। नाम प्रेम रस नाम को तहँ मन रमु निःकाम॥'*** जिसका भाव यह है कि 'भक्तिका फल रामरूपकी प्राप्ति है और रूपसे नामकी। अतः नाम सबसे श्रेष्ठ है। उस प्रेममें कामनारहित मग्न रहना कर्तव्य है। ध्वनि यह है कि जो भक्तिवश रामपदमें लीन हैं उनको भी नाम ही आधार है।' (घ) पं० श्रीशिवलाल पाठकजी 'पीयूष' का अर्थ जल करते हैं क्योंकि मछलीका जीवन जल ही प्रायः सुननेमें आता है न कि अमृत। उनके मतानुसार नाम-प्रेम जल है, जिह्वा कुण्ड है, यथा—***'नाम प्रेम जल जीह ह्रद चार भक्तिरस राम। तजि जेष्ठा युगधा सदा मन सफरी करु धाम॥'*** (अभिप्राय दीपक)। मा० मा०कार इसका भाव यह लिखते हैं कि 'जैसे मीन जलमें रहता है परन्तु केवल जल उसका जीवन है। चारा तो और वस्तु है, वैसे ही मन-मछली रसना-ह्रदमें नाम-प्रेम-जलमें मग्न रहती है और सर्व सांसारिक आकांक्षा-रहित होकर रामभक्तिरस चारामें लीन हो रही है।'

नोट—४ चार भक्तोंको तो 'प्यारा' कहा था और इस भक्तको यह विशेषण न दिया इसका कारण यह जान पड़ता है कि इनकी विशेष-उत्कृष्टता और अधिक प्रिय होना इनमें अधिक श्रेष्ठ गुण दिखाकर ही सूचित कर दिया है। ज्ञानीको ब्रह्मसुखभोगहीकी चाह है और प्रेमी भक्त (जिनका दोहेमें वर्णन है वे) तो भरतजी-सरीखे स्वार्थ-परमार्थ सभीपर लात मारे हुए हैं। इन्हें न तो ब्रह्मसुखकी चाह है न सिद्धियोंकी, न अर्थकी कामना और न आर्ति मिटनेकी वासना। अर्थात् ये स्वार्थ-परमार्थ दोनोंसे रहित होकर भक्ति करते हैं; नाम जपते हैं। ***'स्वारथ परमारथ रहित सीताराम सनेह। तुलसी सो फल चारि को.....'*** (दोहावली) पुनः, ***'जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह। बसहु निरंतर तासु उर, सो राउर निज गेह।॥*** (अ० १३१) यह प्रेमीकी दशा है। इनके प्रियत्वके सम्बन्धमें श्रीमुखवचनामृत ही प्रमाण यथेष्ठ है, यथा—***'ज्ञानिहु ते अति प्रिय बिज्ञानी॥ तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥'*** (उ० ८६), ***'मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी॥'*** (आ० ४३)।

नोट—५ अब यह प्रश्न उठाया जाता है कि 'ब्रह्मसुख तो अति दुर्लभ और अलभ्य वस्तु है फिर प्रेमी भक्त उसे क्यों नहीं भोगना चाहते?' इसका कारण यह है कि ज्ञानीके ब्रह्मसुखको प्रेमी तुच्छ समझते हैं, उसकी ओर देखते भी नहीं, यथा—***'जेहि सुख लागि पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद। अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महँ संतत मगन॥ सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥'*** (उ० ८८)। पुनः, यथा—***'मम गुनग्राम नामरत गत ममता मद मोह। ताकर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥'*** (उ० ६)।

नोट—६ कामना हीन होनेपर भी प्रभुके नाम और भक्तिमें लीन रहते हैं, यह इसलिये कि फिर और कामनाएँ न उठने पावें। (पं० रा० कु०) श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि श्रीरामभक्तिरसमें निमग्नता प्राप्त होनेपर भी नामकी आवश्यकता और उसके विस्मरणमें मछलीके समान व्याकुलता होनेका समाधान ***'नाम सुप्रेम पियूष ह्रद'*** शब्दोंमें कविने स्वयं कर दिया है। नाममें यदि सुप्रेम (प्रगाढ़ प्रेम) हो तो वह अमृतकुण्ड हो जाता है, श्रीरामभक्तिरसलीन भक्तोंका जब नाममें प्रगाढ़ प्रेम हो गया तो उनको इतना आनन्द आता है कि नाम उनके लिये अमृतकुण्ड हो जाता है। अमृतका गुण है कि उससे तृप्ति कभी

नहीं होती। उत्तरोत्तर सेवनेच्छा बढ़ती ही जाती है और ऐसी दशामें उससे पृथक् होनेमें तीव्र व्याकुलता होती है। विदित हो कि भगवत्सम्बन्धी कामनाएँ वे कामनाएँ नहीं हैं, जिनके छोड़नेकी आज्ञा, जन्ममृत्युसे निवृत्तिके लिये दी जाती है। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो श्रीमद्भगवद्गीता अ० १२ में यह उपदेश भगवान् न देते कि '**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥**' '**अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव। मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥**' (८, १०)

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥ १॥

अर्थ—ब्रह्मके निर्गुण (अव्यक्त) और सगुण (व्यक्त) दो स्वरूप हैं। (दोनों) अकथ (अनिर्वचनीय) हैं, अगाध (अथाह) हैं, सनातन और उपमारहित हैं॥ १॥

* अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा *

बैजनाथजी लिखते हैं कि 'अन्तरात्मा, चिदानन्दमय, प्रकाशक, अमूर्ति सद्गुणराशि' अगुण है। सगुण स्वरूपके दो भेद हैं—एक चित्स्वरूप, जैसे ईश्वर-जीव-गुण-ज्ञान। दूसरा अचित्-स्वरूप जिसके दो भेद हैं—एक प्राकृत, दूसरा अप्राकृत। अप्राकृतके भी दो भेद हैं—एक नित्यविभूति वैकुण्ठादि, दूसरा अप्राकृत कालरूप जैसे कि दण्ड, पल, दिन, रात, युग, कल्प आदि।' वे० भू० जी लिखते हैं कि परमात्माके पर, व्यूह, विभव और अर्चा ये चारों रूप तो सदैव सगुण ही हैं। अन्तर्यामीस्वरूपके ही दो भेद हैं। गोस्वामीजीका अभिप्राय यहाँ अन्तर्यामीके ही कथनका है, क्योंकि इस अगुण-प्रकरणका उपसंहार करते हुए वे कहते हैं कि *'अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।'* इन दोनों स्वरूपोंका वर्णन इसी ग्रन्थमें अन्यत्र मिलता है। यथा—*'जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥ तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥'* इसमें एकरस सबमें साक्षीरूपसे व्यापकको अगुण-स्वरूप कहा जाता है, यथा—'**साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेति श्रुतिः।**' और भक्तोंके हृदयमें अति कमनीय सच्चिदानन्दघन विग्रहसे विराजमान विग्रहको सगुण-स्वरूप कहा जाता है। काष्ठमें अप्रकट अग्निवत् जो सर्वत्र व्यापक-स्वरूप रहता है उसे 'अमूर्त अन्तर्यामी' कहते हैं और जो भगवत्-स्वरूप भक्तोंके ध्यानमें आता है, भक्तोंकी रक्षाके लिये हृदय-प्रदेशमें किसी विग्रहविशेषसे स्थित रहकर भक्तका रक्षण करता रहता है वह स्वरूप 'मूर्त अन्तर्यामी' कहाता है। जैसे '**अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः। स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे॥**'(भा० १। ८। १४) सर्वान्तर्यामी योगेश्वर हरिने अपनी कृपासे उत्तराके गर्भकी रक्षा की। उस स्वरूपका वर्णन भा० १। १२ में इस प्रकार है। गर्भके बालक (परीक्षित्जी) ने देखा कि एक पुरुष जिसका परिमाण केवल अंगुष्ठमात्र है, स्वरूप निर्मल है, सिरपर स्वर्णका चमचमाता हुआ मुकुट है, सुन्दर श्याम शरीरपर पीताम्बर धारण किये हैं, आजानुलम्बित चार भुजाएँ हैं, बारम्बार गदा घुमा रहा है, इत्यादि। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजको नष्ट करके वह सर्वव्यापक सर्वैश्वर्यशाली धर्मरक्षक सर्वसामर्थ्यमान् श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। (श्लोक ७—११)—इसी तरह मूर्त अन्तर्यामी अपने भक्तोंकी भावनानुसार उनके हृदयमें रहते हैं। *'अंतरजामी राम सिय'* मानसमें भी कहा ही है।

स्वामी श्रीराघवाचार्यजी लिखते हैं कि मानसके उद्धरणोंसे प्रमाणित होता है कि मानसका सिद्धान्त यह है कि परब्रह्म राम सगुण एवं निर्गुण हैं। उनमें सगुणरूपमें भी उसी प्रकार पारमार्थिकता है जिस प्रकार उनके निर्गुणरूपमें। इन दोनों स्वरूपोंकी रूपरेखाको हृदयंगम करनेके लिये श्रीयामुनाचार्यजीका श्लोक पर्याप्त होगा—'**शान्तानन्तमहाविभूति परमं यद्ब्रह्मरूपं हरेर्मूर्तं ब्रह्म ततोऽपि यत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भुतम्।**' इससे प्रकट होता है कि परब्रह्मका एक रूप शान्त, अनन्त एवं महाविभूतिवाला है और दूसरा रूप जो इस रूपकी अपेक्षा अधिक प्रिय किन्तु साथ ही अधिक अद्भुत है वह मूर्तरूप है। पांचरात्र-आगमने भगवान्के पंचरूप बताये हैं। वे हैं पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। उनमेंसे पररूपके ही महाविभूतिवाला रूप तथा मूर्तरूप दो भेद किये गये हैं। महाविभूतिवाला रूप शान्त है, अनन्त है और मूर्त नहीं है।

शान्त-अवस्थामें प्रदर्शनकी आवश्यकता न पड़नेसे गुणोंका प्रदर्शन नहीं होता। जहाँ इन गुणोंके प्रदर्शनकी आवश्यकता प्रतीत हुई, महाविभूतिवाला अमूर्तरूप मूर्तरूपमें परिणत हो जाता है। इस मूर्तरूपकी सनातन सत्तामें कभी किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। अमूर्तरूपमें सौलभ्य, सौशील्य, कारुण्य, वात्सल्य आदि गुणोंका साक्षात्कार न होनेके कारण गोस्वामीजीने उस रूपको निर्गुण कहकर सम्बोधित किया है। मूर्तरूपमें इन गुणोंका प्रयोग मिलता है, अत: गोस्वामीजी उसे सगुण कहते हैं। मानस मूर्तरूप और अमूर्तरूपकी सत्तामें किसी प्रकारका भेद नहीं मानता। *'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।'* दोनों ही स्वरूप अनादि हैं। किंतु दोनोंकी अनुभूतिमें पर्याप्त अन्तर है।.....श्रीरामके मानसप्रोक्त सगुण एवं निर्गुणरूपमें वस्तुत: अभेद है। इसीलिये उनके निर्गुणरूपके अनुभवसे सगुणरूपका साक्षात्कार और सगुणरूपमें निर्गुणरूपका अनुभव होता है। निर्गुणरूप महाविभूति संयुक्त है, सगुणरूप दयाका विस्तार है। वह वाणी और मनके लिये अगम्य है, यह वाणी और मनको आकर्षित करता है। रामचरितमानस श्रीरामजीके दोनों ही रूपोंमें स्थित व्यक्तित्वके साथ साधकका नाता जोड़ देता है। मानसकी यह ऐसी विशेषता है जिसमें निगुर्णवाद और सगुणवादका सामरस्य हो जाता है।

नोट—गोस्वामीजीने *'अगुन'* और *'सगुन'* से ब्रह्मके 'अव्यक्त' और 'व्यक्त' ये दो स्वरूप कहे हैं जैसा हम पूर्व भी लिख चुके हैं। प्रमाण, यथा—*'कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव अब्यक्त जेहिं श्रुति गाव। मोहि भाव कोसलभूप श्रीराम सगुन सरूप।'* (६। ११२), **'व्यक्तमव्यक्त गत भेद विष्नो।'** (विनय० ५४)। पद्मपुराण उत्तरखण्डमें भी निर्गुणको अव्यक्त और सगुणको व्यक्त कहा है; यथा—**'व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं गुणभृन्निर्गुण: पर:।'**(२४२। ७४)

नोट—१ अकथ, अगाध आदि विशेषण *'अगुन सगुन'* दोनोंके हैं। निर्गुणमें तो ये विशेषण प्रसिद्ध हैं ही, सगुणके प्रमाण सुनिये—(क) *'अकथ';* यथा—*'राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर। अबिगत अकथ अपार.....।'* (अ० १२६) *'रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा।'* (बा० १९९) **'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।'** (तै० ३। २। ४) (ख) *'अगाध';* यथा—*'महिमा नाम रूप गुनगाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥ प्रभु अगाध सत कोटि पताला। राम अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।'* (७। ९१। ९२) (ग) *'अनादि';* यथा—*'आदि अंत कोउ जासु न पावा। सोइ दसरथसुत '* (११८)। (घ) *'अनूपा';* यथा—*'अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूपरासि गुन कहि न सिराई॥'* (१९३), *'जय सगुन निर्गुनरूप रूप अनूप भूप सिरोमने।'* (७। १३) *'निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहैं।'* (७। ९२)

नोट—२ श्रीचक्रजी लिखते हैं कि—(क) मानस ब्रह्मके समग्ररूपको स्वीकार करता है। ब्रह्मका समग्ररूप है, उसके दोनों स्वरूपोंमें कोई भेद नहीं। दोनों एक ही तत्त्व और अभिन्न हैं। *'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना'* इस प्रकार सगुण-साकार विग्रह भी विभु एवं निर्गुण है और *'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होइ मैं जाना॥'* इस प्रकार निर्गुण तत्त्व भी सगुण ही है। दोनोंका भेद तो मानवके दुर्बल मानसकी कल्पना है। अत: दोनोंको *'अकथ'* कहा गया। मन और वाणी त्रिगुणात्मक हैं, उनका वर्णन गुणोंके आधारसे होता है। तब निर्गुणका वर्णन कैसे हो? सगुण-तत्त्व भी वाणीमें नहीं आता। *'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।'* वाणी एवं मनकी एक सीमित शक्ति है, किन्तु वे गुणधाम तो अनन्त हैं। कोई लोटेमें समुद्र भरना चाहे तो कैसे भर सकता है? लोटेमें जो भरा जायगा वह समुद्रका जल भले हो, समुद्र नहीं है। उससे समुद्रकी वास्तविकताका परिचय नहीं मिलता। इसी प्रकार मन या वाणीमें भगवान्‌का जो दिव्यरूप एवं जो गुण आता है, वह उनका गुण या रूप होनेपर भी उनके चिन्मयरूप एवं अनन्त दिव्य गुणोंका तनिक भी परिचय देनेमें समर्थ नहीं। (ख) *'अनादि'* कहकर जनाया कि सगुणरूप मायावच्छिन्न या कल्पनाप्रसूत नहीं है। ऐसी बात नहीं कि भक्तकी भावनाके अनुसार भगवान्‌ने रूप धारण कर लिया है, उस भावनासे पूर्व वह रूप था ही नहीं। भगवान्‌का एक सगुण स्वरूप है जो अनादि है। उसीके अनुसार मानस-स्तर है और इसीलिये भक्त वह भावना कर सका है। जो रूप भगवान्‌का नहीं है, उसका तो मन संकल्प

ही नहीं कर सकता। क्योंकि मन संकल्प स्वयं नहीं करता, केवल मानस-स्तरोंके संकल्पोंको ग्रहण करके व्यक्त करता है। जैसे रेडियो-यन्त्र स्वयं कुछ नहीं बोलता। वह अमुक स्तरमें पहुँचाये हुए स्तरकी ध्वनियोंको केवल व्यक्त करता है। (ग) दोनों रूप अनुपम हैं। जगत् मायाके गुणोंका परिणाम है और भगवान्‌के गुण अमायिक हैं। अतः जगत्‌की कोई उपमा नहीं दी जा सकती।

नोट—३ *'अकथ'* आदि कहकर जनाया कि निर्गुण और सगुण दोनों रूप प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान इन तीनों प्रमाणोंसे नहीं जाने जा सकते। *'अकथ'* से वाणी आदि इन्द्रियोंका निषेध करके प्रत्यक्षका अविषय, *'अगाध'* से मनके द्वारा अचिन्त्य कहकर अनुमानका अविषय और *'अनादि'* कहकर उनकी निर्विकल्पसत्ताका प्रतिपादन करते हुए *'अनूप'* कहकर उन्हें उपमानका भी अविषय बताया गया है। उनकी सत्ता एवं स्वरूपबोधमें केवल शब्द (शास्त्र) ही प्रमाण है। इन विशेषणोंसे सूचित किया कि ऐसे प्रभावशालीसे भी नाम बड़ा है। नामद्वारा दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है।

नोट—४ (क) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि ऊपर दोहेतक चार भक्तोंके द्वारा भीतर-बाहरका उजाला दिखाया। अब फिर अगुण-सगुणसे उठाया। पूर्व अगुण-सगुणका प्रसंग *'अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।.....'* इस चौपाईपर छोड़ दिया था, बीचमें भीतर-बाहर उजालेका उदाहरण दिया, अब पुनः अगुण-सगुणका प्रसंग उठाकर नामको इनसे बड़ा कहते हैं। (ख) मानस-परिचारिकाकार लिखते हैं कि *'नाम रूप गुन अकथ कहानी। समुझत सुखद न परत बखानी॥'* तक नामका स्थूल स्वरूप कहकर फिर ग्रन्थकार *'अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।.....'* से अंग कहने लगे। नामके अधीन अगुण-सगुण दोनों हैं। यह स्थूल अंग कहते समय आपने देखा कि आर्त, अर्थार्थी इत्यादि पाँचोंका भी नाम ही आधार है सो ये भी नामके अंग हैं, इसलिये अगुण-सगुणका बीज वहाँ बोकर पाँचों भक्तोंकी नामाधार-वृत्तिका वर्णन उठाया और अब यहाँसे विस्तारपूर्वक अगुण-सगुणका प्रसंग फिर ले चले। (ग) यहाँसे अब चतुर्थ प्रकारसे नामकी बड़ाई दिखाते हैं। अर्थात् निर्गुण-सगुण दोनोंसे बड़ा कहकर नामका बड़प्पन दिखाते हैं।

मोरें* मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहि जुग निज बस निज बूतें॥ २॥

अर्थ—मेरी सम्मति (राय) में नाम (निर्गुण-सगुण) दोनों (ब्रह्म) से बड़ा है कि जिसने दोनोंको अपने बलसे अपने वशमें कर रखा है॥ २॥

नोट—१ (क) *'मोरें'* मत कहकर बताते हैं कि यह मेरा मत है (दूसरोंके मतमें जो चाहे हो क्योंकि यह सामर्थ्य नामहीमें है कि उसने दोनोंको अपने अधीन कर रखा है। इसी बातको आगे और स्पष्ट कहते हैं—*'कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।'* पुनः, (ख) *'मोरें मत'* का भाव कि दोनों स्वरूपोंकी उपलब्धिमें एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण हैं। शास्त्र कहते हैं कि नामद्वारा दोनोंकी प्राप्ति होती है। इस तरह शास्त्रोंका फलितार्थ तो यह निकलता है कि नाम दोनोंसे बड़ा है, किन्तु शास्त्र कहीं भी यह बात स्पष्ट कहते नहीं। अतएव मानसकार इसे अपनी सम्मति कहते हैं। उनका अनुरोध है, आग्रह नहीं कि आप भी इसे ऐसा ही स्वीकार कर लें—पर यह एक सम्मति है।

नोट—२ *'निज बस निज बूतें'* इति। (क) *'निज बूतें'* का भाव यह है कि श्रुतियोंके समान प्रार्थना करके नहीं, किन्तु अपने पराक्रमसे, वश कर रखा है। कथनका तात्पर्य यह है कि नामके बलसे भक्त भीतर-बाहर दोनों ब्रह्म (स्वरूपों) को देखते हैं। (पं० रामकुमारजी) जैसे मनु-शतरूपाने निर्गुण ब्रह्मके लिये नामजपसे ही तप प्रारम्भ किया, यथा—*'सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा'* उससे निर्गुण ब्रह्म वशमें हुए, तब ब्रह्मगिरा हुई और फिर वे ही सगुण रूपसे प्रकट हुए। पं० सूर्यप्रसाद मिश्रजी लिखते हैं कि जैसे 'राम' इसमें जो रा और म अक्षर हैं उनसे दशरथापत्य साकार ब्रह्मका बोध होता है, रामका जो अर्थ सर्वत्र **'रमन्ते इति रामः'** है इससे निराकार ब्रह्मका भी बोध होता है। यदि नाम न होता तो साकार और

* हमरे—१७२१, १७६२, छ०, भा० दा०। मोरें-१६६१, १७०४, को० रा०।

निराकारको कोई जानता भी नहीं। दोनोंका बोधक केवल नाम ही है। (मानसपत्रिका) पुनः, (ख) भाव कि जो *'अकथ अगाध अनादि अनूपा'* ऐसे बलवान् ब्रह्मको वश कर रखे हैं, उसमें अवश्य बहुत अधिक बलबूता होगा। (ग) पूर्वार्द्धमें अपने मतानुसार नामको दोनोंसे बड़ा कहकर उत्तरार्द्धमें उसका (अपनी सम्मति स्थिर करनेका) कारण कहा। *'निज बूतें'* से स्पष्ट कर दिया कि नाम निरपेक्ष साधन है, उसमें किसी भी दूसरे साधनकी सहायता अपेक्षित नहीं है। केवल नाम लेना ही पर्याप्त है।

नोट—३ (क) पं० सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'ग्रन्थकारका मत बहुत सत्य जान पड़ता है, क्योंकि जिसके वश जो हो जाय वह वशकर्त्ता बड़ा और वशीभूत छोटा कहा जाता है। नामके अधीन निर्गुण और सगुण दोनों सर्वत्र शास्त्रादिकोंमें प्रसिद्ध हैं। इसलिये स्पष्ट है कि दोनोंसे नाम बड़ा है।' (ख) पाण्डवगीतामें भृगुजीने भी ऐसा ही कहा है। यथा, **'नामैव तव गोविन्द नाम त्वत्तः शताधिकम्। ददात्युच्चारणान्मुक्तिं भवानष्टांगयोगतः॥'**(५९) अर्थात् हे गोविन्द! आपका नाम आपसे सौ गुना अधिक है। आप तो अष्टांगयोगसे मुक्ति देते हैं और आपका नाम केवल स्मरणसे मुक्ति देता है।

प्रौढ़ * सुजन जन जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥ ३॥

अर्थ—प्रौढ़ सज्जनलोग मुझ जन (के मन) की जानते हैं (वा जान लेंगे) (कि) मैं अपने मनकी प्रतीति, प्रीति और रुचि कह रहा हूँ॥ ३॥

नोट—१ *'प्रौढ़ सुजन जन.....'* इति। (क) बाबा जानकीदासजी लिखते हैं कि 'यदि कोई कहे कि क्या 'व्यास, वाल्मीकि, अगस्त्य, जैमिनि, शाण्डिल्य, गौतम, पराशर आदिसे तुम्हारा न्यारा मत है?' तो उसपर कहते हैं कि नहीं। प्रौढ़ सुजन जन व्यासादि मुझ जनकी जानते हैं। मैं जो अपने मनकी प्रतीति, प्रीति, रुचि कह रहा हूँ वह सभी प्रवीणोंका मत है यह वह जानते हैं।' (मा० प्र०) जो शास्त्रों एवं सज्जनोंके वाक्योंका फलितार्थ है वही मैंने स्पष्ट कह दिया, यह वे जान लेंगे। (ख) गोस्वामीजी नामका प्रभाव जानते हैं; इसीलिये उन्होंने 'प्रतीति' पद दिया है; क्योंकि *'जाने बिनु न होइ परतीती'* और, प्रतीति होनेसे 'प्रीति' होती है यथा—*'बिनु परतीति होइ नहि प्रीती।'* (७। ८९) प्रतीति और प्रीतिसे रुचि बढ़ती है। (पं० रामकुमारजी)

नोट—२ गोस्वामीजीने यहाँ अपनी दीनता प्रकट की है। कपिल, व्यास, जैमिनिका मत नहीं दिखलाया है। वे कहते हैं कि अच्छे लोग यह न समझें कि मैं हठ करके (वा बढ़ाकर) इस बातको कहता हूँ, मैं तो अपने मनकी जो प्रतीतिसे प्रीति और प्रारब्धकर्मसे रुचि हुई है इन्हीं कारणोंसे नामको बड़ा मानता हूँ। प्रतीतिका कारण श्रुति है—**'मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम।'** प्रीतिका कारण बड़ोंका उपदेश है। (मानसपत्रिका, रा० प्र०, सू० प्र० मिश्र)

नोट—३ सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि गोस्वामीजीने प्रीति, प्रतीति और रुचि आगेकी चौपाइयोंमें दिखायी है। अर्थात् *'एक दारु गत देखिअ एकू।'* से *'राजा राम अवध रजधानी'* तक प्रतीतिका हेतु दिखाया। पुनः, *'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।'* से *'अपतु अजामिल गज गनिकाऊ'* तक प्रीतिका हेतु दिया और *'कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई'* से *'भाय कुभाय अनख आलसहू'* तक मनकी रुचि दिखायी।

---

* प्रौढ़ि सुजन जनि—१७२१, १७६२, छ०, भा० दा०, रा० प०, गौड़जी। प्रौढ़ सुजन जनि-ना० प्र०, सु० द्विवेदी। प्रौढ़ सुजन जन—मा० प्र०, १६६१। १६६१ में पहले 'प्रौढ़ि सुजन जनि' था। हरताल देकर 'प्रौढ़ सुजन जन' पाठ शुद्ध किया गया है।

प्रौढ़ि=ढिठाई=प्रौढ़ोक्ति (अलंकार जो काव्यका एक अंग है, जिसमें कवि अपनी बुद्धिकी चतुरतासे बातको बहुत बढ़ाकर कह डालते हैं)। सन्तउन्मनी टीकाकार मंगलकोषका प्रमाण देकर 'प्रौढ़ि' और 'प्रौढ़' का अर्थ यों लिखते हैं—'प्रौढ़ि'=अभिमानसे बात कहना। 'प्रौढ़'=चालाक विद्वानोंकी सभाका=सभा-प्रवीण। शब्दसागरमें 'प्रौढ़' का अर्थ 'ढीठ, चतुर, अच्छी तरह बढ़ा हुआ' लिखा है।

एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग-ब्रह्म-बिबेकू॥ ४॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें॥ ५॥

अर्थ—एक (अग्नि) जो लकड़ीके भीतर रहता है और दूसरा जो प्रत्यक्ष देखनेमें आता है उन दोनों अग्नियोंके समान [अगुण (अव्यक्त) और सगुण (व्यक्त)] दोनों ब्रह्मका विचार है॥ ४॥ दोनों कठिन हैं, परन्तु दोनों नामके अभ्याससे सुगम हैं, इसीसे मैंने नामको ब्रह्म (अगुण, अव्यक्त) और राम (सगुण, व्यक्त) से बड़ा कहा॥ ५॥

टिप्पणी—***'एक दारु गत देखिअ एकू।....'*** इति। (क) पहले ब्रह्मके दो स्वरूप कहे, अब दोनोंका विवेक कहते हैं कि वास्तवमें दोनों अग्नि एक ही हैं, भेद केवल इतना है कि एक गुप्त है, दूसरा प्रकट। ऐसे ही ब्रह्मको जानिये। (ख) 'विवेक' का भाव यह है कि एक अग्नि तो लकड़ीमें है सो प्रकट की जाती है (प्रकट करनेकी बात आगे कहते हैं) और दूसरी प्रकट है, सो प्रकट ब्रह्मकी बात भी आगे कहते हैं।

नोट—१ काष्ठमात्रमें अग्नि गुप्तरूपसे रहता है। वनमें बाँस आदिके परस्पर रगड़से दावाग्नि प्रकट होकर वनको जला डालता है। अरणी लकड़ीको परस्पर रगड़नेसे अग्नि यज्ञके लिये उत्पन्न की जाती है, यथा— ***'पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी।'*** (१। ३१। ६)। इससे सिद्ध होता है कि काष्ठमात्रके भीतर अग्नि अव्यक्तरूपसे व्याप्त है, दिखायी नहीं देता। उसी 'अव्यक्त अग्नि' को ***'दारु गत पावक'*** कहा गया है। दूसरा अग्नि वह है जो संघर्षणसे उत्पन्न होनेपर प्रत्यक्ष देखनेमें आया अथवा प्रकटरूपसे संसारमें देखनेमें आता है और जिससे संसारका काम चलता है। जबतक वह अव्यक्तरूपसे लकड़ीमें रहा तबतक उससे संसारका कोई काम न निकल सकता था। इसी प्रकार ब्रह्मके सम्बन्धसे देह एवं चराचरमात्र काष्ठ है। इस चराचरमात्रमें जो ब्रह्म अव्यक्त अन्तर्यामीरूपसे सर्वत्र व्याप्त है वह अव्यक्त अग्नि (दारुगत पावक) के समान है और वही ब्रह्म जब पर, व्यूह, विभव आदि रूपोंसे व्यक्त होता है तब वह प्रकट पावकके समान है जिससे संसारका हित होता है। इससे जनाया कि तत्त्वतः अव्यक्त और व्यक्त (अगुण और सगुण) दोनों एक ही हैं। केवल अप्रकट और प्रकट भेदसे दोनों भिन्न-भिन्न जान पड़ते हैं।

नोट—२ जैसे बारम्बार संघर्षण करनेसे काष्ठसे अग्नि प्रकट हो जाता है, यथा—***'पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी।'*** (१। ३१) ***'अति संघर्षन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई॥'*** (७। १११) वैसे ही इस शरीर (की जिह्वा) रूपी अरणीपर नामको उत्तरारणि करके नामोच्चारणरूप संघर्षण वा मन्थन करनेसे हृदयस्थ ब्रह्म सगुण होकर प्रत्यक्ष हो जाता है जैसे महाभागवत श्रीप्रह्लादजीके निरन्तर अभ्याससे वह खम्भसे प्रकट हो गया।

नोट—३ सगुण ब्रह्मसे जगत्का काम चलता है। उनके चरित्रोंको गाकर, सुनकर लोग भवपार होते हैं। यथा—***'तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥.... सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥'*** (१२१-१२२) जैसे प्रकट अग्नि किसी-किसीको जला भी डालता है, वैसे ही व्यक्त ब्रह्मद्वारा दुष्टोंका दलन भी होता है। यथा—***'असुर मारि थापहिं सुरन्ह.... ।'*** (१। १२१)

'प्रौढ़ सुजन जनि जानहिं' का अर्थ सुधाकर द्विवेदीजी यों करते हैं कि 'प्रौढ़ सुजन' शंकर, विशिष्टद्वैतवादी, अद्वैतसिद्धिकर्त्ता मधुसूदन सरस्वती आदि हैं। वे लोग मेरे इस जनकी बात न मानें पर मैं अपने विश्वास और प्रीतिसे अपने मनकी रुचि कहता हूँ और पं० सूर्यप्रसाद मिश्र प्रौढ़का अर्थ 'जबरदस्ती, हठ' करके यह अन्वय करते हैं—'सुजन जनकी (दासकी) प्रौढ़ जनि जानहिं।'

पं० रामकुमारजी—'प्रौढ़ि सुजन जनि' का भाव यह लिखते हैं कि 'मोरें मत' कहनेसे 'प्रौढ़ि' पायी जाती है, इसीसे कहा कि सज्जन इसे 'प्रौढ़ि' न जानें; क्योंकि अपने इष्टमें प्रतीति आदि बताना प्रौढ़ता नहीं है, यथा—'प्राप्तौ सत्यां निषेधः।'

नोट—४ *'बिबेकू'* इति। इस शब्दको देकर जनाया कि इस प्रकार उसको समझ सकते हैं।

नोट—५ इन चौपाइयोंसे मिलती हुई ये श्रुतियाँ श्वेताश्वतरोपनिषद्में हैं—'**वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिंगनाशः। स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे॥ स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत्॥**'(अध्याय १।१३-१४) अर्थात् जिस प्रकार अपने आश्रय (काष्ठ) में स्थित अग्निका रूप दिखायी नहीं देता और न उससे लिंग (अव्यक्त, सूक्ष्मरूप) का ही नाश होता है और फिर ईंधनरूपी कारणके द्वारा ही उसका ग्रहण हो सकता है, उसी प्रकार अग्नि और अग्निलिंग (अव्यक्त अग्नि) के समान ही इस देहमें प्रणवके द्वारा ब्रह्मका ग्रहण किया जा सकता है। अपने शरीरको अरणि और प्रणवको उत्तरारणि करके ध्यानरूप मन्थनके अभ्याससे स्वप्रकाश परमात्माको छिपे हुए अग्निके समान देखे।

टिप्पणी—१ *'उभय अगम.....'* इति। (क) नामसे ब्रह्मके सुगम होनेकी व्याख्या आगे नहीं दी गयी है; निर्गुण-सगुणसे नाम बड़ा है—केवल इसीकी व्याख्या आगे की है। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि पूर्व ही जो *'तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार'* इस दोहेमें कह आये हैं उसीको विस्तार-से यहाँतक कहा है। (ख) *'जुग सुगम नाम ते'* कहकर सूचित किया कि अन्य साधनोंसे अगम है, नामहीसे सुगम है। यही आशय दोहावलीके *'सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवनमूरि॥'* (८) इस दोहेमें पाया जाता है।

नोट—६ (क) सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि नाम राम ब्रह्मसे भी बड़ा है यह ग्रन्थकारका कहना काष्ठाग्नि और संघर्षण दृष्टान्तद्वारा प्रामाणिक ठहरा। (ख) यहाँ दोनों वाक्योंकी समतामें 'प्रतिवस्तूपमालंकार' की ध्वनि है। दोनोंकी प्राप्ति दुर्गम है, परन्तु नामसे दोनों सुगम हैं, इस प्रकार नामके ब्रह्म रामसे बड़े होनेका समर्थन करना 'काव्यलिंग अलंकार' है। (वीरकवि)

व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥ ६॥
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥ ७॥

अर्थ—जो ब्रह्म अन्तर्यामीरूपसे चराचरमें व्याप्त है, अद्वितीय है, अविनाशी (कभी नाश न होनेवाला) है, सत् चैतन्यघन (चिद्रूप) और आनन्दकी राशि है॥ ६॥ ऐसे सब विकारोंसे रहित प्रभुके हृदयमें रहते हुए भी संसारके सभी जीव दीन और दुःखी हो रहे हैं॥ ७॥

नोट—१ (क) चौपाई ६ में 'ब्रह्म' विशेष्य है और 'व्यापक' आदि छः विशेषण हैं। (ख) व्यापक, एक और 'सत्-चित्-आनन्द' की व्याख्या पूर्व *'एक अनीह.....।'* (१। १३। ३-४) में हो चुकी है, वहीं देखिये। (ग) *'व्यापक एक.....'*, यथा—'**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**' (श्वे० उ० ६।११), '**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।**' (तैत्ति० भृगु० ६) अर्थात् समस्त प्राणियोंमें स्थित एक देव है जो सर्वव्यापक है और समस्त भूतोंका अन्तरात्मा है। आनन्द ब्रह्म है—ऐसा जाना।

नोट—२ *'व्यापक एक.....'* इति। भाव यह है कि ब्रह्मके हृदयस्थ रहनेपर जीवको दीन-दुखारी नहीं होना चाहिये। इस भाव-कथनकी पुष्टिमें यहाँ छः विशेषण दिये गये हैं। इन विशेषणोंके साथ-साथ यह भी ध्वनित है कि ब्रह्म और जीवमें महदन्तर है। *'व्यापक'* कहकर सूचित किया कि ब्रह्म व्यापक है और जीव व्याप्य तथा परिच्छिन्न है। व्यापकताके दृष्टान्त प्रायः 'तिलमें तैल, दूध और दहीमें घी, लकड़ी आदिमें अग्नि, सब पदार्थोंमें आकाश' आदिके दिये जाते हैं। यथा—'**तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः। एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति॥**', '**सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।**' (श्वेताश्वतर० अ० १५, १६), '**आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः।**' अर्थात् जैसे तिलमें तेल, दहीमें घी, प्रवाहमें जल और अरणीमें अग्नि स्थित है, वैसे ही आत्मामें परमात्मा व्याप्त है। सत्य और तपके द्वारा जो साधक इसे जान जाता है वही

उसको ग्रहण करनेमें समर्थ है। आत्मा सबमें इस प्रकार स्थित है जैसे दूधमें घी। आकाशकी तरह आत्मा सर्वगत और नित्य है। *'व्यापक'* विशेषणसे बताया कि जीव प्रारब्धानुसार कहीं भी जाय तो ब्रह्मसे कभी भी पृथक् नहीं हो सकता। आगे ब्रह्मको 'सत्-चित्-आनन्द' कहेंगे—*'सत चेतन घन आनंद रासी।'* इससे कोई यह न समझे कि ब्रह्म तीन हैं। अतः कहा कि वह 'एक' है। शरणपालत्व, भक्तवात्सल्य, सर्वज्ञत्व, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ, अकारण दयालुत्व आदि समस्त दिव्य गुणोंमें उसके समान कोई नहीं है यह भी 'एक' से जनाया। इस विशेषणका अभिप्राय है कि ऐसे गुणोंसे युक्त ब्रह्मके साथीको दुःखी न होना चाहिये। आकाश व्यापक है परन्तु कुछ लोग उसको नाशवान् कहते हैं, अतः ब्रह्मको अविनाशी कहा। *'अबिनासी'* की पुष्टिके लिये आगे *'सत'* कहा। जीव भी सत् और अविनाशी है, परन्तु अनादि अविद्यावश वह स्वस्वरूप तथा परस्वरूपको भूल जाता है। अणु-स्वरूप होनेसे जीवका ज्ञान और आनन्द भी संकुचित है। अविद्यारहित और विभु होनेसे ब्रह्मका ज्ञान तथा आनन्द अखण्ड और अपरिमित है; यह दिखानेके लिये 'चेतन' के साथ 'घन' और 'आनन्द' के साथ 'राशि' कहा। अतः जीवका दीन-दुःखी होना ठीक ही है।

अब यह शंका हो सकती है कि—'सत्, चेतन घन, आनंदराशि' तो तीन कहे और तीनोंका अनुभव भी होता है, तब ब्रह्मको 'एक' कैसे कहा?' इसका समाधान अग्निके दृष्टान्तसे कर सकते हैं। अग्निमें उष्णता, ज्वाला और प्रकाश तीनों हैं पर अग्नि एक ही है।

'ब्रह्म चेतनघन है और व्यापक है। तब अचित्में भी तो वह हुआ ही। परन्तु अचित्में रहनेसे अचित्को भी चेतनवत् भासमान होना चाहिये जैसे शरीरमें चेतनके होनेसे शरीर चेतन भासता है।'—इस शंकाका समाधान यह है कि ब्रह्मके दो स्वरूप हैं, स्थूल और सूक्ष्म, अर्थात् व्यक्त और अव्यक्त। ब्रह्म जो अन्तर्यामी-रूपसे सर्वत्र स्थित है वह उसका अव्यक्त स्वरूप है। अव्यक्तस्वरूपके उपर्युक्त सब दिव्य गुण भी अव्यक्त ही रहते हैं, इसीसे अचित्में चेतनताका अनुभव हमें नहीं होता। यदि वह चाहे तो उसमें भी चेतनता अनुभवमें आ सकती है।

'अस प्रभु..... अबिकारी' इति। उपर्युक्त छः विशेषणोंसे युक्त ब्रह्मको *'अबिकारी'* कहकर जनाया कि वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर षट्विकारोंसे रहित है और जीव 'विकारी' है। जो सर्वव्यापक है, एक अर्थात् अद्वितीय है, उसको कोई कामना होगी ही नहीं, वह पूर्णकाम है। अतः काम-विकार उसमें नहीं है। कामना होनेसे उसकी पूर्त्ति न होनेपर क्रोध होता है और पूर्त्ति होनेपर लोभ और अधिक होता है; यथा—*'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई।'* जब कामना ही नहीं तब क्रोध और लोभ क्योंकर होंगे। तीन विकारोंका न होना इन्हीं दो विशेषणोंसे सिद्ध हो गया। जीवमें ये दो गुण न होनेसे उसमें ये तीनों विकार आ जाते हैं। मोह, मद अज्ञानके कार्य हैं और ब्रह्म चेतनघन अर्थात् अखण्ड ज्ञानवान् है, अतः उसमें ये नहीं हैं। मत्सर तब होता है जब कोई अपने समान हो या अपनेसे बड़ा हो। ब्रह्म 'एक' है, उसके समान या बड़ा कोई नहीं, अतः उसमें यह विकार भी नहीं होता।

भगवान्का वास हृदयमें है, यथा—**'एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।'** (श्वे० उ० ४।१७) अर्थात् वह दिव्य क्रीडनशील विश्वका उत्पन्न करनेवाला परमात्मा सदा ही सभी मनुष्योंके हृदयमें सम्यक् प्रकारसे स्थित है। पुनश्च **''सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः।'** (गीता १५।१५), **'अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा।'** अर्थात् 'मैं सबके हृदयमें प्रविष्ट हूँ।', 'प्राणियोंका शासक, सबका आत्मा अन्तरमें प्रविष्ट है'।

नोट—३ श्रीचक्रजी लिखते हैं—(क) यहाँ ब्रह्मके हृदयस्थ स्वरूप चतुर्व्यूहमेंसे वासुदेवरूपका वर्णन है, अद्वैत वेदान्ती इसे द्विविध चेतना कहते हैं। व्यापक तो कह ही दिया तब यहाँ *'हृदय अछत'* की क्या विशेषता? मोटी बात तो यह है कि अनुभूतिका स्थान हृदय है। दीनता एवं दुःखका अनुभव हृदयमें मनको होता है, अतः वहीं सच्चिदानन्दघन ब्रह्मसत्ताको बताकर विरोध दिखलाया गया। दूसरे सर्वत्र ब्रह्मका

सद्घन, आनन्दघन, अविनाशी, निर्विकारस्वरूप प्रकाशित नहीं है। (ख) दीन=अभावग्रस्त। दुःखी=अभीष्टके नाशसे युक्त। भाव कि जीव जो चाहता है वह उसे मिलता नहीं और जो कुछ है वह नष्ट होता रहता है, इन्हीं दीनता और दुःखमें सब विकार आ जाते हैं।

नोट—४ पं० रामकुमारजी इस चौपाईका भाव यह लिखते हैं—'ऐसे विशेषणोंके प्रतिकूल जीवकी दशा हो रही है। अविनाशीके रहते हुए सबका नाश हो रहा है, 'सत्' के समीप रहते हुए भी जीव 'असत्' हो रहा है; चेतनके अछत जड है, आनन्दराशिके रहते हुए जीव दुःखी है, 'अविकारी' के होते हुए विकारयुक्त है। ऐसा अमूल्य रत्न हृदयमें है तो भी जीव दीन (दरिद्र) हो रहा है और सब पदार्थोंके होनेपर भी दुःखी है। दुःखी होनेका कारण केवल यही है कि वह ब्रह्मको नहीं जानता। ***'सकल जीव'*** इसलिये कहा कि समस्त जीवोंमें ब्रह्म हैं।'

नोट—५ सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'वेदान्ती पुकारा करते हैं कि '**सोऽहम्, सोऽहम्**' अर्थात् ब्रह्म मैं ही हूँ, वह मेरे हृदयहीमें अक्षत निर्विकार सच्चिद्घनानन्दराशि बैठा है, परन्तु इस दन्तकथासे कुछ फल प्राप्त नहीं। कहनेवाले सब प्राणी जगत्में दीन और दुःखी देख पड़ते हैं। वह हृदयस्थ ब्रह्म बाहर आकर उन दीन-दुःखियोंकी रक्षा नहीं करता'। (ख) दीन-दुःखी होनेका कारण नाममाहात्म्य न जानना है। (सू० प्र० मिश्र)

नोट—६ ***'व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी'*** कहकर सूचित किया कि वह बड़ा ही अद्भुत है, कहनेको तो एक है पर चराचरमें स्थित है और जिस चराचरमें व्याप्त है उसके विनाश होनेपर भी वह ब्रह्म अविनाशी ही बना रहता है। ऐसा ब्रह्म भी नामके अधीन है।

नोट—७ ऐसे आनन्दराशि ब्रह्मके हृदयस्थ रहते भी जीव दुःखी है इस कथनमें 'विशेषोक्ति और विरोधाभास' का सन्देह संकर है।

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥ ८॥

शब्दार्थ—**निरूपन** (निरूपण)=प्रकाश, भलीभाँति उसका यथार्थ स्वरूप, अर्थ, माहात्म्य इत्यादि जानना, समझना और उसपर विश्वास करना, विवेचनापूर्वक निर्णय, विचार। वर्णन, कथन, कीर्त्तन। (सुधाकर द्विवेदीजी) '**जतन**'=यजन, अभ्यास, उपाय, यत्न, रटना, जपना, रमना, अभ्यास करना।

अर्थ—वही ब्रह्म, नामका निरूपण करके नामके जपनेसे (वा, नामरूपी यत्नसे), ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रत्नसे मोल॥ ८॥*

टिप्पणी—१ (क) 'ब्रह्म रत्न है। उसका जानना मोल है। बिना जाने जीव दुःखी है। ब्रह्मका प्रकट होना मोलका प्रकट होना है। जैसे रत्नके भीतर मोल था, उसी तरह ब्रह्महीमें ब्रह्म प्रकट हुआ। ***'जतन'*** जोखनेको कहते हैं। जौहरी रत्नका निरूपण बुद्धिसे करते हैं और उसको जोखते हैं, इसी प्रकार रामनामका अर्थ बुद्धिसे निरूपण करते हैं और उसे जपते हैं। जपना ही जोखना है।' अथवा, (ख) 'जैसे रत्न और मोल पृथक् नहीं, वैसे ही रामनाम और ब्रह्म पृथक् नहीं। रत्नको जौहरी निरूपण करता और जोखता है, रामनामके जौहरी साधु हैं। रत्नके भीतर मोल है, वैसे ही नामके भीतर ब्रह्म है। बिना निरूपण और जतनके मोल प्रकट नहीं होता, इसी प्रकार रामनामके निरूपण और यत्नके बिना ब्रह्म प्रकट नहीं होता। (ग) रत्न और नाममें यहाँतक सम रूपक दिखाया। आगे नाममें विशेषता यह कहेंगे कि रत्नके मोलका पार है और 'नामप्रभाव' अपार है। (घ) ***'मोल रतन तें'*** का भाव यह है कि रत्न तो प्रथमसे ही रहा है; पर मोल प्रकट नहीं था, सो प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्म तो हृदयमें रहा ही है पर प्रकट नहीं था, सो प्रगट हुआ।' अथवा, (ङ) 'ब्रह्म और प्रकट होना दो बातें हैं। ब्रह्म रत्न है और प्रकट होना

* दूसरा अर्थ—नामहीके यत्नसे नामनिरूपण करते-करते (नाममाहात्म्य कहते-कहते) हृदयस्थ ब्रह्म प्रकट हो जाता है। जैसे रत्नकी प्रशंसा करते-करते बिक जानेपर उससे मूल्य (द्रव्य) प्रकट हो जाता है। (मा० प०)

मोल है। इसी तरह रत्न और मोल दो बातें हैं। जैसे मोल और रत्न पृथक् नहीं, वैसे ही ब्रह्म और उसका प्रकट होना पृथक् नहीं।' अथवा, (च) *'नाम निरूपन'* और *'नाम जतन'* ये ही रत्न हैं। इन्हींसे ब्रह्मरूपी मोल प्रकट होता है। नामनिरूपणसे ब्रह्म प्रकट होता है; ऐसा कहनेसे यह पाया जाता है कि नामके अर्थमें निर्गुण ब्रह्म है। बिना ब्रह्मके प्रकट हुए *'नाम निरूपन नाम जतन'* व्यर्थ जान पड़ता है, वैसे ही बिना मोलके रत्न व्यर्थ है।

नोट—*'नाम निरूपन'* इति। नामका रूप, अर्थ, महिमा जो नाम प्रकरण दोहा १७ से २८ (२) तकमें कहा है और जैसा विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली, श्रीसीतारामनाम-प्रताप-प्रकाशादि ग्रन्थोंमें दिया है, उसे विचारना, समझना यह निरूपण है। विनयपत्रिकामें, यथा— *'राम (नाम) सुमिरन सब बिधि ही को राज रे॥ रामको बिसारिबो निषेध सिरताज रे॥ रामनाम महामनि फनि जगजाल रे। मनि लिये फनि जिये व्याकुल बिहाल रे॥ रामनाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान बेद पंडित पुरारि रे॥ रामनामप्रेम परमारथ को सारु रे। रामनाम तुलसी को जीवन अधार रे॥*(६७), *'राम राम राम जीय जौ लों तू न जपिहै। तौ लों जहाँ जैहै तहाँ तिहूँ ताप तपिहै।'*(६८), *'सुमिरु सनेह सों तूं नाम राम राय को। संबरु निसंबरी को सखा असहाय को। भागु है अभागेहू को गुन गुनहीन को। गाहक गरीब को दयालु दानि दीन को॥ कुल अकुलीन को सुने न कोउ माषिहै। पांगुरे को हाथ पांय, आँधरे को आँखि है॥ माय बाप भूखे को, अधार निराधार को। सेतु भवसागर को हेतु सुख सार को॥ पतित पावन रामनाम सों न दूसरो। सुमिरें सुभूमि भयउ तुलसी सो ऊसरो॥'*(६९) इत्यादि, विनयमें बहुतसे पद हैं उन्हें देखिये। कवितावली, यथा—*सोच संकटनि सोच संकट परत, जर जरत, प्रभाउ नाम ललित ललाम को। बूड़ियौ तरति बिगरीयो सुधरति बात, होत देखि दाहिनो सुभाउ बिधि बाम को॥ भागत अभाग अनुरागत बिराग भाग जागत आलसी तुलसीहूँ से निकाम को। धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति, आई मीचु मिटति जपत रामनाम को॥'*(क० उ० ७५) इत्यादि।

'जिमि मोल रतन तें' इति।

(१) पं० रामकुमारजीके भाव ऊपर दिये गये। और भाव ये हैं—

(२) रत्नको यदि हम जान लें कि यह पोखराज है, हीरा है इत्यादि, तो नामके (जाननेके) कारण उसका बहुमूल्य होना प्रकट हो जाता है। ऐसे ही नामको गुरु, शास्त्रों आदिद्वारा जानकर अभ्यास करनेसे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

(३) रत्नमें उसका मूल्य गुप्त रहता है। यदि वह कुँजड़ेके हाथ पड़ा तो वह पत्थर ही समझता है, वह उसके गुणको क्या जाने? वही जौहरीके हाथ लगा जो उसका पारखी है तो उसका यथार्थ गुण और मोल प्रकट होता है कि हजार, लाख, करोड़..... कितनेका है। वैसे ही नाम रत्न है; उसके जापक ही (जो उसके स्वरूप, अर्थ और महत्त्वको जानते हैं) उसके पारखी हैं, जिनको पाकर ब्रह्मरूपी मोल नामसे प्रकट होता है।

इस दृष्टान्तसे भी नामको ब्रह्मसे बड़ा प्रामाणिक ठहराया। जैसे, रत्न, मुहर, रुपयेसे दूसरी वस्तु मोल लेते हैं। जिससे मोल लेते हैं वह वस्तु बड़ी मानी जाती है; रत्न ऐसे भी होते हैं कि उससे राज्यतक मोल ले लेते हैं। इसी प्रकार नामरूपी रत्नके अभ्याससे नामीका प्रकट होना ही मानो नामीको नामसे मोल लेना है। यहाँ 'उदाहरण अलंकार' है।

(४) 'जैसे रत्नसे द्रव्य। अर्थात् जैसे किसी अज्ञके पास रत्न है, वह न तो उसका प्रभाव जानता है और न व्यवहार। जब किसी जौहरीद्वारा उसे बोध होगा कि यह बहुमूल्यका है तो उसकी दीनता जाती रहेगी। परन्तु दुःखारी बना है क्योंकि न तो वह उससे क्षुधाकी निवृत्ति कर सकता है, न ओढ़ सकता है। यह 'दुःख' तभी जायगा जब वह उसका 'यत्न' भी कर लेगा। अर्थात् जब वह उस रत्नको बेचकर उसका मोल प्रकट करके उस द्रव्यसे अन्न-वस्त्र आदि आवश्यक पदार्थ लेगा। वैसे ही नाम रत्नके

यथार्थ ऐश्वर्यको जाननेवाले सन्त सद्गुरु हैं। उनके द्वारा जब यह जीव निश्चय करके नामावलम्बी होकर श्रीरामनामका रटन, कीर्त्तन 'तथा तथ्य' करेगा तब वह 'हृदय अछत अन्तर्यामी व्यापक ब्रह्म भी प्रकट हो जायगा जिसका साक्षात्कार होनेसे वह मायादिकी परवशतारूप दीन-दशा तथा जन्म-मरणादि संसृति दुःखसे निवृत्त हो जायगा। यह रामनामका ऐश्वर्य है।' (श्रीनंगे परमहंसजी)

(५) रत्नके परखनेसे अथवा रत्नका व्यापार करनेसे मोल प्रकट होता है। वैसे ही रामनामका अर्थ समझना उसका परखना है और जपना व्यापार है। मोल अर्थात् द्रव्य निर्गुण ब्रह्म है सो प्रकट हो जाता है। (मा० प्र०)

(६) हृदयरूपी पर्वत-कन्दरामें श्रीराम-ब्रह्मरत्न रहते हैं और उन ब्रह्ममें ब्रह्मसुख रहता है। नामनिरूपणयुक्त नाम जपनेसे ब्रह्मसुख प्रकट होता है। जीव रत्नी, सच्चिदानन्द रत्न, नाम जौहरी, ब्रह्मानन्द मोल है। (मा० मा०)

(७) 'जैसे मोल रत्नसे' का भाव यह है कि रत्न चाहे किसी भी गुह्य स्थलमें क्यों न हो पर यदि कोई मोल लेकर जावे तो उसको प्रकट मिलता है। (पं०)

(८) ऐसे समर्थ प्रभुके हृदयमें रहते हुए भी जीव क्यों दुःखी है, इसका समाधान ***'नाम निरूपन'*** में करते हैं। ***'नाम निरूपन'***—किस नामका ? भगवान्‌के तो अनन्त नाम हैं। हमारे अधिकारके अनुसार कौन-सा भगवन्नाम हमारे उपयुक्त है, यह अधिकार-निर्णयपूर्वक प्राप्त दीक्षा और साथ ही नामके स्वरूप, माहात्म्य आदिका ज्ञान प्राप्त करके नाम जपना चाहिये। नाम-निरूपणसे दुःख-दैन्य तो चला जाता है किन्तु आनन्दोपलब्धि नहीं होती। नामका जप करनेसे वह ब्रह्मस्वरूप प्रकट होता है। उसका अपरोक्ष साक्षात्कार होता है, ब्रह्मतत्त्व हृदयमें व्यक्त हो जाता है, इन्द्रियाँ निरुद्ध हो जाती हैं, मनोनाश हो जाता है और हृदयका वह वासुदेव सचमुच अन्तःकरणमें देदीप्यमान हो उठता है……निर्गुण उपासकोंके लिये इस प्रसंगमें अत्यन्त सुन्दर नामसाधनका निर्देश है। समस्त निर्गुण सन्तमत गुरुको परमात्मा मानते हैं और दीक्षापर उनका अत्यन्त बल है। अतः इस निर्गुण साधनामें ***'नाम निरूपन'*** से दीक्षातत्त्व सूचित किया गया है। आगे सगुणोपासकके लिये दीक्षाका कहीं प्रतिबन्ध नहीं बताया है। (श्रीचक्रजी)

नोट—इस प्रसंगमें व्यापकादिगुणविशिष्ट ब्रह्म (अव्यक्त) के हृदयमें रहते हुए भी जीवका ***'दीन दुखारी'*** होना तो बताया गया, परन्तु ***'नाम निरूपन'*** पूर्वक नामजपद्वारा उसका प्रकटमात्र होना ही यहाँ कहा, जीवका सुखी होना स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहा गया। तो क्या यह समझा जाय कि जीव फिर भी दुःखी ही रहता है? नहीं। यहाँ प्रसंग केवल नामका अपार प्रभाव दिखानेका है, जीवके दुःखी-सुखी होनेके कथनका नहीं। इसलिये सुखी होनेके विषयमें स्पष्ट उल्लेखका प्रयोजन नहीं। दूसरे यहाँ ब्रह्मके हृदयमें रहते हुए भी जीवका दुःखी होना और फिर नामजपसे उसका प्रकट होना कहनेसे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म बिना ***'नामनिरूपन नाम जतन'*** के अप्रकट था, वह इस साधनसे प्रकट हुआ। जैसे पूर्व अप्रकट होना केवल आशयसे जनाया वैसे ही यहाँ प्रकट होनेके कथनमात्रसे जीवका सुखी होना भी सूचित कर दिया गया है।

ब्रह्मका साक्षात् प्रकट होना, उसका हृदयमें साक्षात्कार होना एवं उसकी महिमाको जान लेना—ये सब अर्थ ***'सोउ प्रगटत'*** के हो सकते हैं। इन तीनों प्रकारोंसे जीव सुखी होता है। प्रह्लादजीके लिये नामके साधनसे ही ब्रह्म प्रकट हुआ और वे सुखी हुए। साक्षात्कार तथा महिमाका ज्ञान होनेसे जीवके सुखी होनेका प्रमाण एक तो अनुभव ही है, दूसरे श्रुति भी प्रमाण है। यथा—**'जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।'** (श्वेताश्वतर उ० ४। ७), **'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।'** (श्वे० उ० ६। १२) अर्थात् उस परमात्माकी सेवा करनेसे जब जीव उसकी महिमाको जानता है तब उसका शोक नष्ट होता है। अपने हृदयमें स्थित उस परमात्माका जब साक्षात्कार कर लेते हैं, तब उन्हींको नित्यसुख प्राप्त होता है, दूसरोंको नहीं।

दोहा—निरगुन तें येहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥ २३॥

अर्थ—इस प्रकार निर्गुण (ब्रह्म) से नाम बड़ा है और उसका प्रभाव अपार है। अब अपने विचारानुसार नामको रामसे बड़ा कहता हूँ॥ २३॥

नोट—१ *'येहि भांति'* अर्थात् जैसा ऊपर दृष्टान्तोंद्वारा *'रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना।'* (२१।४) से लेकर *'नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥'* (२३।८) तक उनके गुणोंको बताकर सिद्ध कर दिखाया है।

नोट—२ गोस्वामीजीने पूर्व कहा था कि *'को बड़ छोट कहत अपराधू'* तो यहाँ बड़ा कैसे कह दिया? इसके विषयमें पूर्व *'को बड़ छोट.....'* इस चौपाईमें भी लिखा जा चुका है और यहाँ भी कुछ लिखा जाता है।

गोस्वामीजीने इस प्रश्नका उत्तर *'एहि भांति'* इन दो शब्दोंमें स्वयं ही दे दिया है। पूर्व यह भी कहा था कि *'सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू'* सो यहाँतक गुण कहकर दोनोंमें भेद बताया और कहते हैं कि इन गुणोंके भेदको समझकर हमारे मतमें जो आया सो हम कहते हैं, दूसरे जो समझें। भाव यह है कि तत्त्व-परत्वमें नाम-नामी-सरिस हैं पर जो सौलभ्य आदि गुण नाममें हैं वे नामीमें नहीं हैं और नामहीसे नामी भी सुलभ हो जाता है। तत्त्व-परत्वमें, ऐश्वर्य-पराक्रममें, दिव्यगुणोंमें, नाम-नामीमें न कोई बड़ा है न कोई छोटा, दोनों समान हैं, इनमें छोटाई-बड़ाई कहना अपराध है। उपासकोंको नाम सुलभ है; इस गुणसे वे नामको बड़ा कहते हैं।

गोस्वामीजीने यह विचार जहाँ-तहाँ अन्य स्थलोंपर भी दर्शित किया है, यथा *'प्रिय न रामनाम तें जेहि रामौ। ताको भलो कठिन कलिकालहु आदि मध्य परिनामौ॥ राम ते अधिक नाम करतब जेहि किये नगर गत गामो।'* (वि० २२८) श्रीहनुमान्‌जीने भी ऐसा ही कहा है, यथा—**'रामत्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चला मतिः। त्वया तु तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥'** (हनुमत्-संहितायाम्) अर्थात् हे श्रीरामजी! मेरा निश्चल मत है कि आपका नाम आपसे बड़ा है। आपने तो एक अयोध्यामात्रको तारा और आपका नाम तीनों लोकोंको तारता है। अतएव गोस्वामीजीसे रहा न गया; उन्होंने कह ही डाला।

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि—ग्रन्थकारका आशय यह मालूम होता है कि उनको जो ईश्वरकी प्राप्ति हुई है वह न निर्गुणसे और न सगुणसे, किन्तु केवल नामद्वारा हुई है। अतएव वे नामहीको सबसे बड़ा मानते हैं।

बाबा जानकीदासजी कहते हैं कि—(क) 'गोस्वामीजीने श्रीरामजीके दो स्वरूप दिखाये हैं। जब उन्होंने नामका स्वरूप कहा तब नाम-नामीका अभेद कहा और जब नामका अंग कहने लगे तब कहते हैं कि रामसे नाम बड़ा है। श्रीरामजीके दो स्वरूप हैं—पर और अपर। श्रीमनु-शतरूपाजीके लिये जो अवतार हुआ वह पर है, क्योंकि वह ज्यों-का-त्यों प्रादुर्भूत हुआ है उन्हींके नामकी वन्दनास्वरूप, अंग और फल कहकर की। अन्य तीन कल्पोंके अवतारकी कथा जो आगे कही है वे अपर स्वरूप हैं; क्योंकि उनमें श्रीमन्नारायण और वैकुण्ठवासी विष्णुभगवान् श्रीरामस्वरूपसे अवतरे हैं। गोस्वामीजीने सूक्ष्मरूपसे दोनों स्वरूप यहाँ दिखाये। जब उन्होंने कहा कि *'बंदौं नाम राम रघुबर को'* और फिर कहा कि *'समुझत सरिस नाम अरु नामी'*, तब परस्वरूप दिखाया। और जब कहा कि 'अगुण-सगुण' से नाम बड़ा है तब कहते हैं—*'कहउँ नाम बड़ राम तें।'* सगुण राम अपर-स्वरूप हैं। यदि उन्हीं रामसे बड़ा कहें जिनकी वन्दना करते हैं तो ठीक नहीं; क्योंकि इसमें दो विरोध पड़ते हैं—एक तो पूर्व नाम-नामीको सरिस कहा, दूसरे अगुण-सगुणसे नामको बड़ा कहते हैं। यहाँ प्रकरण अगुण-सगुणका है, सगुण रामसे बड़ा कह रहे हैं। *'बंदौं नाम राम रघुबर'* वाले 'राम' का यहाँ न प्रकरण है न प्रयोजन ही। (मा० प्र०) (ख) क्षीरशायी आदि तथा साकेताधीश परात्पर ब्रह्म रामके अवतारोंके प्रमाण ये हैं—

'ज्ञात्वा स्वपार्षदौ जातौ राक्षसौ प्रवरौ प्रिये। तदा नारायणः साक्षाद्रामरूपेण जायते॥' (१), **'प्रतापी राघवसखा भ्रात्रा वै सह रावणः। राघवेण तदा साक्षात्साकेतादवतीर्यते॥'** (२), **'भार्गवोऽयं पुरा भूत्वा स्वीचक्रे नामतो विधिः। विष्णुर्दाशरथिर्भूत्वा स्वीकरोत्यधुना पुनः ॥'** (१), **संकर्षणस्ततश्चाहं स्वीकरिष्यामि शाश्वतम्। एकमेव त्रिधा जातं सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे॥'** (२), (मा० प्र०) अर्थात् अपने दो श्रेष्ठ पार्षद राक्षस हो गये हैं यह जानकर साक्षान्नारायण श्रीरामरूपसे प्रकट होते हैं। १। श्रीरामजीका सखा प्रतापी जब भाईसहित आकर रावण होता है तब साकेतलोकसे साक्षात् श्रीरामजी उनके उद्धारके लिये अवतीर्ण होते हैं। २। (शिव-सं०) पूर्वकालमें विष्णुभगवान् भार्गवरूपसे प्रकट हुए थे, फिर दाशरथी होकर वही (राम) नाम स्वीकार किया है। १। इसी प्रकार मैं संकर्षण नामसे प्रकट होऊँगा। एक ही ब्रह्म सृष्टि-स्थिति-संहारके लिये तीन रूप हुआ है। २।

नोट—३ ***'नाम प्रभाउ अपार।'*** राम-नाम मन्त्रमें यह भारी प्रभाव है कि निर्गुण ब्रह्मको प्रकट करके जीवोंका कल्याण करते हैं; इसी कारण ***'नाम प्रभाव अपार'*** कहा और निर्गुणसे नामको बड़ा कहा, क्योंकि उसीके प्रभावसे वह प्रकट होता है। वह स्वयं अपनेको व्यक्त नहीं कर पाता और न दुःख-दीनताको मिटा सके। नामने स्वयंको प्रकाशित किया, हृदयको शुद्ध किया, इन्द्रियनिग्रह किया और मनोनाश सम्पन्न किया। इसके पश्चात् ही ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित हुआ अर्थात् ब्रह्मतत्त्वकी अनुभूतिमें बाधक मन्त्र, विक्षेप, आवरणके तीनों पर्दे दूर किये। (श्रीचक्रजी)

नोट—४ ***'कहउँ नाम बड़ राम तें'''*** इति। (क) अर्थात् अब इसका प्रतिपादन करूँगा कि सगुण ब्रह्म रामसे भी नाम बड़ा है। (ख) नाम और नामीमें अभेद कह आये हैं—***'समुझत सरिस नाम अरु नामी।'*** इससे नामका महत्त्वाधिक्य नहीं सिद्ध होता है। अतः गोस्वामीजी नामको रामसे बड़ा बताते हुए कहते हैं कि यह शास्त्रीय बात नहीं है। यह वर्णन तो मेरे विचारके अनुसार है। **'नानापुराणनिगमागमसम्मतम्'** की बात नहीं है; यहाँ **'क्वचिदन्यतोऽपि'** की बात है। (श्रीचक्रजी)

राम भगत-हित नर-तनुधारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥ १॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होंहिं मुद मंगल बासा॥ २॥

शब्दार्थ—**संकट**=दुःख, क्लेश। **सुखारी**=सुखी। **अनयासा** (अनायास)=बिना परिश्रम, सहज ही। **बासा**=निवास-स्थान, रहनेकी जगह।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजी भक्तोंके लिये मनुष्य-शरीरधारी हुए और दुःख सहकर उन्होंने साधुओंको सुखी किया। १। पर, भक्त नामको प्रेमसहित जपते-जपते बिना परिश्रम ही आनन्द-मंगलके निवास-स्थान हो जाते हैं॥ २॥

नोट—१ यहाँसे ग्रन्थकार उपर्युक्त वचन ***'कहउँ नाम बड़ राम तें'*** को अनेक प्रकारसे पुष्ट करते हैं। ***'राम भगत हित'''''।'*** (२४। १) सातों काण्डोंका बीज है। २४ (२) ***'नामु सप्रेम जपत'*** के चरण मूल सूत्रके समान हैं, जिनकी व्याख्या आगे दो दोहोंमें है।

नोट—२ ***'भगत हित नर तनु धारी'***, यथा—***'तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥ सो केवल भगतन्ह हित लागी।' (१। १३), 'सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा॥'*** (अ० २६५), ***'राम सगुन भए भगत प्रेम बस।', 'सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति माया धनी। अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी।'*** (१। ५१), ***'भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तन भूप।'*** (७। ७२) दोहा ११६ (२) भी देखिये।

टिप्पणी—१ ***'नर-तनुधारी'*** इति। भाव यह कि नरतन धरनेमें हीनता है। यही समझकर नारदजीने शाप दिया कि ***'बंचेहु मोहिं जवनि धरि देहा।'''*** (१। १३७) यदि नरतन धरना उत्तम होता तो यह शाप क्यों कहलाता? श्रीरामचन्द्रजीको तन धरना पड़ा, इस कथनका भाव यह है कि वह तन सनातन (सदा) यहाँ नहीं रहता और नाम सनातन बना रहता है। सो वे रामजी ***'तनुधारी'***

हुए, अर्थात् अपनी प्रतिष्ठासे हीन हुए, ईश्वरसे नर कहलाये, बड़ा परिश्रम करके अनेक शत्रुओंसे लड़कर साधुओंको सुखी किये.....।'

नोट—३ विष्णुभगवान्, वैकुण्ठभगवान् और क्षीरशायी श्रीमन्नारायण चतुर्भुज हैं; इनका नरतन धारण करना यह है कि चतुर्भुजरूपसे द्विभुजरामरूप धारण करते हैं। वैकुण्ठादि स्थानोंको छोड़कर पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं। और, साकेत-विहारी परात्पर परब्रह्म राम नित्य द्विभुज हैं। नारदपांचरात्र, आनन्दसंहिता, सुन्दरीतन्त्र आदिमें इसके प्रमाण हैं, यथा—'**आनन्दो द्विविधः प्रोक्तो मूर्तश्चामूर्त एव च। अमूर्तस्याश्रयो मूर्तः परमात्मा नराकृतिः॥**' (पांचरात्र), '**स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्। परं च द्विभुजं रूपं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्॥**' (आनन्दसंहिता), '**ययौ तथा महाशम्भू रामलोकमगोचरम्। तत्र गत्वा महाशम्भू राघवं नित्यविग्रहम्। ददर्श परमात्मानं समासीनं मया सह। सर्वशक्तिकलानाथं द्विभुजं रघुनन्दनम्॥ द्विभुजाद्राघवान्नित्यात्सर्वमेतत्प्रवर्तते।**' (सुन्दरी तन्त्र), '**यो वै वसति गोलोके द्विभुजस्तु धनुर्धरः। सदानन्दमयो रामो येन विश्वमिदं ततम्॥**' (सदाशिवसंहिता), (वाल्मी० १। १। १ शिरोमणिटीकासे उद्धृत) इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि श्रीरामजी नित्य द्विभुज नराकृति हैं। उनके '***नर-तनुधारी***' कहनेका भाव यह है कि साकेतसे पृथ्वीपर आविर्भाव होनेपर वे अपने चिदानन्दमय शरीरमें प्राकृत नरवत् बाल्य, युवादिक अवस्थाएँ ग्रहण करते हैं और मनुष्य-सरीखे नरनाट्य चरित करते हैं। दूसरा भाव ऊपर टिप्पणीमें दिया गया है।

नोट—४ '***सहि संकट***', यथा—'***अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात। बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बर्षा बात॥***' (अ० २११)

नोट—५ यहाँ 'राम' से नाममें विशेषता जनानेके लिये ग्रन्थकारने एकके साथ '***नर तनुधारी***' और '***सहि संकट***' शब्दोंका और दूसरेके लिये '***अनयासा***' शब्दका प्रयोग किया है। भाव यह कि श्रीरामजीने अवतार लिया और वनगमन तथा दुष्टोंके दलनमें अनेक कष्ट झेले, तब त्रेतामें साधुओंको सुखी कर सके और नाममहाराज बिना परिश्रम केवल सप्रेम उच्चारण करनेहीसे मुद-मंगलका घर ही बना देते हैं कि स्वयं आनन्द लूटें और दूसरोंको भी सुख दें, तरें और तारें।

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि—(क) इस प्रसंगमें जो एक गुण रूपमें कहा है वही नाममें अनन्त कहा है। क्योंकि जो गुण रूपमें होता है वही नामद्वारा लोकमें प्रसिद्ध होता है। पुनः, नामकी जो प्रशंसा होती है वह रूपमें स्थित होती है; जैसे भक्तमालमें भक्तोंके नामकी प्रशंसा सुनकर सब उनके रूपको धन्य मानते हैं। नाममें विशेषता यह है कि रूप तो एक समय प्रसिद्ध और एक स्थलमें स्थित था। जो-जो गुण उस रूपमें स्थित हैं, अर्थात् अवतार लेकर जो श्रीरामजीने नरनाट्य करते हुए लीलामात्र दुःख सहकर लोगोंको सुखी कर अपने गुण प्रकट किये, उन्हीं गुणोंको लेकर नाम दसों दिशाओंमें चला। जैसे एक मूल (वा, बीज) से कोई बेल ज्यों-ज्यों फैलती है त्यों-त्यों उसकी शाखाएँ बढ़ते-बढ़ते अनन्त हो जाती हैं, जिससे उनके दल, फूल, फल आदिसे लोकका कल्याण होता है। इसी तरह नाम-जप-स्मरणादिसे लोकमात्रका भला है जिससे उस गुणकी अनन्त देशों—स्थलोंमें प्रशंसा होती है। यही गुणका नाममें अनन्त होना है। रूप मूल है, नाम बेल है, गुण शाखा है, गुणका सर्वत्र नामद्वारा फैलना उसका अनन्त होना है; नामका जप-स्मरण आदि उस बेलके दल, फूल, फलादिका सेवन करना है। (ख)—'***नाम सप्रेम जपत.....***' इति। पूर्व अर्धाली '***राम भगत हित.....***' के अन्तर्गत यावत् गुण (उदारता, वीरता आदि) हैं, वे सब नाममें हैं। नामके भीतर रूपका प्रभाव सदा रहता है, यह लोकमें प्रसिद्ध देखा जाता है, क्योंकि धर्मात्माओंका नाम लोग स्मरण कर अपने-अपने व्यापारमें लगते हैं, अधर्मीका नाम कोई नहीं लेता।

नोट—६ यहाँसे लेकर '***नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।***' (२५। ८) तक 'अर्थान्तरन्यास लक्षण' अलंकार है। क्योंकि पहले साधारण बात कहकर उसका समर्थन विशेष उदाहरणसे किया गया है। पं० महावीरप्रसाद

वीरकवि लिखते हैं कि 'यहाँ उपमान रामचन्द्रसे उपमेय रामनाममें अधिक गुण कहना कि रामचन्द्रजीने नर-तन धारण किया....। यह व्यतिरेक अलंकार है।'

राम एक तापस-तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥ ३॥

शब्दार्थ—**एक**=केवल, गिनतीका एक। **तापस**=तपस्वी (यहाँ गौतम ऋषिसे तात्पर्य है)। **तापस-तिय**=गौतम ऋषिकी स्त्री, अहल्या। **सुधारी**=शुद्ध किया, भगवत्-विमुखका भगवत्-सन्मुख करना, सन्मार्गपर लगाना 'सुधारना' है। **तारना**=उद्धार करना, सद्गति देना, भवपार करना।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने एक तपस्वी गौतमकी (वा, एक तपस्विनी) स्त्रीहीको तारा और नामने करोड़ों दुष्टोंकी कुमतिको सुधारा। ३।

नोट—१ अहल्याजीकी कथा दोहा २१० (१२) में देखिये। संक्षिप्त कथा यह है कि इन्द्र इसके रूपपर मोहित था। एक दिन गौतमजीके बाहर चले जानेपर वह उनके रूपसे अहल्याके पास आया और उसके साथ रमणकर शीघ्र चलता बना। उसी समय मुनि भी आ गये। उसे अपना रूप धारण किये देख उससे पूछा कि तू कौन है और जाननेपर कि इन्द्र है, उन्होंने उसे शाप दिया। फिर आश्रममें आकर अहल्याको शाप दिया कि तू पाषाण होकर आश्रममें निवास कर। जब श्रीरामजी आकर चरणसे स्पर्श करेंगे तब तू पवित्र होकर अपना रूप पायेगी।

नोट—२ पहलेमें '**एक**' और वह भी '***तपस्वी***' ऋषिकी स्त्री, और दूसरेमें '***कोटि***' और वह भी '***खल***' (दुष्टों) की कुमतिरूपिणी स्त्री कहकर दूसरेकी विशेषता दिखायी। '***तापस-तिय***' से जनाया कि तपस्वी स्त्री तो तरने योग्य ही है, उसका तारना क्या! अधमका तारना काम है। रूपकी प्राप्ति सब काल अगम है और नाम सर्वत्र सुलभ है, इसीसे यह अनन्त लोगोंका उद्धार करता है।

सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'अहल्या अज्ञातसे परपुरुष-संग करनेसे दुष्ट हुई थी। यह खलोंकी कुमतिरूपी स्त्री परनिन्दादि अनेक दोषोंसे भरी हुई होती है। इसलिये एक और कोटिमें जितना अन्तर है उतना ही राम-ब्रह्म और उनके नाममें अन्तर है किन्तु अहल्यामें अल्प दोष और खलकुमतिमें अधिक दोष होनेसे कोटि-अधिक दोष-निवृत्ति करनेवाला नाम, एक—अल्पदोषयुक्त अहल्याके तारनेवाले रामसे अनन्तगुण अधिक है।'

श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि अहल्याने इन्द्रको अपना पति समझकर ही उनकी सेवा की, उसकी बुद्धिमें कोई दुर्भावना न थी। गौतमने उसे शाप दिया कि तेरी बुद्धि पत्थरके समान है। तू देवता और मनुष्यका भेद न जान सकी, तू पत्थर हो जा। देवताओंकी परछाईं नहीं पड़ती, अहल्याने इस ओर ध्यान नहीं दिया था। अहल्याका यह दोष बौद्धिक प्रमाद था, ऐसी भूलें अच्छे बुद्धिमानोंसे हो जाया करती हैं। वह पाषाण हो गयी किन्तु थी वह पवित्र। नामकी स्थिति दूसरी है। नामने जिनका उद्धार किया वे सब 'खल' थे, जान-बूझकर दुष्टता करना उनका स्वभाव था। उनकी बुद्धि 'कुमति' थी। उसमें प्रमाद नहीं था.... वह तो कुकर्मको ही ठीक बतानेवाली थी। [पर वाल्मीकीयके अनुसार अहल्याने जान-बूझकर यह घोर पाप किया था। यथा—'**मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन। मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात्॥**' (१। ४८। १९) इतना ही नहीं किन्तु उसने इस कर्मसे अपनेको कृतार्थ माना। यथा—'**अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना। कृतार्थास्मि....।**' (२०) इसीसे गोस्वामीजीने आगे '***कृत अघ भूरी***' शब्द उसके लिये लिखे हैं। अ० र० में केवल इतना लिखा है कि इन्द्रने गौतमके रूपसे उसके साथ रमण किया। अहल्याने जाना या नहीं, इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है।]

नोट—३ यहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर होनेसे 'तुल्य प्रधान गुणीभूत व्यंग' है। (वीर कवि)

श्रीबैजनाथजी—(क) दिशाएँ दस हैं। इसीसे अब यहाँसे केवल दस गुण-नामद्वारा कहेंगे। अहल्याके उद्धारमें 'उदारता' गुण प्रकट हुआ। देश-काल, पात्र-अपात्र कुछ भी न विचारकर निःस्वार्थ याचकमात्रको मनोवांछित देना उदारता है। यह गुण इसी चरितमें है क्योंकि वह तो पाषाण थी, न तो दर्शन ही कर

सकती थी और न प्रणाम। औरोंके उद्धारमें दर्शन या प्रणामादि कुछ हेतु प्रथम हुए तब उनका उद्धार हुआ और अहल्यामें वे कोई हेतु न थे; उसका उद्धार निःस्वार्थ और निर्हेतु था। यथा—***'अस प्रभु दीनबंधु हरि कारन रहित दयाल।'*** (१। २११) (ख) उदारता-गुण, यथा—भगवद्गुणदर्पणे, **'पात्राऽपात्राविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात्। वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्यं वचसा हरेः॥'** (अर्थ ऊपर आ गया है।)

नोट—४ यहाँसे नाम-साधनाका क्रम चलता है। मनुष्यकी बुद्धि ही दूषित होती है। दुष्टता-अपकर्मकी जड बुद्धि है। बुद्धि बुरे कर्मोंमें भलाई देखने लगती है। पाप करनेमें सुखानुभव होता है और उसीमें उन्नति जान पड़ती है। भगवन्नामके जपसे वह दुर्बुद्धि प्रथम सुधरती है। पाप कर्मोंमें दोष दीखने लगता है। स्वभाववश अपनी दुर्बलताके कारण वे छोड़े भले ही न जा सकें, परन्तु उनमें पतन दीख पड़ता है। वे अनुचित हैं, उनसे हानि होती है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। बुद्धि धोखा नहीं देती। दुष्कृत्य करके पश्चात्ताप होता है। इस प्रकार नाम-जप बुद्धिको पहले विशुद्ध करता है। (श्रीचक्रजी)

रिषि हित राम सुकेतु-सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥ ४॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥ ५॥

शब्दार्थ—**सेन**=सेना। **बिबाकी**=बे+बाकी=निःशेष, समाप्त। **दलइ**=दलता, नष्ट करता है।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने तो विश्वामित्रजीके लिये सुकेतु यक्षकी कन्या (ताड़का) को सेना और पुत्र-समेत समाप्त किया। ४। पर नाम दासोंकी दुराशाओंको दुःख-दोषसहित इस तरह नाश करता है जैसे सूर्य रात्रिका (नाश बिना श्रम सहज ही कर डालता है)। ५।

नोट—१ ***'रिषि हित'*** इति। (क) ऋषिसे श्रीविश्वामित्रजीका तात्पर्य है, क्योंकि इन्हींके लिये ताड़का आदिका वध किया गया। (ख) वीरोंके लिये स्त्रियोंका वध 'निषिद्ध' है; इसलिये ***'रिषि हित'*** मारना कहकर सूचित किया कि मुनिकी आज्ञासे उनके हितके लिये उसे मारा। ऋषिकी रक्षा न करनेसे क्षत्रियधर्ममें बट्टा लगता। अतएव दोष नहीं है।

नोट—२ सुकेतु एक बड़ा वीर यक्ष था। इसने सन्तानके लिये बड़ी तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न कर लिया। उनके वरदानसे इसके ताड़का कन्या हुई जिसके हजार हाथियोंके सदृश बल था। यह सुन्दको ब्याही थी। मारीच इसका पुत्र था। जब सुन्दको महर्षि अगस्त्यने किसी बातपर क्रुद्ध होकर शाप देकर मार डाला, तब यह अपने पुत्रोंको लेकर ऋषिको खाने दौड़ी, उसपर दोनों उनके शापसे घोर राक्षस-योनिको प्राप्त हुए। तबसे वह विश्वामित्रके आश्रममें मुनियोंको दुःख दिया करती थी। (वाल्मीकीय) विशेष १। २०९ (५)में देखिये।

नोट—३ ***'सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी'*** इति। श्रीरामजीने ताड़का और सुबाहुको मारा पर मारीचको बचा दिया था, यथा—***'बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥'*** (१। २१०) इस विचारसे दो-एक टीकाकारोंने ***'बिबाकी'*** का भाव यह लिखा है कि—(क) बि=पक्षी। ***'बिबाकी'*** पद देकर जनाया कि उड़नेवाला मारीच बाकी रह गया। (सू० मिश्र) (ख) मारीचको विशेष बचा रखा (मा० मा०) पर यह अर्थ चौपाईमें लगता नहीं। ***'सुत'*** से ***'सुबाहु'*** ही ले लिया जाय तो भी हर्ज नहीं। आश्रममें एक भी न रह गया वहाँसे सबको निःशेष कर दिया!

नोट—४ ***'सहित दोष दुख दास दुरासा.....'*** इति। यहाँ ताड़का उसके पुत्र और सेना क्या हैं? उत्तर—(क) दासकी बुरी आशाएँ दुर्वासनाएँ, ताड़का हैं। जैसे, ताड़का ऋषिका अनहित करती थी, वैसे ही दुराशा दासके विश्वासको जड़से उखाड़ फेंकती है। जब भक्त औरोंकी आशा करने लगा तब जान लो कि उसका विश्वास जाता रहा, और ***'बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।'*** इसी प्रकार, ***'अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि दारुन आस पिसाची'*** (वि० १६३) में आशाको पिशाची कहा है। जब आशा नहीं रहती तब हृदय निर्मल रहता है, यथा—***'बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि***

सब आसा॥' (कि० १६) पुनः यथा—*'जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे। प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे॥'* (वि० १६८) (ख) वहाँ ताड़काके दो पुत्र मारीच और सुबाहु, यहाँ दुराशाके दो पुत्र, दोष और दुःख। दुराशासे दोष और दुःख उत्पन्न होते हैं। (ग) सेनाका लक्ष्य *'सहित'* शब्दसे ध्वनित हो सकता है। सहित=स+हित=हितके सहित=हितैषी जो सेना उसके समेत। *'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि'*—यही दुःखदोषकी उत्साह बढ़ानेवाली सेना है।

नोट—५ यहाँ नाममें विशेषता दिखानेके विचारसे एकमें *'रिषि हित,* *'सुकेतु-सुता'* और *'बिबाकी'* और दूसरेमें *'दलइ जिमि रबि निसि नासा'* शब्दोंका प्रयोग हुआ। भाव यह कि विश्वामित्र ऋषिकी आज्ञासे उनके हितके लिये मारा; समस्त अस्त्र-शस्त्रविद्यामें निपुण और फिर ऋषि! वे तो स्वयं मार सकते थे, ये तो केवल निमित्तमात्र हुए। पुनः, ऋषिहितमें अपना भी स्वार्थ सिद्ध होना था, क्योंकि न मारते तो गुरु और पिता दोनोंकी अवज्ञा होती और जनकपुरमें विवाह क्योंकर होता ? *'सुकेतु-सुता'* से सूचित किया कि उसका पति भी न था, वह विधवा थी (नहीं तो पतिका नाम देते)। पुनः, मारीच मारा न गया वह बच रहा था और यहाँ दोष, दुःख, दुराशा तीनोंमेंसे कोई भी शेष नहीं रह जाता, जैसे सूर्यके उदयसे रात्रिका नामोनिशान भी नहीं रह जाता। पुनः सूर्य लाखों योजन दूर होनेपर भी बिना परिश्रम अन्धकारका नाश करता है, वैसे ही नाम दूरहीसे सब काम कर देता है। रामचन्द्रजीने तो निकट जानेपर इन्हें मारा, पर नाममहाराज तो इन्हें निकट ही नहीं आने देते।

श्रीचक्रजी—(क) श्रीरामद्वारा केवल उपस्थित विघ्नका नाश हुआ। आगे कोई राक्षस विघ्न न करेगा ऐसी कोई बात यहाँतक नहीं हुई। नाम-जापकके धर्मकी सदाके लिये निर्विघ्न रक्षा करता है। मनुष्यके धर्ममें बाधक हैं उनके दोष और दोष आते हैं दुःखके भयसे। दुःखसे छूटकर सुख पानेकी दुराशासे ही मनुष्य दोष करता है। (ख) पूर्व कह आये कि नामके जपसे प्रथम बुद्धि शुद्ध होती है पर बुद्धि शुद्ध होनेपर भी उसके निर्णयके विपरीत असत्कर्म अभ्यास-लोभादि अनेक कारणोंसे हो सकते हैं। अतः यहाँ बताते हैं कि नामजपका दूसरा स्तर है 'दोषोंका नाश'। बुद्धिके निर्णय कार्यमें आने लगते हैं। असत्कर्म, असदाचरण, अनीति, अन्याय छूट जाता है। (ग) दोषोंके छूट जानेपर भी मनमें अभावजन्य दुःख रहता है। पदार्थोंके मिलने या नष्ट होनेपर मनमें सोच होना दोषोंका बीज है। नाम-जप इस दुःखको नष्ट कर देगा। इस तीसरे स्तरमें जापक प्रभुका विधान एवं प्रारब्ध समझकर सदा सन्तुष्ट रहता है। (घ) दुःखके पश्चात् भी दुराशा रहती है। साधक अपने साधनके फलस्वरूप अनेक कामनाएँ प्रभुसे करता है, यह भी दुराशा है। नाम इस दुराशाका नाश करता है। जापक किसी लौकिक-पारलौकिक वैभवमें सुखकी आशा नहीं करता। सुखाशा न रहनेपर उधर आकर्षण हो नहीं सकता। इस तरह नाम जापकके धर्मकी सदाके लिये रक्षा करता है।

बैजनाथजी—यहाँ *'रिषि हित बिबाकी'* में प्रभुका 'वीर्य' (वीरता) गुण दिखाया है। क्योंकि अभी एक तो किशोरावस्था थी, दूसरे बालकेलिके धनुष-बाण धारण किये हुए हैं, तीसरे साधारण भी युद्ध अभीतक नहीं देखा था और चौथे एकाएक विकट भटोंका सामना पड़ गया तब भी मुखपर उदासीनता न आयी, मुख प्रसन्न ही बना रहा। इत्यादि, मनमें उत्साहसे वीररसकी परिपूर्णता है। (ख) भगवद्गुणदर्पणे, यथा—**'वीर्यं चाक्षीणशक्तित्वं वर्द्धमानातिपौरुषम्। अपि सर्वदशास्थस्य रामस्याविकृतिश्च तत्॥', 'त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रममहावीरो धर्मवीरः सदा स्वतः॥ पञ्चवीराः समाख्याता राम एव स पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातिः सर्ववीरोपलक्षणा॥**' अर्थात् श्रीरामजीकी शक्ति कभी क्षीणत्वको प्राप्त नहीं हुई, सदा अक्षीण है, उनका पौरुष अत्यन्त वर्द्धमान होता है और सर्व दशाओंमें वे निर्विकार रहते हैं—इसी गुणको वीर्य कहते हैं। कोई त्यागवीर होता है, कोई दयावीर, कोई विद्यावीर, कोई पराक्रममें महावीर और कोई धर्मवीर ही होता है पर श्रीरामजी इन पाँचों वीरताओंमें परिपूर्ण हैं। 'रघुवीर' यह कथन पाँचों वीरोंका उपलक्षण है, अर्थात् पाँचों वीरताओंसे युक्त होनेसे 'रघुवीर' कहा गया है। (ग) इस प्रसंगमें

भी पाँचों वीरताएँ हैं—पिताकी आज्ञा, ऋषिका हित और यज्ञकी रक्षामें 'धर्मवीरता'। ऋषियोंको खल सताते थे, उनकी करुणा मिटानेके लिये 'दयावीरता'। युद्धमें प्रसन्नतासे 'युद्धवीरता'। माता-पिताके त्यागमें भी प्रसन्न बने रहनेमें 'त्यागवीरता'। एक ही बाणसे सुबाहुको जला दिया इत्यादिमें 'बाण-विद्या-वीरता'। ये रूपमें प्रकट हुईं। यही सब गुण नामद्वारा संसारभरमें विस्तृत हुए। (घ) *'दलइ नाम जिमि रबि.....'* में तेज-गुण दिखाया। शौर्य, वीर्य और तेज ये 'प्रताप' के ही अंग हैं।

नोट—६ 'प्रथम ताड़का-वध है, दूसरे उसमें ऋषिका हित भी है; उसको पहले न कहकर यहाँ प्रथम अहल्योद्धार कहा गया, यह क्रम-भंग क्यों? यह शंका उठाकर उसका समाधान यों किया गया है कि—(क) प्रभुका सर्वोत्तम गुण 'उदारता' एवं 'कारण-रहित कृपालुता' है जो अहल्याके उद्धारमें पूर्ण रीतिसे चरितार्थ हुआ, औरोंके उद्धारमें कुछ-न-कुछ स्वार्थ भी लक्षित हो सकता है। पुनः (ख) इससे श्रीरामचन्द्रजीका ऐश्वर्य और ब्रह्मत्व भी प्रकट होता है, यथा—*'सखि इन्ह कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं।'* (बा० २२३), *'परसि जासु पदपंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥'* पुनः वह ब्रह्माजीकी कन्या, गौतम महर्षिकी पत्नी और पंचकन्याओंमेंसे है।* अतएव सब प्रकार मांगलिक जान उसको प्रथम कहा। पुनः, (ग) यहाँ प्रकरणके विचारसे क्रम-भंग नहीं है। यह नामयशका प्रकरण है, रामयशका नहीं। अतः प्रधानता नामचरित्रकी है, रामचरित्र तो एक प्रकार दृष्टान्तमात्र है। यदि दुराशाके नाशके पीछे कुमतिका सुधरना कहते तो क्रम उलटा हो जाता; क्योंकि बिना कुमतिका सुधार हुए दुराशाका नाश असम्भव है। यहाँ वही क्रम रखा गया है जो भवनाशका है। अर्थात् इसमें प्रथम कुमतिका सुधार होता है तब दुराशा एवं दुःखदोषका नाश होता है और तभी भवभय छूटता है। कुमतिके रहते दुराशा आदि तो बढ़ते ही जाते हैं जिससे भवभय छूट ही नहीं सकता। श्रीरामनामके प्रतापसे कुमति, दुराशा आदिका क्रमशः नाश होता है। आगे भवनाश कहते ही हैं। दोहा २८ (८) टिप्पणी देखिये। पुनः, (घ) प्रभुने अवतार लेकर प्रथम उदारता-गुण ही प्रकट किया कि जीवमात्रको भवसागरसे पार कर दें, तब वेदोंने आकर प्रार्थना की कि मर्यादा न तोड़िये, जो कोई किंचित भी भक्ति करे उसीका उद्धार कीजिये, तब प्रभुने प्रतिज्ञा की कि जो तन-मनसे रूपके दर्शनमात्र या नामका उच्चारणमात्र करे उसका उद्धार कर देंगे। ऐसा भगवद्गुणदर्पणमें कहा है। निर्हेतु उद्धार अहल्याहीका है—यह उदारता-गुण इसीमें प्रकट हुआ। इसलिये उसीको प्रथम रखा। (बैजनाथजी)

भंजेउ राम आपु भवचापू। भव-भय-भंजन नाम-प्रतापू॥ ६॥

शब्दार्थ—**भंजना**=तोड़ना। **आपु**=स्वयं, अपनेहीसे। **भव**=शिवजी। **चाप**=धनुष। **भव**=संसार; जन्ममरण, आवागमन।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं ही *'भव'* (शिवजी) का धनुष तोड़ा और नामका प्रताप आप ही *'भव'*-भयको नाश कर देनेवाला है॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) भव-चाप श्रीरामजीसे ही टूटा, वैसे ही भव-भयका नाश श्रीरामनाम ही करते हैं, अन्य कोई नहीं कर सकता। 'भव-चाप' से 'भव-भय' अधिक है। (ख) यहाँ नाममें यह विशेषता दिखायी कि श्रीरामजीको जनकपुर स्वयं जाना पड़ा तब धनुष टूटा, ऐसा नहीं हुआ कि उनकी दृष्टि पड़नेसे ही वह टूट जाता, और यहाँ 'नाम' महाराजका प्रताप ही सब काम कर देता है। पुनः, भव-भय अति

---

* अहल्यादिको लोग पंचकन्या कहते हैं। वे प्रातः स्मरणीय तो हैं ही। शुद्ध श्लोक यह है—'अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा। पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्।' अर्थात् अहल्या, द्रौपदी आदि यह पंचक मनुष्य नित्य स्मरण करे, यह महापातकका नाशक है। 'पञ्चकं ना' का अपभ्रंश होकर पंचकन्या हो गया। बस इसीका लोगोंमें व्यवहार हो गया। आह्निक सूत्रावलि प्रथम भागकृत्य पुण्यश्लोक जनस्तुति ८२। आचारमयूखसे उद्धृत। ऋग्वेदीय ब्रह्मकर्म-समुच्चय आह्निक आचार प्रकरण, प्रातःस्मरण श्लोक ६। इन दोनोंमें कुन्तीकी जगह 'सीता' शब्द है। शेष श्लोक इन दोनोंमें ऐसा ही है। सम्भव है कि 'कुन्ती' का नाम 'सीता' भी हो।

दुस्तर है, नाम उसे नाश ही कर डालता है, जैसा प्रह्लादजीने कहा—'**रामनाम जपतां कुतो भयम्।**' (क० उ० ७०) में भी नामके प्रतापको प्रभुसे बड़ा कहा है, यथा—'***प्रभुहू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।***' [(ग) '***भव***' शब्द ध्यान देनेयोग्य है। शंकरजीने इस धनुषसे त्रिपुरका विनाश किया था। यह दण्ड एवं भयका प्रतीक है। '***भवभय***'—शंकरजीके और भी भयदायक आयुध हैं जिनमें त्रिशूल मुख्य है। श्रीरामजीने एक धनुष तोड़ा पर उनके त्रिशूल आदि अन्य भयप्रद आयुध बने ही रहे और नामका प्रताप '***भवभय***' को ही नष्ट कर देता है, आयुध रहें तो रहा करें, किंतु वे भयप्रद नहीं होते। शंकरजी प्रलयके अधिष्ठाता हैं और नामजापकोंके परमादर्श परम गुरु हैं। नामजापकोंकी उनके द्वारा रक्षा होती है; अतः मृत्यु या प्रलय आदिका भय जिसके वे अधिष्ठाता हैं, नामके प्रभावसे ही नष्ट हो जाता है। (श्रीचक्रजी)]

नोट—१ द्विवेदीजी '***भव भय भंजन***' का भाव यों लिखते हैं कि 'नामका प्रताप संसारभरके शापके भयको भंजन करता है। वा, नाम-प्रताप साक्षात् भव (महादेव) हीके भयको भंजन करता है। कथा प्रसिद्ध है कि विष पीनेके समय विषसे मर न जायँ इस भयसे महादेवजीने रामनाम स्मरण कर तब विषको पिया, इस बातको गोस्वामीजी पूर्व दोहा १९ (८) '***नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥***' में लिख आये हैं।

बैजनाथजी—(क) भवचाप तोड़नेमें '***आपु***' कहा। भाव यह कि अस्त्र-शस्त्र-विद्यादि किसी उपायसे नहीं तोड़ा, किंतु अपने करकमलसे तोड़ डाला और उसमें किंचित् परिश्रम न हुआ। इसमें श्रीरामजीका 'बल' गुण प्रकट हुआ, यथा—'***तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥***' (१। २३९), '***संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहु बलु।***' (१। २६१) 'बल' गुणका यही लक्षण है, यथा—भगवद्गुणदर्पणे—'**व्यायामस्य गुर्व्यां तु खेदाभावो बलं गुणः।**' (ख) यहाँ श्रीरामजीमें एक स्थानपर 'बल' दिखाया, वही गुण नाममें अनन्त स्थलोंमें दिखाया। (ग) '***भव-भय-भंजन***' यह नामका प्रताप है, नामके प्रतापसे भवभयभंजन सदा होता ही रहता है। उसका कारण यह है कि शौर्य-वीर्य-बल-तेज-उदारतादि गुणोंकी क्रिया जो रूपसे प्रकट हुई, वही नामके साथ लोकोंमें फैल गयी। वही यश वा कीर्त्ति है। कीर्त्तिको सुनकर जो शत्रुके हृदयमें ताप होता है और संसार स्वाभाविक ही डरने लगता है, उसीको 'प्रताप' कहते हैं। यथा—'***जाकी कीरति सुयश सुनि होत शत्रु उर ताप। जग डरात सब आपही कहिये ताहि प्रताप॥***' रूपके गुण नामके संगमें 'प्रताप' कहलाते हैं।

श्रीचक्रजी—नामके द्वारा क्रमशः बुद्धिशोधन, दोष-नाश, दुःख-परिहार, दुराशा-क्षय कह आये। यह उसके प्रतापसे भवभयका नाश कहा। त्रिशूल, दैहिक, दैविक, भौतिक ताप एवं मृत्यु, प्रलय, विनाश ये नाम-जापकको भयभीत नहीं करते। भव (संसार) में ऐसा कोई भय नहीं रह जाता जो उसे डरा सके। सम्पूर्ण जगत् उस दयामय, मंगलधाम, प्रभुकी क्रीड़ा है। प्रत्येक कार्य, प्रत्येक परिस्थिति उसी करुणासागरके सुकुमार करोंकी कृति है।—माता हँसे या बड़ा-सा मुख फैलाये, बच्चेके लिये तो दोनों क्रीड़ाएँ उसे हँसानेका ही कारण हैं।

भव-भयको भव-चापसे तुलनामें लाकर गोस्वामीजीने यहाँ अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। भगवान् शंकर वही हैं, परन्तु भक्तोंके लिये वे शिव, कल्याण-धाम, कुन्द-इन्दु-दर गौर सुन्दर हैं और दुष्टोंके लिये, संसाररत जीवोंके लिए प्रलयंकर, महारुद्र, महाकाल हैं। इसी प्रकार संसार भी वही है, किन्तु साधारण प्राणियोंके लिये उसमें विनाश-ही-विनाश है, दुःख-ही-दुःख है। अत्यन्त भयप्रद है संसार, परन्तु नाम-जापकके लिये तो भवका भय नष्ट हो जाता है। भव-भयप्रद नहीं रहता। यह तो उसके करुणामय प्रभुकी परम मंजुल क्रीड़ा है और है भी उसीको प्रसन्न करनेके लिये। ज्यों-का-त्यों रहता हुआ भी यह संसार उसके लिये आनन्ददायी, पवित्र, आह्लादमय हो जाता है।

नोट—२ '***प्रताप***' का भाव यह है कि नामका आभासमात्र आवागमनको छुड़ा देता है। जैसे यवनने

'हराम' शब्द कहा परन्तु उसमें 'राम' शब्द होनेसे वह तर गया, अजामिलने अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा, न कि भगवान्‌को, इत्यादि नामके प्रमाण हैं। (देखिये क० उ० ७६)

नोट—३ यहाँ मूलमें धनुष-भंगके पश्चात् दण्डकारण्यकी कथाका रूपक गोस्वामीजीने दिया है। अयोध्याकाण्ड समग्र छोड़ दिया, उसमेंसे कोई प्रसंग न लिया। इसका कारण पं० रामकुमारजी यह लिखते हैं कि 'मुनियोंकी रीति है कि प्रायः यह काण्ड छोड़ देते हैं। अथवा, इस काण्डको श्रीभरतजीका चरित्र समझकर छोड़ा। अथवा, इस काण्डमें कोई दृष्टान्त न मिला इससे छोड़ा। जैसा कि रावण-मारीच-संवाद और रावण-हनुमान्-संवाद इत्यादिमें मारीच और श्रीहनुमान्‌जी आदिने किया है। यथा—*'जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड। खरदूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड।'* (३। २५), *'धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता॥ हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृपदल-मद गंजा॥ खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥'* (५। २१) मन्दोदरीजीने भी बालकाण्डके पश्चात् अरण्यकाण्डकी कथा कही है, यथा—*'पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अगजगनाथ अतुल बल जानहु॥', 'बान प्रताप जान मारीचा।..... भंजि धनुष जानकी बिबाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥ सुरपतिसुत जानै बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥ सूपनखा कै गति तुम्ह देखी॥..... '* (६। ३६) इत्यादि।

पं० शिवलाल पाठकजी इसका कारण यह कहते हैं कि—'इन कथाओंका रूपक नाममें नहीं है। अतएव इन प्रसंगोंको छोड़कर दण्डकारण्यके पवित्र होनेकी कथा कही; क्योंकि नाम भक्तोंकी रसनापर स्थित हो भय नाश करता है और मनको पवित्र करता है।' (मानस मयंक) अथवा, पद्मपुराण श्रीरामाश्वमेध प्रसंगमें कहा है '**षट्काण्डानि सुरम्याणि यत्र रामायणेऽनघ। बालमारण्यकं चान्यत्किष्किन्धा सुन्दरं तथा॥ युद्धमुत्तरमन्यच्च षडेतानि महामते।**' (पाताल ६६। १६४) अर्थात् वाल्मीकीयरामायणमें अत्यन्त सुन्दर छः काण्ड हैं—बाल, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध और उत्तर। इससे यह भाव निकलता है कि अयोध्याकाण्ड करुणरसपूर्ण होनेसे 'सुरम्य' न मानकर उसका उल्लेख नहीं किया गया। (पं० रा० कु०)

बाबा हरिहरप्रसादजीका मत है कि बालकाण्डका विवाहादि शेष चरित धनुर्भंगके अन्तर्गत है, यथा—*'टूटतही धनु भयो बिबाहू।'* और समस्त अयोध्याकाण्ड और आधा अरण्यकाण्ड 'दण्डकवनपावनतान्तर्गत' है। अथवा, यहाँ काण्डक्रम नहीं है, नामका अधिक प्रताप वर्णन ही अभीष्ट है। अयोध्याकाण्ड माधुर्यचरितसे परिपूर्ण है, इसमें ऐश्वर्य नहीं है और यहाँ प्रसंग प्रतापका है; अतः जहाँ-जहाँ प्रतापके प्रसंग हैं, वहाँ- से लिये गये।

दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किय पावन॥ ७॥

अर्थ—प्रभु (श्रीरामजी) ने दण्डकवनको सुहावना (हरा-भरा) कर दिया। और, नामने अमित (अनन्त) प्राणियोंके मनको पवित्र कर दिया। ७।

नोट—१ *'दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन'* इति। *'सुहावन'* अर्थात् (क) हरा-भरा जो देखनेमें अच्छा लगे। भाव यह कि निशाचरोंके वहाँ रहनेसे और फल-फूल न होनेसे वह भयावन था, सो शोभायमान हो गया। यथा—*'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा॥ गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होत सुहाए॥'* (३। १४) (ख,) पुनीत, पवित्र; यथा—*'दंडक बन पुनीत प्रभु करहू।'* (३। १३), *'दंडक पुहुमि पायँ परसि पुनीत भई उकठे बिटप लागे फूलन फरन।'* (वि० २५७)

श्रीबैजनाथजी—दण्डकवनको सुहावना कर देना, यह निःस्वार्थ जीवोंका पालन करना 'दया' गुण है। यथा, भगवद्गुणदर्पणे—'**दया दयावतां ज्ञेया स्वार्थस्तत्र न कारणम्।**' पुनश्च '**प्रतिकूलानुकूलोदासीन-सर्वचेतनाचेतनवस्तुविषयस्वरूपसत्तोपलम्भनरूपदालनानुगुणव्यापारविशेषो हि भगवतो दया**' अर्थात् दयावानोंकी उस दयाको दया कहा जायगा जिसमें स्वार्थका लेश भी न हो। रूपमें जो यह दयालुता प्रकट हुई, उसी गुणको नामने लोकमें फैला दिया। उस दयाकी प्याससे अनेक लोग दयालु प्रभुका नाम-स्मरण करने लगे और पवित्र हो गये। इसीसे अमित जनोंके मनका नामद्वारा पावन होना कहा।

नोट—२ दण्डकवन एक है और जनमनरूपी वन 'अमित' यह विशेषता है।

नोट—३ श्रीजानकीशरणजीका मत है कि जैसे इक्ष्वाकुपुत्र दण्ड शुक्राचार्यजीके शापसे दण्डकवन हो गया, उसी प्रकार जन-इक्ष्वाकुका मन दण्ड है, वेदोंकी अवज्ञा करके कुत्सित मार्गमें उसने गमन किया है, इससे वेदरूपी शुक्राचार्यके शापसे दण्डके सदृश भ्रष्ट हो रहा है। ऐसे अनेकोंको नामने पवित्र किया। (मा०मा०) ['दण्ड' ही दण्डकवन हो गया इसका प्रमाण कोई नहीं लिखा कि किस आधारपर ऐसा कहा है। (मा० सं०)]

नोट—४ ***'दंडक वन'*** इति। श्रीइक्ष्वाकुमहाराजका कनिष्ठ पुत्र दण्ड था। इसका राज्य विन्ध्याचल और नीलगिरिके बीचमें था। यहाँके सब वृक्ष झुलस गये थे, प्रजा नष्ट हो गयी और निशिचर रहने लगे। इसके दो कारण कहे जाते हैं—(१) एक तो गोस्वामीजीने अरण्यकाण्डमें ***'मुनि वर साप'*** कहा है, यथा—***'उग्र साप मुनिवर कर हरहू।'*** कथा यह है कि एक समय बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। ऋषियोंको अन्न-जलकी बड़ी चिन्ता हुई। सब भयभीत होकर गौतमऋषिके आश्रमपर जाकर ठहरे। जब सुसमय हुआ तब उन्होंने अपने-अपने आश्रमोंको जाना चाहा, पर गौतम महर्षिने जाने न दिया, वरंच वहीं निवास करनेको कहा। तब उन सबोंने सम्मत करके एक मायाकी गऊ रचकर मुनिके खेतमें खड़ी कर दी। मुनिके आते ही बोले कि गऊ खेत चरे जाती है। इन्होंने जैसे ही हाँकनेको हाथ उठाया वह मायाकी गऊ गिरकर मर गयी, तब वे सब आपको गोहत्या लगा चलते हुए। मुनिने ध्यान करके देखा तो सब चरित जान गये और यह शाप दिया कि तुम जहाँ जाना चाहते हो, वह देश नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। आपका आश्रम नर्मदा नदी अमरकण्टकके जिस कुण्डसे निकली है वहाँपर था। आपने अपने तपोबलसे यह कुण्ड निर्माण किया था। [इस कथाका मूल अभी हमको नहीं मिला है।]

(२) दूसरी कथा यह है—पूर्वकालके सत्ययुगमें वैवस्वत मनु हुए। वे अपने पुत्र इक्ष्वाकुको राज्यपर बिठाकर और उपदेश देकर, कि 'तुम दण्डके समुचित प्रयोगके लिये सदा सचेष्ट रहना। दण्डका अकारण प्रयोग न करना।', ब्रह्मलोकको पधारे। इक्ष्वाकुने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे जो सबसे कनिष्ठ (छोटा) था, वह गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ था। वह शूरवीर और विद्वान् था और प्रजाका आदर करनेके कारण सबके विशेष गौरवका पात्र हो गया था। इक्ष्वाकुमहाराजने उसका नाम 'दण्ड' रखा और विन्ध्याचलके दो शिखरोंके बीचमें उसके रहनेके लिये एक नगर दे दिया जिसका नाम मधुमत्त था। धर्मात्मा दण्डने बहुत वर्षोंतक वहाँका अकण्टक राज्य किया। तदनन्तर एक समय जब चैत्रकी मनोरम छटा चारों ओर छहरा रही थी। राजा दण्ड भार्गव मुनिके रमणीय आश्रमके पास गया तो वहाँ एक परम सुन्दरी कन्याको देखकर वह कामपीड़ित हो गया। पूछनेसे ज्ञात हुआ कि वह भार्गववंशोद्भव श्रीशुक्राचार्यजीकी ज्येष्ठ कन्या 'अरजा' है। उसने कहा कि मेरे पिता आपके गुरु हैं, इस कारण धर्मके नाते मैं आपकी बहन हूँ। इसलिये आपको मुझसे ऐसी बातें न करनी चाहिये। मेरे पिता बड़े क्रोधी और भयंकर हैं, आपको शापसे भस्म कर सकते हैं। अतः आप उनके पास जायँ और धर्मानुकूल बर्तावके द्वारा उनसे मेरे लिये याचना करें। नहीं तो इसके विपरीत आचरण करनेसे आपपर महान् घोर दुःख पड़ेगा। राजाने उसकी एक न मानी और उसपर बलात्कार किया। यह अत्यन्त कठोरतापूर्ण महाभयानक अपराध करके दण्ड तुरन्त अपने नगरको चला गया और अरजा दीन-भावसे रोती हुई पिताके पास आयी। श्रीशुक्राचार्यजी स्नान करके आश्रमपर जब आये तब अपनी कन्याकी दयनीय दशा देख उनको बड़ा रोष हुआ। ब्रह्मवादी, तेजस्वी देवर्षि शुक्राचार्यजीने शिष्योंको सुनाते हुए यह शाप दिया—'धर्मके विपरीत आचरण करनेवाले अदूरदर्शी दण्डके ऊपर प्रज्वलित अग्निशिखाके समान भयंकर विपत्ति आ रही है, तुम सब लोग देखना। वह खोटी बुद्धिवाला पापी राजा अपने देश, भृत्य, सेना और वाहनसहित नष्ट हो जायगा। उसका राज्य सौ योजन लम्बा-चौड़ा है। उस समूचे राज्यमें इन्द्र धूलकी बड़ी भारी वर्षा करेंगे। उस राज्यमें रहनेवाले स्थावर, जंगम जितने भी प्राणी हैं, उन सबोंका उस धूलकी वर्षासे शीघ्र ही नाश हो जायगा। जहाँतक दण्डका राज्य है वहाँतकके उपवनों

और आश्रमोंमें अकस्मात् सात राततक जलती हुई रेतकी वर्षा होती रहेगी।'—'**धक्ष्यते पांसुवर्षेण महता पाकशासनः।**' (वाल्मी० ७। ८१। ८) यह कहकर शिष्योंको आज्ञा दी कि तुम आश्रममें रहनेवाले सब लोगोंको राज्यकी सीमासे बाहर ले जाओ। आज्ञा पाते ही सब आश्रमवासी तुरन्त वहाँसे हट गये। तदनन्तर शुक्राचार्यजी अरजासे बोले कि—यह चार कोसके विस्तारका सुन्दर शोभासम्पन्न सरोवर है। तू सात्त्विक जीवन व्यतीत करती हुई सौ वर्षतक यहीं रह। जो पशु-पक्षी तेरे साथ रहेंगे वे नष्ट न होंगे।—यह कहकर शुक्राचार्यजी दूसरे आश्रमको पधारे। उनके कथनानुसार एक सप्ताहके भीतर दण्डका सारा राज्य जलकर भस्मसात् हो गया। तबसे वह विशाल वन 'दण्डकारण्य' कहलाता है। यह कथा पद्मपुराण सृष्टिखण्डमें महर्षि अगस्त्यजीने श्रीरामजीसे कही, जब वे शम्बूकका वध करके विप्र-बालकको जिलाकर उनके आश्रमपर गये थे। (अ० ३९) और, वाल्मीकीय ७ सर्ग ७९-८० और ८१ में भी है। इसके अनुसार चौपाईका भाव यह है कि प्रभुने एक दण्डकवनको, जो सौ योजन लम्बा था और दण्डके एक पापसे अपवित्र और भयावन हो गया था स्वयं जाकर हरा-भरा और पवित्र किया किन्तु श्रीनाममहाराजने तो असंख्यों जनोंके मनोंको, जिनके विस्तारका ठिकाना नहीं और जो असंख्यों जन्मोंके संस्कारवश महाभयावन और अपवित्र हैं, पावन कर दिया। *'पावन'* में *'सुहावन'* से विशेषता है। *'पावन'* कहकर जनाया कि जनके मनके जन्म-जन्मान्तरके संचित अशुभ संस्कारोंका नाश करके उसको पवित्र कर देता है और दूसरोंको पवित्र करनेकी शक्ति भी दे देता है।

निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥ ८॥

दोहा—सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुनगाथ॥ २४॥

शब्दार्थ—**निकर**=समूह, दल, झुंड। **दले**=दलित किया, नाश किया। **कलुष**=पाप। **उधारे**=उद्धार वा भवपार किया।=सद्गति दी। **अमित**=असंख्य, अगणित। **निकंदन**=नाश करनेवाला।

अर्थ—श्रीरघुनाथजीने निशाचरोंके समूहको मारा और नाम तो कलिके समस्त पापोंको जड़से उखाड़ डालनेवाला (नाशक) है। ८। श्रीरघुनाथजीने तो शबरी, गृध्रराज (जटायु) ऐसे अच्छे-अच्छे सेवकोंको सद्गति दी; (पर) नामने अनेकों दुष्टोंका उद्धार किया, वेदोंमें उनके गुणोंकी कथा प्रसिद्ध है। २४।

नोट—१ नामका बड़प्पन एकमें *'निकर'* और *'निसिचर'* (पाप करनेवाले। अर्थात् कार्यको), *'दले'*, *'सबरी गीध'* (दो) और वह भी *'सुसेवक'* और दूसरे में *'सकल'* और '**कलि कलुष**' (पापहीको, कारणहीको), *'निकंदन'* ,*'अमित'* और *'खल'* शब्दोंको देकर दिखाया गया। अर्थात् निशाचरोंमें कुछ-न-कुछ बच ही रहे और यहाँ *'पाप'* रह ही न गया। *'दले'* शब्द जनाता है कि राक्षसकुलका सर्वविनाश नहीं किया। जो बचे उन्होंने विभीषणको राजा मान लिया। *'निकंदन'* में निःशेषका भाव है। नाम निःशेष कर डालता है फिर कलुषित भावोंके आनेका अवकाश ही नहीं रह जाता। कलिके कलुष अर्थात् राक्षसी भावोंके कारणको। कारण ही न रह गया तो कार्य हो ही कैसे? शबरी और गृध्रराज उत्तम सेवक थे। उनको गति दी तो क्या? दुष्टोंको सद्गति देना वस्तुतः सद्गति देना है।

नोट—२ *'निसिचर निकर दले रघुनंदन'* इति। (क) दण्डकवनको सुहावन-पावन करने और श्री-शबरी एवं गृध्रराजके प्रसंगके बीचमें *'निसिचर·····'* कहनेसे यहाँ खर-दूषण-त्रिशिरा और उनकी अजय अमर चौदह हजार निशाचरोंकी सेना अभिप्रेत है। यह युद्ध पंचवटीपर हुआ, जहाँ श्रीरामजी दण्डकवनमें रहते थे। खर-दूषण रावणके भाई हैं, जो शूर्पणखाके साथ जनस्थानमें रावणकी ओरसे रहते थे। इनकी कथा अरण्यकाण्डमें आयी है। (ख) *'नाम सकल कलि कलुष निकंदन'* इति। काष्ठजिह्वा स्वामीजी इसका रूपक इस प्रकार लिखते हैं—*'भाई पंचवटी के रन में बड़ो रंग समुझन में। चाह सूपनखा सदा सुहागिनि खेलि रही मन बन में॥ लषनदास ताके धरि काटे नाक कान एक छन में॥'* (भाई०) *'खर है क्रोध,*

लोभ है दूषन, काम बसै त्रिसिरन में। कामैक्रोध लोभ मिलि दरसै तीनों एकै तन में॥' (भाई०) अर्थात् चाह (तृष्णा, शूर्पणखा है, क्रोध खर राक्षस है, लोभ दूषण राक्षस है और काम त्रिशिरा राक्षस है। ये सब इसी शरीरमें देख पड़ते हैं।

श्रीबैजनाथजी—निशाचर-समूहका नाश क्षणभरमें कर डालना 'शौर्य गुण' है। यथा भगवद्गणदर्पणे—**'सर्वस्माद्भीतिराहित्यं युद्धोत्साहश्च कीर्तये। शूरैः शौर्यमिदं चोक्तं राज्ञां स्वर्ग्ययशस्करम्।.....राम वद्ध्यो न शक्यः स्यात् रक्षितुं सुरसत्तमैः। ब्रह्मा रुद्रेन्द्रसंज्ञैश्च त्रैलोक्यप्रभुभिस्त्रिभिः।'** अर्थात् नर, नाग, सुर, असुर आदि तीनों लोकोंके वीर एकत्र होकर युद्धके लिये आवें तो भी किंचित् भय न करें, बड़े उत्साहसे युद्ध करें और क्षणभरमें सबका नाश कर दें, यही 'शौर्य' गुण है। जिसको वे मारना चाहें उसे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि त्रैलोक्यके वीर नहीं बचा सकते। यथा—***'जौ रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥'*** (१। २८४), ***'सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥'*** (२। १८९), ***'रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥'*** (३। १९), ***'करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान।'*** (३। २०), **'खरदूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥'** (३। २२) खरदूषणादिके प्रसंगमें शौर्यगुणके सब अंग स्पष्ट हैं। प्रभुने यह शौर्यगुण एक स्थलमें जो प्रकट किया, वही प्रताप नामके साथ लोकोंमें फैला, जिससे पापरूपी खलोंसे भयातुर हो प्रतापी प्रभुका नाम लोग जपने लगे। जिससे अगणित लोगोंके सब प्रकारके पाप जड़मूलसे नाशको प्राप्त हो गये।

नोट—३***'सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि'*** इति। (क) श्रीशबरीजी श्रीमतंग-ऋषिकी शिष्या थीं, उनके प्रेमका क्या कहना? श्रीरामजी स्वयं उसे दृढ़ भक्तिका प्रमाणपत्र दे रहे हैं, यथा—***'सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।'*** (३। ३६। ७) गीतावली और भक्तमालमें उनकी प्रेम-कहानी खूब वर्णन की गयी है और उनके बेरोंकी प्रशंसा तो प्रभुने श्रीअवध-मिथिलामें भी की थी, यथा—***'घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई। तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥'*** (वि० १६४) वाल्मीकिजीने श्रीशबरीजीके लिये 'महात्मा' विशेषण दिया है। अरण्यकाण्डमें इसकी कथा विस्तारसे दी गयी है। (३। ३४—३६) में देखिये। इसीसे इनको ***'सुसेवक'*** कहा। (ख) ***'गीध'*** इति। यहाँ प्रसंगसे गृध्रराज श्रीजटायु ही अभिप्रेत हैं। ये दशरथजीके सखा थे; ऐसा उन्होंने (वाल्मीकीयमें) श्रीरामजीसे कहा है। इसीसे श्रीरामजी उनको पिता-समान मानते थे। ये ऐसे परहितनिरत थे कि इन्होंने श्रीसीताजीकी रक्षामें अपने प्राण ही दे दिये। अरण्यकाण्डमें दोहा २९ से ३२ तक इनकी कथा है। विशेष विस्तारसे वहाँ लिखा गया है। गीतावलीमें इनकी सुन्दर कथा है और इनकी मनोहर मृत्युकी प्रशंसा गोस्वामीजीने दोहावलीमें दोहा २२२ से २२७ तक छः दोहोंमें की है। पक्षी और आमिषभोगी होते हुए भी इन्होंने सेवासे कैसी सुन्दर गति पायी! इसीसे ***'सुसेवक'*** कहा। (ग) ***'सुगति'***=शुभगति; प्रभुका निजधाम। शबरीकी गति, यथा—***'तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।'*** (३। ३६) इसीको श्रीरामजीने कहा है कि—***'जोगिवृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥'*** (३। ३६) जटायुजीकी गति, यथा—***'तनु तजि तात जाहु मम धामा।'*** (३। ३१), ***'गीध देह तजि धरि हरि रूपा.....अस्तुति करत नयन भरि बारी।..... अबिरल भगति माँगि बर गीध गयउ हरिधाम। तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥'*** (३। ३२), ***'.....गीध अधम खग आमिषभोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥'*** (३। ३३), ***'मुए मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुतहूँ बीच। तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीच॥'*** (दोहावली २२५)

नोट—४ ***'नाम उधारे अमित खल'*** इति। भाव कि सुसेवकको गति दी तो यह कोई विशेष बात नहीं हुई। नामने सत्-असत्की कौन कहे सेवकतककी सीमा नहीं रखी। सेवक न सही तो सज्जन तो हो, पर वह भी नहीं। नामने 'खलों' का उद्धार किया।

नोट—५ ***'बेद बिदित गुनगाथ'*** इति। गोस्वामीजीने अबतक तो शास्त्र-पुराणकी बात भी नहीं की और इस सम्बन्धमें एकदम 'वेद' को प्रमाण दे दिया। बात यह है कि पुराणादिमें जितने उदाहरण अधम

उद्धारणके हैं उनमें या तो क्रमोद्धार है या पूर्व-जन्म सुन्दर बताया गया है। खलोंके सुधारके सम्बन्धमें अबतक साधनका एक क्रम चला आ रहा था। *'नाम कोटि खलकुमति सुधारी'* से क्रम-साधन चला। कुमति शुद्ध होनेपर यह 'दास' हुआ। *'सहित दोष दुख दास दुरासा।....'* फिर जन हुआ—*'जनमन अमित नाम किय पावन।'* दास (सेवक) नामाभ्यासीके स्थितिमें दो स्तर रहे। दोष, दुख एवं दुराशाका नाश और उसके अनन्तर *'भव-भय-भंजन।'* इसके पश्चात् वह *'जन'* हुआ। नामके अभ्यासमें अनुराग हो गया। यहाँ भी दो स्तर हुए मनकी पावनता और कलि-कलुषका नाश। इस प्रकार यह क्रम पूर्ण हुआ।

अब गोस्वामीजी कह रहे हैं कि नामके लिये आवश्यक नहीं कि वह उपर्युक्त क्रमसे *'खल'* को *'कुमतिसुधार'* करता हुआ ही पूर्णता प्रदान करे। इसमें तो श्रुति प्रमाण है कि नामने दुष्टों—खलोंका उद्धार किया है, जो पूर्वजन्ममें भी दुष्ट थे और उद्धारके समय भी दुष्ट थे। साधु बनाकर नहीं उद्धार किया। किन्तु दुष्ट रहते ही उद्धार किया। इस सम्बन्धमें श्रुति है—**'यश्चाण्डालोऽपि रामेति वाचं ब्रवीत् तेन सह संवदेत् तेन सह संवसेत् तेन सह सम्भुंजीयात्।'** (अथर्ववेद) जो चाण्डाल भी 'राम' यह नाम ले उसके साथ बोले, रहे, भोजन करे। 'राम' कहते ही वह पंक्तिपावन हो जाता है। यहाँ श्रुतिके प्रमाणकी आवश्यकता थी, क्योंकि शास्त्रोंमें सदाचार, साधनादिका जो महत्त्व है, उससे यह नाम-माहात्म्य असंगत-सा लग सकता है। ऐसी दशामें इसे सत्य सिद्ध करनेके लिये एकमात्र श्रुतिप्रमाणकी ही आवश्यकता थी। (श्रीचक्रजी)

नोट—६ श्रीशबरीजी और श्रीगृध्रराजको गति देकर श्रीरामजीने अपना 'अनुकम्पा गुण' प्रकट किया। यथा भगवद्गुणदर्पणे—**'रक्षिताश्रितभक्तानामनुरागसुखेच्छया। भूयोऽभीष्टप्रदानाय यश्च ताननुधावति॥ अनुकम्पा गुणो ह्येषा प्रपन्नप्रियगोचरः॥'** अर्थात् जो पूर्वसे रक्षित-आश्रित अनुरागी भक्त हैं, उनके सुखके लिये भगवान् उनके पीछे धावते हैं, यह 'अनुकम्पा' गुण है, जिसका भक्त अनुभव करते हैं। प्रभुने इन दोनों प्रेमी भक्तोंकी सब अभिलाषा पूर्ण की। शबरीजीको माता-समान और जटायुजीको पितासे भी अधिक माना। दोनोंको दर्शन देकर मुनिदुर्लभ गति दी। यह 'अनुकम्पा गुण' जो प्रभुने यहाँ प्रकट किया वही नामद्वारा लोकोंमें विस्तृत हुआ और असंख्यों खलोंको वही सद्गति नामद्वारा प्राप्त हुई। (श्रीबैजनाथजी)।

द्विवेदीजी—'जहाँ रामकी गति ही नहीं उस कलिकालमें भी नाम ही अपना प्रताप दिखा रहा है। सुसेवकको गति दी, अर्थात् परीक्षा करके देख लिया कि मेरे सच्चे सेवक हैं, तब गति दी।

नोट—७ कवि लोगोंकी रीति है कि जिसको बड़ा बनाना चाहते हैं उसके लिये बड़े-बड़े विशेषण लिखते हैं और जिसको छोटा बनाना चाहते हैं उसके लिये छोटे-छोटे विशेषण देते हैं। इसीलिये ग्रन्थकारने 'राम' के विशेषणमें *'एक'* का और *'नाम'* के विशेषणमें **'कोटि'**, *'अमित'* इत्यादिका प्रयोग किया है।'

टिप्पणी—१ इस दोहेका जोड़ ऊपर *'नाम कोटि खल कुमति सुधारी'* से मिलाया है। नामने खलोंकी बुद्धि सुधारी। जब बुद्धि सुधरती है तभी उद्धार होता है, सो यहाँ उनका उद्धार कहा। श्रीरामचरित्रका जो क्रम है वैसा ही श्रीनामचरित्रका है—

श्रीराम-चरित्र	श्रीनाम-चरित्र
१-श्रीकौसल्याजीसे श्रीरामचन्द्रजीकी आविर्भावना।	भक्तकी जिह्वासे नामका आविर्भाव।
२-श्रीरामचन्द्रजीने ताड़का-सुबाहु आदिका वध किया इत्यादि।	नाम दोष-दुःख-सहित दुराशाका नाश करके तब भवका नाश करते हैं। दुराशाके रहते भवका नाश नहीं होता। इत्यादि।

नोट—८ यहाँ श्रीशबरीजीको प्रथम कहा और श्रीजटायुजीको पीछे, यद्यपि लीलाक्रममें पहले जटायुजीको गति दी गयी तब श्रीशबरीजीको। इसका एक कारण तो पूर्व लिखा ही जा चुका। पंजाबीजी और पं० रामकुमारजीका मत है कि यह व्यतिक्रम छन्दहेतु किया गया। **'पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयान्।'** अर्थ करते समय आगे-पीछे ठीक करके अर्थ करना चाहिये। तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि श्रीरामजी

शबरीजीमें माता-भाव और जटायुजीमें पिता-भाव मानते थे। यथा—***'खग सबरी पितु मातु ज्यों माने कपि को किए मीत।'*** (विनय० १९१) माताका गौरव पितासे अधिक है, यह पूर्व १८ (१०) में भी दिखाया गया है। अतः शबरीको प्रथम कहा।

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥ १॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥ २॥

शब्दार्थ—**नेवाजे** (फारसी शब्द है)=कृपा की। **बिरिद**=बाना, पदवी, यश। **बिराजे**=विराजमान हैं, प्रसिद्ध हैं, चमचमा रहे हैं।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने श्रीसुग्रीव और श्रीविभीषणजी दोनोंको शरणमें रखा (यह) सब कोई (सभी) जानते हैं॥ १॥ पर राम-नामने अनेक गरीबोंपर कृपा की, (यह नामका) श्रेष्ठ यश लोक और वेद दोनोंमें विशेषरूपसे सुशोभित हो रहा है ॥ २॥

नोट—१ यहाँ नामकी विशेषता एकमें ***'सुकंठ बिभीषन', 'दोऊ', 'जान सब कोऊ'*** और दूसरेमें ***'गरीब', 'अनेक', 'लोक बेद०'*** शब्दोंको देकर दिखायी है। ***'जान सब कोऊ'*** में व्यंग यह है कि अपने स्वार्थके निमित्त उनको शरण दिया। एकने वानरी सेनासे और दूसरेने रावणका भेद देकर सहायता की, यह सब जानते हैं पर गज, अजामिल, गणिका, ध्रुव, प्रह्लाद आदिका उद्धार नामहीसे हुआ कि जो उसका कुछ भी बदला नहीं दे सकते थे। सुग्रीव, विभीषण दोनों राजा (बड़े आदमी) हैं, अतएव उन्हें सभी पूछना चाहेंगे और यहाँ ***'गरीब'*** जिनको और कोई न पूछे वे तारे गये।

नोट—२ ***'बर बिरिद बिराजे'*** इति। अर्थात् वेदोंने नामकी महिमा इन्हींके कारण गायी है। वेद कहते हैं कि नाम गरीबनिवाज हैं और लोकमें प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि नामजापक सुखी हैं। ***'बर'*** कहकर जनाया कि महिमा श्रेष्ठ है। (पं० रामकुमारजी)

श्रीबैजनाथजी—(क) सुग्रीव और विभीषण दोनों अपने-अपने भाइयोंसे अपमानित होनेसे दीन होकर शरणमें आये थे, यथा—***'हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी। ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ भुआला॥ इहाँ सापबस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं॥'*** (४। ६), ***'बालित्रास ब्याकुल दिन राती। तनु बहु ब्रन चिंता जर छाती॥ सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ॥'*** (४। १२) श्रीहनुमान्‌जीने 'श्रीरामजीसे सुग्रीवको दीन जानकर शरणमें लेनेको कहा है, यथा—***'नाथ सैल पर कपिपति रहई।.... दीन जानि तेहि अभय करीजे।'*** (४। ४) विभीषण भी दीन थे, यथा—***'दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा।'*** (५। ४५)। ***'जौ सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई॥'*** (५। ४४), ***'रावनक्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड। जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड॥'*** (५। ४९), ***'रघुबंस बिभूषन दूषनहा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा॥'*** (६। ११०) (ख) ऐसे दीन सुग्रीव और विभीषणजीको राजा बनाया, नित्य पार्षद बना लिया और प्रातःस्मरणीय कर दिया। यह 'करुणा' गुण है, यथा भगवद्गुणदर्पणे—**'आश्रितार्त्यग्निना हेम्नो रक्षितुर्हृदये द्रवः। अत्यन्तमृदुचित्तत्वमश्रुपातादिकृद् द्रवत्॥ कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्तिनिवारणम्। इति या दुःखदुःखित्वमार्त्तानां रक्षणे त्वरा॥ परदुःखानुसंधानाद्विह्वली भवनं विभोः। कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्तानां भीतिवारकः॥'** अर्थात् जैसे अग्निसे सोना गलता है वैसे ही आश्रितोंके दुःखसे रक्षक भगवान् द्रवित होते हैं। अत्यन्त मृदुचित्त होनेसे नेत्रोंसे भक्तोंका दुःख देख अश्रुपात होने लगता है; और आश्रितके दुःख निवारणार्थ क्या करूँ और कब कर डालूँ—इस विचारसे दुःखित आश्रितोंके रक्षणकी जो त्वरा है तथा परदुःखके चिन्तनसे विह्वल हो जाना यह सब भगवान्‌का 'कारुण्य गुण' है जो भक्तोंके भयको निवारण करता है।

नोट—३ श्रीसुग्रीव और श्रीविभीषणजी दोनों अत्यन्त दीन (आर्त) थे। सुग्रीवने अपना दुःख स्वयं श्रीरामजीसे कहा ही है और विभीषणजीने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा है, यथा—***'सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी॥ तात कबहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुलनाथा॥'*** (५। ७) फिर रावणने

उन्हें लात मारकर निकाल दिया, जिस अपमानसे उनको बड़ी ग्लानि हुई; जिससे वे शरणमें आये—*'तुलसी हुमुकि हिय हन्यो लात, भले तात चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामै।' 'गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति····· ','जात गलानिन्ह गर्‌यो' 'कृपासिंधु सनमानि जानि जन दीन लियो अपनाइ कै।'* (गीतावली ५। २५—२८) सुग्रीवका दुःख सुनकर प्रभुको इतना दुःख हुआ कि तुरंत बालिवधकी प्रतिज्ञा कर दी, यथा—*'सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला॥ सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान।'* (४। ६) विभीषणको तुरन्त तिलक करके उसकी ग्लानि दूर की।

'गरीब' का अर्थ—'सुग्रीव-विभीषणके प्रसंगसे दीन, आर्त, दुःखसे व्याकुल, जिसका कोई रक्षक नहीं' है। प्रभुका 'करुणा' गुण नामद्वारा अनन्त हुआ, उसने अनेकों ऐसे दीन आर्त्तजनोंका दुःख नाशकर उनको सुखी किया।

नोट—४ सुग्रीव और विभीषण दोनों सर्वथा अनुपयोगी शरणागत न थे। फिर विभीषणजीने तो शरण आनेसे पूर्व ही हनुमान्‌जीको पता बताकर उनकी सहायता की थी और रावणकी सभामें भी *'नीति बिरोध न मारिय दूता'* कहकर उनकी रक्षा की थी। अतएव इनको शरणमें लेना औदार्यका आदर्श नहीं कहा जा सकता। नामने गरीबोंका उद्धार किया। गरीब अर्थात् सम्पत्ति, बुद्धि, वर्ण, तप, जप, धर्म, प्रेम या साधन, इस प्रकारका कोई धन जिनके पास न था; जो किसी उपयोगमें नहीं आ सकते थे। *'लोक बेद बर बिरिद बिराजे'* का भाव कि यह बात प्रख्यात एवं निर्विवाद है, अतः इसके लिये उदाहरणकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ नामका व्यापक महत्त्व प्रतिपादित किया गया। पूर्व जो कह आये कि नामने अमित खलोंका उद्धार किया उसीको स्पष्ट करते हैं कि उनके उद्धारमें केवल एक बात है। जहाँ दैन्यका अनुभव हुआ, हृदयमेंसे जहाँ अपना गर्व गया, बस एक बार नाम लेते ही कल्याण हो जाता है। जबतक शरीर, बुद्धि, धन, उच्च वर्ण, तप, त्याग, धर्माचरण, यज्ञ, ज्ञान प्रभृति साधनोंका भरोसा है, बस तभीतक मायाका आवरण भी है। जो अपनेको सम्पूर्ण असहाय दीन समझकर नाम लेता है, नाम उसका उद्धार कर देता है। फिर वहाँ खल या सत्पुरुषका भेद नहीं रह जाता है। (श्रीचक्रजी)

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥ ३॥
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥ ४॥

शब्दार्थ—**कटकु**=सेना। **बटोरा**=इकट्ठा किया। **श्रमु**=परिश्रम। **माहीं**=में।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने (तो) रीछ और बन्दरोंकी सेना इकट्ठी की, पुल (बाँधने) के लिये कुछ थोड़ा परिश्रम नहीं उठाया, अर्थात् बहुत परिश्रम करना पड़ा॥ ३॥ (पर) नाम लेते ही भवसागर सूख ही जाते हैं। सज्जनो! मनमें सोच-विचार लीजिये (कि कौन बड़ा है)॥ ४॥

नोट—१ यहाँ नाममें यह विशेषता दिखायी कि वहाँ तो 'भालु कपिकी सेना' और 'स्वयं श्रीरामचन्द्रजी' और यहाँ केवल 'नाम', वहाँ 'बटोरनेमें समय और परिश्रम' यहाँ नाम 'लेते ही'; वहाँ 'पृथ्वीके एक लघु प्रदेशपर रहनेवाला समुद्र' यहाँ 'भवसिंधु' जो सृष्टिमात्रभरमें है, वहाँ पुल बाँधनेके लिये परिश्रम, उपवास इत्यादि और फिर भी समुद्र ज्यों-का-त्यों बना ही रहा क्योंकि वह सेतु पीछे टूट भी गया और यहाँ भवसिन्धु सूख ही गये—स्मरणमात्रसे; वहाँ एक समुद्र यहाँ सब। वहाँ प्रयास, यहाँ सेतु बनानेका प्रयास नहीं।

नोट—२ *'बटोरा'* शब्द यहाँ कैसा उत्तम पड़ा है! इधर-उधर बिथरी फैली, बिखरी हुई वस्तुओंको समेटकर एकत्र करनेको 'बटोरना' कहते हैं और यहाँ कपि-दल चारों दिशाओंमें जहाँ-जहाँ था, वहाँ-वहाँसे दूतोंद्वारा एकत्र किया गया था। बटोरनेमें समय लगता है, वैसे ही कपि-दलके इकट्ठा करनेमें भी समय लगा।

नोट—३ *'श्रम कीन्ह न थोरा';* यथा—*'बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।'* (५। ५७) श्रीरामचन्द्रजीको सिन्धुतटपर *'माँगत पंथ'* में तीन उपवास हुए यह बात कवित्तरामायणमें स्पष्ट कही गयी है, यथा—*'तीसरे उपास बनबास सिंधु-पास सो समाज महाराजजूको एक दिन दान भो।'* (सु० ३२) कपि-भालु-दलका परिश्रम तो सब जानते ही हैं कि हिमालयतकसे पर्वतोंको ला-लाकर समुद्रमें पुल बाँधा। इतनेपर भी वह सेतु सेना पार उतारनेके लिये अपर्याप्त हो गया, कितने ही जलचरोंपर चढ़-चढ़कर गये, इत्यादि।

टिप्पणी—१ (क) भवसिन्धुका कारण 'शुभाशुभ कर्म' है। सो रकारके उच्चारणसे कर्म भस्म हो जाते हैं। पुनः, भवसिन्धुका कारण 'अविद्या' है। यह अविद्या अकारके उच्चारणसे नाश होती है। पुनः भवसिन्धु तापसे भरा है, वह ताप मकारसे नाश हो जाता है। १९ (१) *'हेतु कृसानु भानु हिमकर को'* में देखिये। (ख) *'सुखाहीं'* का भाव यह कि फिर भवसिन्धु नहीं होता। *'सुखाहीं'* बहुवचन क्रिया देकर सूचित किया कि जैसे इस जगत्में मुख्य समुद्र सात हैं वैसे ही भवसिन्धु भी सात हैं। बहुवचन देकर जनाया कि वे सब सूख जाते हैं। परमेश्वरके मिलनेमें सात विक्षेप वा आवरण हैं, वे ही सात समुद्र हैं। वे सात समुद्र ये हैं—'मानसिक, कायिक और वाचिक कर्म, अविद्या, दैहिक, दैविक, भौतिक ताप।'

नोट—४ (क) पं० श्रीकान्तशरणजी लिखते हैं कि अविद्यात्मक कर्मका परिणाम देह है, उसे ही सागर भी कहा है, यथा—*'कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर बिपुल अवगाह दुस्तर अपारं।'* (वि० ५८) यह देह सप्त धातुओंसे निर्मित है, यथा—*'सातैं सप्त धातुनिर्मित तनु करिय बिचार।'* (वि० २०३), **'जायमानो ऋषिभीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः।'** (भा० ३। ३१) [भा० ३। ३१। ११ में यह श्लोक है। परन्तु पाठ **'नाथमान ऋषिभीतः'** है। अर्थ यह है—'उस समय सात धातुओंसे युक्त शरीरमें अभिमान करनेवाला वह जीव अति भयभीत होकर याचना करता हुआ' (गीताप्रेस-संस्करण)] इस प्रकार भी सप्तसागर आ जाते हैं। देहाभिमानको सोखना भवसिन्धुका सोखना है।

(ख) सातकी संख्या इस प्रकार भी पूरी कर सकते हैं—पंचकोश (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय), अहंकार और अविद्या। पुनः, यदि हम समुद्र चार मानें, क्योंकि ये हमारे दृष्टिगोचर होते हैं और कालिदासजीने चार समुद्र मानकर ही रघुवंशमें लिखा है—**'पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम्॥'** (२। ३) तो भी बहुवचन ही रहता है और उस समय स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ये चारों शरीर ही चार भवसमुद्र हैं। नामके जपसे पंचकोशादि एवं स्थूल-सूक्ष्मादि शरीररूपी भवसिन्धुओंका सूखना यह है कि ये पुनर्जन्मादिके कारण नहीं रह जाते, केवल प्रारब्धक्षयतक आपाततः (ऊपर-ऊपर, देखनेमात्रके) लोक-व्यवहारोपयोगी भर्जित बीजवत् बने रहते हैं। अथवा सात या चारकी संख्या न लेकर भी बहुवचनकी सार्थकता इस प्रकार दिखायी जा सकती है कि *'भव'* का अर्थ 'जन्म-मरण' होना है और जीवके न जाने कितने संचित कर्म हैं जिनको भोगनेके लिये न जाने कितने जन्म लेना पड़े। प्रत्येक बारका जन्म-मरण एक समुद्र है। अतः बहुवचन *'सुखाहीं'* दिया। (ग) सू० मिश्र लिखते हैं कि *'सुखाहीं'* से जनाया कि भवसागरका एकदम अभाव नहीं हो जाता, किन्तु उसका नामभर रह जाता है, उसका गुण कुछ नहीं रहता।

बैजनाथजी—*'राम भालु कपि.....'* इसमें प्रभुका 'चातुर्यगुण' प्रकट हुआ कि सबकी बोली (भाषा) और सर्वकला विद्यामें प्रवीण हैं तभी तो देश-देशके रीछ-वानरोंकी भाषा समझते हैं, उनसे वार्तालाप करते हैं और अगाध समुद्रमें जलके ऊपर चार सौ कोसतक पत्थरोंको तैराकर पुल बाँध दिया। ऐसा दुष्कर दुःसाध्य कार्य केवल अपनी बुद्धिसे किया—यही चातुर्यगुण है। यथा भगवद्गुणदर्पणे—**'केवलया स्वबुद्ध्यैव प्रयासार्थविदू.....। दुःसाध्यकर्मकारित्वं चातुर्य्यं चतुरा विदुः॥ साधकाश्चापि सिद्धानां चतुराणां च राघवः। कीशानां भाषया रामः कीशेषु व्यपदेशिकः॥ ऋक्षराक्षसपक्षीषु तेषां गीर्भिस्तथैव सः॥'** यही गुण नामद्वारा

अनन्तरूप हो लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ, ऐसे दु:साध्य कार्य सुन भवसिन्धुसे भयभीत पामर प्राणियोंको शरणमें आनेका उत्साह हुआ और वे नाम जपकर पार हो गये।

नोट—५ *'करहु बिचार सुजन मन माहीं।'* इति। (क) भाव यह कि हम बढ़ाकर नहीं कह रहे हैं, आप स्वयं सुजान हैं, अत: आप बिना परिश्रम विचारकर स्वयं देख लीजिये कि नाम बड़ा है कि नहीं। (ख) पूर्व जो कहा है कि—*'सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू।'* उसीको यहाँ पुन: कहते हैं कि सज्जनो! मनमें विचार करो। अर्थात् इस प्रसंगमें जो विदग्ध शब्दोंमें वचन-चातुरी है उसे शब्दार्थ ही समझकर बोध न कर लो किन्तु इसके भीतर जो गुण-वर्णन है उसका कारण मनसे विचारो। तात्पर्य यह कि जो गुण रूपसे एक बार प्रकट हुआ वही नामद्वारा अनन्त हो गया, उनका स्मरणमात्र करनेसे अनेकोंका भला हो रहा है। जैसे किसी पण्डितने अपने तन्त्र-मन्त्र-विद्याद्वारा किसी चोरका नाम प्रसिद्ध कर उसे पकड़ा दिया तो पण्डितका नाम लोकमें प्रसिद्ध हो फैल गया। जहाँ चोरी हुई और उस पण्डितका नाम लोगोंने लिया तहाँ ही चोर डरकर वस्तु डाल देता है। रूपके ही गुणका प्रभाव नाममें है। (बैजनाथजी)

श्रीसुदर्शनसिंहजी—*'करहु बिचार सुजन।'* यहाँ सज्जनोंको विचार करनेको कहा जा रहा है। जो सज्जन नहीं हैं उनके हृदयमें तो भगवल्लीलारहस्य विचार करनेपर भी नहीं आ सकता, किन्तु सज्जन विचार करें तो जान सकते हैं। भाव यह है कि आप सज्जन हैं, परमार्थमें आपकी रुचि है, अत: आपको विचार करके यह देख लेना चाहिये कि नामके समान महामहिम और कोई साधन नहीं है। अत: खलोंकी रुचि तो नाममें भले ही न हो पर आपकी रुचि तो नाममें होनी ही चाहिये। सज्जनोंको तो एकमात्र नामका ही आश्रय लेना चाहिये।

राम सकुल[1] रन रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा॥ ५॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत[2] गुन सुर मुनि बर बानी॥ ६॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥ ७॥
फिरत सनेह मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥ ८॥

शब्दार्थ—**सकुल**=कुल वा परिवारसहित। **रन**=लड़ाई। **पुर**=नगर। **पगु** (पग)=पैर। **धारा**=धरा। **पगु-धारा**=प्रवेश किया, गये, पधारे।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीने रावणको परिवारसहित रणमें मारा। (तब) श्रीसीताजीसहित अपने नगरमें प्रवेश किया ॥५॥ श्रीराम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई। देवता और मुनिश्रेष्ठ श्रेष्ठ वाणीसे उनके गुण गाते हैं॥६॥ पर, सेवक नामका प्रेमसे स्मरणमात्र करते हुए बिना परिश्रम बड़े भारी बलवान् मोहदलको जीतकर प्रेममें मग्न स्वच्छन्द अपने सुखसे विचरते हैं। नामके प्रसाद (कृपा) से उनको स्वप्नमें भी शोच नहीं होता। ॥७-८॥

नोट—१ इन चौपाइयोंका स्पष्ट भाव यह है कि श्रीरामचन्द्रजीको अपनी सेनासहित श्रीसीताजीके लिये रावणसे संग्राम करना पड़ा। रावणको जीतनेमें उनको बड़ा परिश्रम पड़ा, तब कहीं वे श्रीसीतासहित अपने पुर गये और राज्यलक्ष्मीसे सुसम्पन्न हुए। इतने प्रकाण्ड प्रयासके बाद वे सुखी हुए और उनके सेवकने महामहिमामय राम-नामका सप्रेम स्मरण करके बिना परिश्रम ही मोहरूपी रावणको दलसहित जीत लिया और स्वतन्त्र (विमुक्त) स्वराट् होकर स्वानन्दरूपी पुरको प्राप्त हुआ। *'सनेह मगन'* अर्थात् नामके स्नेहमें मग्न। **'सुख अपनें'**=निजानन्द। *'मोह दल'* को जीतनेसे निजानन्दकी प्राप्ति हुई, अर्थात् जीव सम्राट् हुआ।

१- सकल कुल—१७२१, १७६२, छ०, भा० दा०। सकुल रन—१६६१, १७०४, को० रा०।

२-गावत सुर मुनिवर बर—छ०, भा० दा०। गावत गुन सुर मुनि वर—१६६१, १७०४, १७२१, १७६२।

नोट—२ (क) नामकी विशेषता दिखानेके लिये *'रावन'* के साथ कोई विशेषण न दिया और *'मोहदल'* के साथ *'प्रबल'* विशेषण रखा। ऐसा करके यह भी जनाया कि रावणसे मोहदल अधिक बलवान् है। रावण तो बहुतोंसे हार चुका था, यथा—*'बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥'* इत्यादि (लं० २४) और स्वयं मोहके वश था। (ख) यहाँ मोह रावण है और मोहकी सेना—*'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।'* (३। ४३) रावणका सारा परिवार मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि हैं। यथा—*'देव मोह दसमौलि तद्भ्रात अहंकार पाकारिजित काम बिश्रामहारी। लोभ अतिकाय मतसर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ट बिबुधांतकारी॥ देव द्वेष दुर्मुख दंभ खर अकंपन कपट दर्प मनुजाद मद सूलपानी। अमित बल परम दुर्जय निसाचर चमू सहित षडवर्ग गो जातुधानी॥'* (४-५। विनय ५८) (ग) वह रावण मोहरूपी रावणसे कम बली था। वह अपनेको, अपनी सेनाको और लंकाराज्यको बचानेके लिये गढ़से बाहर निकल-निकलकर स्वयं लड़ता था, पर मोहरावण तो अपने दलसमेत निरन्तर जीवके हृदयरूपी लंकामें निर्भय निवास करता है, वह भी, नामके सप्रेम स्मरण करनेसे सामने आनेकी ताब नहीं लाता, लड़ना तो कोसों दूर रहा। वह तो नामके स्मरणमात्रसे हृदयरूपी लंकाको छोड़कर भाग ही जाता है।

टिप्पणी—१ (क) *'गावत गुन सुर मुनि'* इति। भाव यह कि जब संकट सहकर साधुओंको सुखी किया तब सुरमुनिने सुन्दर वाणीसे यश गाया। यहाँ सुरमुनिहीको कहा, क्योंकि सुर रावणके बन्दीखानेसे छूटे और मुनियोंका भय मिटा। सुरमुनिके यशगानका लक्ष्य उत्तरकाण्डमें है, यथा—*'रिपु रन जीति सुजसु सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥'* (७। २) (ख) *'बर बानी'* का भाव कि सुर और मुनि असत्य नहीं बोलते, इसीसे उनकी वाणी श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह कि जैसा चरित्र हुआ है, यथार्थ वैसा ही गुण गाते हैं। अथवा श्रीरामचन्द्रजीके गुण श्रेष्ठ हैं, सुरमुनि इन गुणोंको गाते हैं इसीसे उनकी वाणीको श्रेष्ठ कहा। (ग)[इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि जबतक रावण जीवित रहा, तबतक श्रीरामजीके गुणोंको सुरमुनि नहीं गाने पाये, उसके मरनेके पीछे इनकी प्रतिष्ठा हुई। (मिश्रजी) जिस समय रणमें श्रीरामजीका दल विचलित होता था तथा नागपाश और शक्ति लगने इत्यादि अवसरोंपर सुरमुनि हाहाकार मचाते थे। वे न समझते थे कि यह नरनाट्य है। इसीसे जब प्रभु जीते तब परत्व जानकर उनके परत्वका गान करनेवाले हुए। (मा० त० वि०) *'बरबानी'* स्वयं वेद है। इन्होंने भी रूप धारणकर परत्व वर्णन किया ही है। (मा० त० वि०)]

बैजनाथजी—(क) *'राम सकुल.....धारा।'* के अन्तर्गत बहुत-से गुण हैं। वरके प्रतापसे त्रैलोक्यविजयी तो रावण स्वयं था—और उसके परिवारमें कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि भी वर पाये हुए अजित महाबली थे—इससे इनसे युद्ध करनेमें स्थिरता, धैर्य, शौर्य, वीर्य (वीरता),तेज और बल आदि गुण प्रकट हुए और बाहुबलके कारण यश हुआ। दूसरे, लोकपालोंको निर्भय किया, पृथ्वीका भार उतारा और सन्तों-मुनियोंको अभय किया। यह कृपा, दया गुण है। तीसरे, विभीषणको अचल किया—इसमें अनुकम्पा उदारता गुण है। चौथे, श्रीजानकीजीसहित श्रीअवधमें आना और विभवसहित राज्यसिंहासनासीन होना—यह भाग्यशालीनता गुण है। ये गुण नामद्वारा अनन्त हो लोकमें प्रसिद्ध हुए। (ख) *'राजा राम.....'* इति। इसमें पूर्व जितने गुण सूक्ष्मरीतिसे कहे गये वे सब तो हैं ही और उनके अन्तर्गत सौन्दर्य, लावण्य आदि अनेक और भी गुण हैं जिनका बोध केवल नामसे ही नहीं होता। रूप और चरितके ध्यानकी भी आवश्यकता होती है।

नोट—३ *'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती'* इति। श्रीरामजीके सम्बन्धमें रावणादिका मारना कहा, मारना तमोगुणी क्रिया है। और यहाँ *'सुमिरत'* पद दिया जो सात्त्विक क्रिया है। पुनः *'सप्रीती'* पद देकर सूचित किया कि मोहदलके मारनेमें क्रोध नहीं करना पड़ता और रावण तथा उसके कुलके वधमें रोष करना पड़ा है, यथा—*'हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥ सर निवारि रिपु के सिर काटे॥'* (६। ९२), *'राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहँ पावा॥ भए*

क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे। कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥' (६। ९०), *'भयउ रोषु रन रावनु मारा।'* (१। ४६) (भरद्वाजवाक्य), *'तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥'* (६। ७०) (कुम्भकर्णवध-प्रसंग), *'निर्वानदायक क्रोध जाकर भगति अबसहि बस करी।'* (३। १६)

श्रीबैजनाथजीका मत है कि—(क) यहाँ '**सेवक**=सेवा (अर्थात् षोडशोपचार पूजा श्रीशालग्रामजी वा श्रीस्वरूप वा चित्रादिमें, अथवा मानसी परिचर्या) करनेवाले। सप्रीति प्रेमपूर्वक, अर्थात् इन्द्रियोंके विषय मनमें मिल जायँ, मन-चित्त-अहंकारकी वासना बुद्धिमें लीन हो जाय और बुद्धि शुद्ध अनुकूल होकर प्रभुके गुणोंका स्मरण करती हुई लाखों प्रकारकी अभिलाषाएँ करती रहे। यथा भगवद्गुणदर्पणे—'**अत्यन्तभोग्यताबुद्धिरानुकूल्यादिशालिनी। अपरिपूर्णरूपा या सा स्यात्प्रीतिरनुत्तमा॥**' प्रीतिके आठ अंग ये हैं—प्रणय (मैं तुम्हारा हूँ, तुम हमारे हो), आसक्ति, लगन, लाग, अनुराग (चित्त प्रेमरंगमें सदा रँगा रहे), प्रेम (रोमांच, गद्गद कण्ठ आदि चिह्नोंसे सदा शरीर पूर्ण रहे), नेह (मिलनि, बोलनि, हँसनिमें प्रसन्नता) और प्रीति (शोभासहित व्यवहार)। भाव यह कि ऐसे जो सेवक हैं वे प्रेममें भरे हुए प्रभुके स्थिरता, शौर्य, वीर्य आदि उपर्युक्त गुणोंको स्मरण करते हुए, नाम जपते हुए प्रबल मोहदलको अनायास जीत लेते हैं। (ख) *'प्रबल'* कहनेका भाव यह है कि विवेकादिके मानके ये नहीं हैं, इनके सामने विवेकादि भाग जाते हैं, यथा—*'भागेउ बिबेक सहाय सहित.....।'* (१। ८४), *''मुनि बिज्ञानधाम मन करहिं निमिष महँ छोभ।'* (३। ३८)

नोट—४ *'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।.....'* यह उपसंहार है। *'नामु सप्रेम जपत अनयासा।'* (२४। २) इसका उपक्रम है। *'फिरत सनेह मगन सुख अपने.....'* उपसंहार है और '**भगत होहिं मुद मंगल बासा।**' (२४। २) उपक्रम है। सगुण राम और श्रीरामनामकी तुलनाके इस अन्तिम प्रसंगमें नाम-साधनके उच्च एवं आदर्श स्वरूपका वर्णन करके उसका परम फल दिखलाते हैं। जिस उच्च साधन (*नाम सप्रेम...मंगल बासा*) से यह प्रसंग प्रारम्भ हुआ था, उसी स्थितिमें उसका पर्यवसान भी किया गया। वहाँ *'सप्रेम'* और *'भगत'* यहाँ *'सप्रीती'* और *'सेवक'*, वहाँ *'मुद मंगल बासा'* और यहाँ *'फिरत सनेह मगन सुख अपने।'* पर्यवसानके समय यह स्पष्ट कर दिया गया कि *'सप्रेम जप'* करनेवालेका मोह एवं समस्त मोह-परिवार नष्ट होता है और वह 'अपने सुख' आत्मानन्दमें मग्न होकर विचरण करता है। उसका मुद मंगल बाह्य उपकरण या निमित्तकी अपेक्षा नहीं करता (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

नोट—५ *'फिरत सनेह मगन सुख अपने'* इति। (क) बैजनाथजी लिखते हैं कि—स्मरण करते-करते नामके प्रतापसे प्रभुके चरणकमलोंमें प्रीति हुई, जिससे मन 'स्नेह' रंगमें रँग गया, लोक-वासना छूट गयी, मन शुद्ध होकर श्रीरामस्नेहसे अपने सुखमें मग्न हो गया अर्थात् स्वतन्त्र हो गया; इसीसे निर्भय विचरते हैं। (ख) श्रीरामजीके सेवक वानर, रीछ, राक्षस विभीषणादि ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गये थे, प्रभु-पदमें प्रीति ऐसी थी कि उनको छः मास बीतते जान ही न पड़ा। यथा—*'नित नइ प्रीति रामपदपंकज।...ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति॥''* (७। १५), *'बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं।'*—यह जो श्रीरामरूपमें गुण दिखाया वही गुण नाममें अनन्त सेवकोंद्वारा दिखाते हैं।

नोट—६*'नाम प्रताप सोच नहिं सपने'* इति। (क) *'नाम प्रताप'* का भाव कि रीछ, वानर आदि रूपके प्रतापसे निर्भय थे। यथा—*'अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम। सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम॥'* (७। १६), *'निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहिं डरपहु जनि काहू॥'* (६। ११७) और नामके प्रतापसे सभी नाम-जापक सेवक निजानन्दमें मग्न निर्भय रहते हैं। (ख) रूपके सेवकोंको शत्रु आदिका शोच, घरबार आदिका शोच, अपने शरीर आदिका शोच प्रभुके बलपर नहीं था और नाम-जापक सेवकको कामादि शत्रुओंका, घरबार आदिके पालनका एवं अपनी देहादिका शोच नामके प्रतापसे नहीं रहता। (ग) *'सोच नहिं सपने'* में ध्वनि यह है कि रामचन्द्रजीको राज्य मिलनेपर भी लवणासुरके

मारनेकी, श्रीसीताजीके प्रति पुरवासियोंके सन्देह इत्यादिकी चिन्ताएँ बनी ही रह गयीं पर जापक-जनको स्वप्नमें भी चिन्ता नहीं रहती, जाग्रतिकी कौन कहे? यथा—***'तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनाम, जाहि जपि जीह रामहू को बैठो धूति हों। प्रीति राम नाम सों प्रतीति रामनाम की, प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूति हों।।*** (क० उ० ६९) सप्रेम नाम-जप करनेवालेको आत्मसाम्राज्य प्राप्त हो जानेपर राज्यरक्षणादिका कोई दायित्व उसपर नहीं रह जाता।

श्रीसुदर्शनसिंहजी—मानसका पूरा प्रसंग आत्मबलका आध्यात्मिक अर्थ भी रखता है। उस अर्थकी ओर भी यहाँ संकेत है। '**अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पुरी अयोध्या।**' आठ चक्रों और नव द्वारोंकी अयोध्या नगरी-सी मानवदेह ही है। मोह रावण है और उसका प्रबल दल कामादि हैं। मोहदलको जीतकर रावणवधके पश्चात् आत्मसुख-अयोध्याके सिंहासनपर शान्तिके साथ प्रतिष्ठा होती है।

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बरदानि।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि॥ २५॥

शब्दार्थ—**बरदायक**=वरदान देनेवाले=**बरदानि। जिय**=हृदयमें=प्राण, आत्मा, सार। **सत**=सौ।

अर्थ—ब्रह्म (निर्गुण-अव्यक्त) और राम (सगुण-व्यक्त) से (राम) नाम बड़ा है, बड़े-बड़े वर देनेवालोंको भी वरका देनेवाला है। श्रीमहादेवजीने मनमें (ऐसा) जानकर (अथवा इसको सबका प्राण जानकर) 'शतकोटिरामचरित' मेंसे चुनकर ले लिया॥ २५॥

नोट—१ 'रामसे नाम क्यों बड़ा है', यह बात दृष्टान्त देकर दोहा २३ ***'कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार'*** से लेकर यहाँतक बतायी और निर्गुण (अव्यक्त) ब्रह्मरामसे नामका बड़ा होना दोहा २३ (५) से ***'निरगुन तें येहि भांति बड़ नाम प्रभाउ अपार।'*** (५३) तक कहा गया। अब यहाँ उपसंहारमें दोनोंको फिर एक साथ कहते हैं। ***'ब्रह्म राम तें नामु बड़'''*** ,***'कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें'*** २३ (५) उपक्रम है। यहाँतक अव्यक्त ब्रह्म राम, व्यक्त ब्रह्म (सगुण) राम और नाम दोनोंके गुण दिखलाकर यह सिद्ध किया कि जो गुण राममें हैं वे सब वरंच उनसे अधिक नाममें हैं। क्योंकि वे गुण नामद्वारा अनन्त हो जाते हैं।

नोट—२ ***'बरदायक बरदानि'*** इति। मुख्य वरदाता तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ये भी रामनाम जपकर ही सिद्ध हुए हैं। यथा—'**अहं च शंकरो विष्णुस्तथा सर्वे दिवौकसः। रामनामप्रभावेण सम्प्राप्तास्सिद्धिमुत्तमाम्॥**' (विष्णुपुराणे ब्रह्मवाक्यम्), '**सावित्री ब्रह्मणा सार्द्धं लक्ष्मीर्नारायणेन च। शम्भुना रामरामेति पार्वती जपति स्फुटम्॥**' (पुलहसंहिता), '**यत्प्रसादेन कर्त्ताभूद्देवो ब्रह्मा प्रजापतिः। यत्प्रभावेण हर्त्ताहं त्राता विष्णू रमापतिः॥ ये नराधमलोकेषु रामभक्तिपराङ्मुखाः। जपं तपं दयां शौचं शास्त्राणामवगाहनम्। सर्वं वृथा विना येन शृणु त्वं पार्वति प्रिये॥**' (रुद्रयामल) इन उद्धरणोंसे भी यह सिद्ध है कि विधि-हरि-हर आदि सभी रामनामके प्रभावसे वरदाता हैं। गणेशजी इसीसे प्रथम पूज्य हुए। पार्वतीजी सदा जपती ही हैं।

(१) ☞***'रामचरित सतकोटि महँ'***.....इति*। आनन्दरामायण, मनोहरकाण्डमें लिखा है कि वाल्मीकिजीने 'शतकोटिरामायण' रचा। उसमें सौ-करोड़ श्लोक, नौ लाख काण्ड और नब्बे लाख सर्ग हैं। यथा—'**नवलक्षाणि काण्डानि शतकोटिमिते द्विज॥ सर्गा नवतिलक्षाश्च ज्ञातव्या भुवि कीर्त्तिताः। कोटीनां च शतं श्लोकमानं ज्ञेयं विचक्षणैः॥**' (सर्ग १७। १४-१५) आनन्दरामायणादि अनेक रामायणोंमें उसीकी बहुत संक्षिप्त कथाएँ हैं और जो वाल्मीकीय आजकल प्रचलित है वह भी उसीमेंसे ली हुई संक्षिप्त कथा है। यह चतुर्विंशति वाल्मीकीय रामायण सबमें प्रथम है। (सर्ग ८ श्लोक ६३ आदि)

---

* अर्थ—(२)—'राम ब्रह्मसे नाम बड़ा है, वर देनेवाला है। इसीके प्रसादसे श्रीमहादेवजी स्वयं वरदायक हुए हैं।' (सु० द्विवेदीजी)

(२) आनन्दरामायण-यात्राकाण्डमें लिखा है कि—वाल्मीकिजीने शतकोटिरामायण लिखा। मुनियोंने उसको ग्रहण किया। आश्रममें कथा होती थी। तीनों लोक देव, यक्ष, किन्नर, दैत्य आदि सुननेको आते थे। जब सबने सविस्तार सुना तब सभीको चाह हुई कि हम इस काव्यको अपने लोकको ले जायँ। परस्पर बहुत वाद-विवाद होने लगा तब शिवजी सबको रोककर उस ग्रन्थको लेकर सबके सहित क्षीरसागरको गये और भगवान्‌से उन्होंने सब कलह निवेदन किया। तब भगवान्‌ने उसके तीन भाग बराबर-बराबर किये। इस तरह तैंतीस करोड़, तैंतीस लाख, तैंतीस हजार, तीन सौ तैंतीस श्लोक और दस अक्षर प्रत्येक भागमें आये। केवल राम ये अक्षर बच रहे। तब शिवजीके माँगनेपर भगवान्‌ने ये दोनों अक्षर उनको दे दिये, जिससे शिवजी अन्तकालमें काशीके जीवोंको मुक्ति देते हैं। यथा— **'द्वेऽक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरिः। उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ।', रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति।'** (सर्ग २। १५-१६)।

(३) उपर्युक्त तीन भागोंमेंसे एक भाग देवताओंको, एक मुनियोंको और तीसरा नागोंको मिला। मुनियोंवाला भाग पृथ्वीमें रहा। पृथ्वीमें बराबर-बराबरके सात भाग करके यह भाग बाँट दिया गया। चार करोड़, सत्तर, लाख, उन्नीस हजार, सैंतालीस श्लोक सातोंको बाँटनेपर चार श्लोक बच रहे। वह भगवान्‌से ब्रह्माजीने माँग लिये। ये चार श्लोक वही हैं, जो नारदजीने व्यासजीको उपदेश किया जिसका विस्तार 'श्रीमद्भागवत' हुआ। जिस द्वीपमें जितने खण्ड हैं उस द्वीपका भाग उतने खण्डोंमें समभाग होकर बँटा। जम्बूद्वीपमें नौ खण्ड हैं। अतएव इसके प्रत्येक खण्डमें बावन लाख, इक्यानबे हजार, पाँच श्लोक और सात-सात अक्षर गये। एक अक्षर 'श्री' बच रहा। भगवान्‌ने कहा कि यह अक्षर नवों खण्डवाले अपने यहाँके नामके समस्त मन्त्रोंमें लगा लें। जितने भी पुराण, उपपुराण, शास्त्र आदि ग्रन्थ जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें हैं, वे सब इन्हीं बावन लाख, इक्यानबे हजार, पाँच श्लोकोंसे निर्माण किये गये हैं।

शतकोटि रामचरितके बँटवारेका उल्लेख तथा श्रीशिवजीका उसमेंसे केवल 'रा', 'म' इन दो अक्षरोंका पाना हमें बहुत खोजनेपर भी अभीतक आनन्दरामायणहीमें मिला है। इसलिये प्रसंगानुकूल हमने इसको सर्वप्रथम यहाँ लिखा।

(४) शतकोटिकी चर्चा कुछ पुराणों तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी पायी जाती है। (क) पद्मपु० पातालखण्डमें शेषजीने वात्स्यायनजीसे जो कहा है कि—**'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम्॥'** (१। १४) अर्थात् श्रीरघुनाथजीका चरित शतकोटि श्लोकमें विस्तारसे लिखा गया है। जिसकी जितनी बुद्धि है, उतना वह कहता है—इससे भी श्रीरामचरितका शतकोटि श्लोकबद्ध होना प्रामाणिक है।

(ख) पाराशर्य उपपुराणमें वाल्मीकीय रामायणके माहात्म्यमें लिखा है कि—यह जो शतकोटि-रामायण है वह मेरे (शिव) लोकमें, विष्णुलोक और सत्यलोकमें विराजमान है। ध्रुवलोकमें पचास करोड़, गोलोकमें दस करोड़, इन्द्रलोकमें एक करोड़, सूर्यलोकमें पचास करोड़, गन्धर्व-यक्षादि मुख्य-मुख्य लोकोंमें एक-एक करोड़ गाया जाता है। उसीमें चौबीस हजार देवर्षि नारदजी परमानन्दमें निमग्न होकर व्याख्यान करते हैं जिसको उनके मुखसे सुनकर तुम (पार्वतीजी) पाठ किया करती हो। इसीका उपदेश नारदजीने वाल्मीकिजीको किया और इनके द्वारा यह मर्त्यलोकमें प्रसिद्ध हुआ। यथा—**'एतद्रामायणं श्रीमच्छतकोटिप्रविस्तरम्। मल्लोके विष्णुलोके च सत्यलोके च भामिनि।' ....व्याख्याति नारदस्तेषां परमानन्दनिर्भरः।' चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं श्रीरामायणसंहिताम्। उपादिशत् स वाल्मीके लोके प्राचीकशत् सताम्।' यामेतां नारदात् श्रुत्वा त्वं नित्यं पठसि प्रिये। सैषा चरति भूलोके श्रीरामायणसंहिता॥'** (अ० ५। ३५, ३८—४०)।

(ग) शिवसंहिता (श्रीहनुमत्-प्रेस, श्रीअयोध्याकी छपी हुई) में इस सम्बन्धके श्लोक ये हैं—**'रामायणस्य कृत्स्नस्य वक्ता तु भगवान्स्वयम्। ब्रह्मा चतुर्मुखश्चान्ये तस्योच्छिष्ट भुजः प्रिये॥'**

अनन्तेनापि कोट्यानां शतेनास्य प्रपञ्चनम्। रामायणस्य बुध्यर्थं कृतं तेन विजानता॥' (९-१० अ० ७) अर्थात् समग्र रामायणके वक्ता स्वयं चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हैं। यद्यपि श्रीरामचरित अपार है तथापि अपने बोधके लिये शतकोटिमें रचा गया है।

इन तीनोंमें रामचरितका 'शतकोटि' होना पाया जाता है। परन्तु इनमें बँटवारेकी चर्चा नहीं है। अन्य किसी स्थलपर हो तो ज्ञात नहीं है। तीसरेमें केवल भेद इतना है कि शतकोटिरामायणके कर्त्ता ब्रह्माजी बताये गये हैं जो कल्पभेदसे ठीक हो सकता है। अथवा, ब्रह्मा और वाल्मीकिमें अभेद मानकर कहा गया हो। तत्त्वदीपिकाकार श्रीमहेश्वरतीर्थजीने स्कन्दपुराणके—**'वाल्मीकिरभवद्ब्रह्मा वाणी वाक् तस्य रूपिणी। चकार रामचरितं पावनं चरितव्रतः॥'** इस प्रमाणसे वाल्मीकिजीको ब्रह्माजीका अंशावतार माना है।

श्री पं०नागेश भट्टजीने अपने 'रामाभिरामीय' टीकामें लिखा है कि ब्रह्माके अंशभूत प्राचेतस वाल्मीकिजीने अपनी रची हुई शतकोटिरामायणका सारभूत चतुर्विंशतिसहस्रश्लोकात्मक वाल्मीकीय रामायण कुश और लवको पढ़ाया। यथा—**'ब्रह्मांशभूतेव भगवान् प्राचेतसो वाल्मीकिः स्वकृतशतकोटिरामायणसारभूतं·····रामायणं चतुर्विंशतिसहस्त्रश्लोकरूपं कुशलवाभ्यामग्राहयत्।'** (बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक १ मेंसे) इसका प्रमाण वे यह देते हैं—**'शापोक्त्या हृदि सन्तप्तं प्राचेतसमकल्मषम्। प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥ न निषादः स वै रामो मृगयाम् कर्त्तुमागतः। तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥ इत्युक्त्वा तं जगामाशु ब्रह्मलोकं सनातनः। ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥'** अर्थात् निषादको शाप देनेके पश्चात् मुनिको पश्चात्ताप हुआ, तब वहाँ ब्रह्माजी आ प्राप्त हुए। उनका सत्कार होनेके बाद उन्होंने कहा कि वह निषाद नहीं था किन्तु श्रीराम ही मृगयाके मिष आये थे। उनके वर्णनसे तुम प्रसिद्ध हो जाओगे। ऐसा कहकर वे ब्रह्मलोकको चले गये। तत्पश्चात् उन्होंने कई करोड़ श्लोकोंमें रामायण बनाया। श्रीनागेश भट्टजी श्लोकान्तर्गत **'कोटिभिः'** का अर्थ शतकोटि करते हैं। **'कोटिभिः'** का अर्थ है 'करोड़ों', परन्तु अन्यत्र **'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्'** ऐसा वाक्य आया है। उसके सम्बन्धसे यहाँ **'कोटिभिः'** का अर्थ शतकोटि किया है। इससे भी हमारे उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

परन्तु, (घ) मत्स्यपुराण अ० ५३ में भगवान्ने कहा है कि प्रथम एक ही पुराण था जिसको ब्रह्माने शतकोटि श्लोकोंमें बनाया था। यथा—**'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥ पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥'**(३-४) कालानुसार जब लोग इतने भारी विषयको ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं तब मैं ही व्यासरूपसे द्वापरके अन्तमें चार लक्ष प्रमाणमें अठारह पुराणोंके रूपमें उसीको बनाता हूँ। वह शतकोटि देवलोकमें अद्यापि विराजमान है। (श्लोक ८—१०) वेदार्थप्रतिपादक एकलक्षप्रमाणका महाभारत बनाता हूँ। ब्रह्माने जो शतकोटि बनाया है, उसमेंसे श्रीरामोपाख्यान ग्रहण करके उन्होंने नारदजीको बताया और उसीको वाल्मीकिजीने चौबीस हजार प्रमाणमें बनाया। इस प्रकार सवा पाँच लाख प्रमाणका पुराण भारतवर्षमें वर्तमान है। यथा—**'भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्। लक्षेणैकेन यत्प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम्॥' वाल्मीकिना तु यत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्। ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम्॥ आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः। वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्। एवं सपादः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्त्तिताः॥'** (६९—७१)

लगभग यही सब विषय स्कन्द पु० प्रभासखण्ड प्रभासमाहात्म्य अ० २ श्लोक ९३ इत्यादिमें है और कुछ श्लोक भी दोनोंके मिलते हैं, केवल इतनी बात (स्कन्दमें इस स्थानमें) नहीं है कि प्रथम एक ही पुराण था। इन दोनों ग्रन्थोंमें वर्तमान वाल्मीकीयका इस शतकोटि पुराणसे रचा जाना सिद्ध होता है और उपर्युक्त अन्य प्रमाणोंसे वर्तमान वाल्मीकीयका शतकोटिरामायणसे रचा जाना पाया जाता है। इससे यह निश्चय होता है कि शतकोटिरामायण और शतकोटि पुराण एक ही वस्तु हैं। ऐसा मान लेनेसे एकवाक्यता हो सकती है।

इसपर शंका हो सकती है कि जब वह शतकोटिरामायण ही है तब उसको पुराण कहकर उससे वर्तमान चतुर्विंशति वाल्मीकीयका होना क्यों कहा? तो उसका समाधान यह हो सकता है कि सम्भवतः उसमें श्रीरामचरितके साथ-साथ अन्य देवताओं; अवतारों और राजाओं आदिके उपाख्यान प्रसंगानुसार विस्तृतरूपसे कहे गये हैं, उसमेंसे रामभक्तोंके लिये केवल श्रीरामचरित चुनकर यह वाल्मीकीय ग्रन्थ बनाया गया और उसका नाम रामायण रखा गया और इस चतुर्विंशतिवाल्मीकीयसे उस शतकोटिका भेद दिखानेके लिये उसका नाम रामायण न कहकर व्यासजीने उसे 'पुराण' कहा; जिसका अर्थ पुराण अर्थात् प्राचीन पुरातन (रामायण) हो सकता है।

नोट—३ श्रीसुदर्शनसिंहजीका मत है कि प्रत्येक त्रेतायुगमें श्रीरामावतार होता है। इस तरह ब्रह्माके एक दिनमें चौदह बार श्रीरामावतार होता है। (हमको इसका प्रमाण नहीं मिला) ब्रह्माकी पूरी आयु भगवान् शंकरका एक दिन है। शंकरजी अपने वर्षोंसे सौ वर्ष रहते हैं। फिर शिवकी पूरी आयु भगवान् विष्णुका एक दिन है। ये भी अपनी आयुसे सौ वर्ष रहते हैं। विष्णुके सौ वर्ष पूरे होनेपर एक सृष्टिचक्र पूरा होता है। स्मरण रहे कि यहाँ जिन त्रिदेवकी बात है वे त्रिगुणोंमेंसे रज, तम और सत्त्वके अधिष्ठाता हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ त्रिदेव शाश्वत हैं, उनकी चर्चा यहाँ नहीं है।—सृष्टिके इतने दीर्घ चक्रमें प्रत्येक त्रेतामें जो रामावतार होते हैं उनमें कुछ-न-कुछ चरितगत अन्तर रहता है। अतः प्रत्येक त्रेताका रामचरित भिन्न-भिन्न है। ऐसे रामचरितों-रामायणोंकी कोई संख्या करना कठिन है। (७। ५२) (२) '**राम चरित सतकोटि अपारा**' में 'शतकोटि' के साथ 'अपारा' कहकर सूचित किया है कि कवि शतकोटिको 'अनंत' के अर्थमें लेता है। इन रामायणोंमेंसे अपनी रुचि एवं अधिकारके अनुसार लोग किसी चरितको अपना आदर्श आराध्य बना लेते हैं। किन्तु भगवान् शंकरने अपना कोई चरित आराध्य नहीं बनाया। वे तो रामनामके आराधक हैं, यही यहाँका भाव है।

गोस्वामीजीका मत है कि कल्प-कल्पमें श्रीरामावतार होता है। इस प्रकार भी ब्रह्माकी आयुभरमें छत्तीस हजार बार श्रीरामावतार होना निश्चित ही है। शिवजी की आयुभरमें ३६०००×३६००० बार अवतार होना चाहिये और सृष्टिके एक चक्रमें ३६०००×३६०००×३६००० अर्थात् ४६६५६०००००००० बार अवतार निश्चित होता है।

नोट—४ 'जब 'रा', 'म' को शिवजीने सार समझकर ले लिया, तो वहाँ तो छाँछ ही रह गया?' इस शंकाका समाधान यों किया जाता है कि 'रामायण' का अर्थ 'राम+अयन' अर्थात् 'रामका घर' है। वे तो उसमें सदा रहते ही हैं। पुनः, 'रामायण' को राम-तन भी कहते हैं क्योंकि नाम, रूप, लीला, धाम चारों नित्य परात्पर सच्चिदानन्द विग्रह (भगवान्के) माने गये हैं और रामचरित्र ही रामलीला है। पुनः, रामायणके लिये आशीर्वाद है कि उसका एक-एक अक्षर महापातकको नाश करनेवाला है। प्रमाण यथा—**'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥'**

विनयपत्रिकामें भी ऐसा ही कहा है, यथा—***'सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि लियो काढ़ि बामदेव नाम घृतु है।'*** (पद २५४) जो भाव वहाँ है वही यहाँ है। वहाँ पूरा रूपक है, यहाँ साधारण वर्णन है। इसमें उपमाका एक देश केवल ग्रहण किया गया है। जैसे वेदोंका सार प्रणव '**ॐ**' और 'राम' नाम है। **ॐ** या रामनाम सार लेनेसे वेदका महत्त्व घटा नहीं और न वह निःसार हुआ, वैसे ही 'राम' नाम रामायणमेंसे लेनेसे रामायण फिर भी वैसा ही परिपूर्ण है। 'राम' नाममें सारा चरित बीजरूपसे है, उसके अर्थमें सारा चरित है जैसा आगे दिखाया गया है। वाक्य और अर्थ अभिन्न हैं। भाव यह कि 'राम' नामसे ही सारा चरित भरा है, जो कार्य चरितसे होता है वह 'राम' नामसे होता है, यह समझकर उन्होंने इसीको अपनाया।

मिश्रजी—'राम' यह दोनों अक्षर रामायणका सार कैसे? उत्तर—रामतापिनी-उपनिषद्में लिखा है '**राजते महीस्थितः**' इसके दोनों शब्दोंके प्रथम अक्षर लेनेसे 'राम' निकलता है। यथा '**राजते**' का 'रा' और

'**महीस्थितः**' का 'म' अर्थात् राम। एवं समस्त रामायण 'राम' इस नामसे निकलता है। इस कारण रामायणका जीवात्मा 'राम' शब्द है।

सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'राम' के अर्थमें सारा चरित्र है जैसा रामतापिनीसे सिद्ध होता है—'**रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः॥ .....राक्षसान्मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा। प्रभा हीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम्॥ धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः। तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात्॥ तथा रामस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः॥**' अर्थात् पृथ्वीतलपर जो रघुकुलमें विराजते हैं और जिनको तत्त्ववेत्ताओंने 'राम' नामसे प्रकट किया। नररूप धारण करके राक्षसोंको इस तरह प्रभाहीनकर, जैसे राहु चन्द्रमाको करता है, अपने चरितद्वारा यथायोग्य राजाओंके धर्ममार्गको, नामसे ज्ञानमार्गको, ध्यानसे वैराग्यको और पूजनसे ऐश्वर्यको दर्शित करनेके कारण पृथ्वीपर तत्त्वतः श्रीरामजीका रामनाम प्रसिद्ध हो गया। (रा० पू० ता० १—५)

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगलरासी॥ १॥
सुक सनकादि सिद्ध* मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥ २॥

अर्थ—नामके प्रसादसे शिवजी अविनाशी हैं और (शरीरमें) अमंगल सामग्रियाँ होनेपर भी मंगलकी राशि हैं॥ १॥ श्रीशुकदेवजी, श्रीसनकादिजी, सिद्ध, मुनि और योगीलोग नामहीके प्रसादसे ब्रह्मसुखके भोग करनेवाले हैं॥ २॥

नोट—१ अब नामकी बड़ाई पाँचवें प्रकारसे कहते हैं। (पं० रामकुमारजी) वा, अब नामका फल कहते हैं (मा० प्र०) अथवा, अब नामके बड़ाईकी करनी वा कामका फल कहते हैं। (रा० प्र०, सू० मिश्र)

नोट—२ पं० सुधाकर द्विवेदी—'विष खानेसे भी न मरे, इसलिये *'अबिनासी'* होना सत्य हुआ। यद्यपि चिताकी भस्म, साँपका आभूषण, नरमुण्डके माल इत्यादि अशुभ वेष किये हैं, तथापि नामके बलसे महादेव मंगलकी राशि कहलाते हैं, शंकर-शिव इत्यादि नामसे पुकारे जाते हैं और बात-बातपर सेवकोंपर प्रसन्न हो अलभ्य वरदान देते हैं; जिनके पुत्र गणेशजी मंगलमूर्त्ति कहलाते हैं, वे वस्तुतः मंगलराशि हैं।

नोट—३ मा० मा० कारका मत है कि 'शम्भु तो सनातन अविनाशी हैं ही पर नामके प्रसादसे सब साज भी अविनाशी और मंगलके राशि हो गये।' पर अर्थमें उन्होंने यही लिखा है कि 'नाम-हीकी कृपासे शिवजी अविनाशी हैं।' और यही ठीक है जैसा कि *'कालकूट फल दीन्ह अमी को'* से स्पष्ट है।

श्रीरामनामके ही प्रतापसे अविनाशी भी हुए, इसके प्रमाण ये हैं—'**यन्नाम सततं ध्यात्वाऽविनाशित्वं परं मुने। प्राप्तं नाम्नैव सत्यं तु सगोप्यं कथितं मया॥**' (शि० पु०), '**रामनामप्रभावेण ह्यविनाशिपदं प्रिये। प्राप्तं मया विशेषेण सर्वेषां दुर्लभं परम्॥**' (आदिपुराण) विशेष १९ (३) *'महामंत्र जोइ जपत महेसू।.....'* में लिखा जा चुका है। (पूर्वसंस्करणोंमें जो लिखा गया था वह प्रसंगानुकूल न होनेसे छोड़ दिया गया।)

नोट—४ *'साजु अमंगल मंगलरासी'* इति। श्रीरामनामकी ही कृपा और प्रभावसे अमंगल वेषमें भी मंगलराशि हैं, इसका प्रमाण पद्मपुराणमें है। कथा इस प्रकार है—श्रीपार्वतीजी पूछ रही हैं कि—'जब कपाल, भस्म, चर्म, अस्थि आदिका धारण करना श्रुतिबाह्य है तब आप इन्हें क्यों धारण करते हैं।' यथा—'**कपालभस्मचर्मास्थिधारणं श्रुतिगर्हितम्। तत्त्वया धार्यते देव गर्हितं केन हेतुना॥**' (१६) श्रीशिवजीने

* साधु—१७२१, १७६२, छ०, को० रा०। सिद्ध—१६६१, १७०४।

उत्तर देते हुए कहा है कि एक समयकी बात है कि नमुचि आदि दैत्य सर्वपापरहित भगवद्भक्तियुक्त वेदोक्त आचरण करनेवाले होकर, इन्द्रादि देवताओंके लोक छीनकर राज्य करने लगे। तब इन्द्रादि भगवान्‌की शरण गये पर भगवान्‌ने उनको भगवद्भक्त और सदाचारी होनेके कारण मारना उचित न समझा। भक्त होकर भी भगवान्‌के बाँधे हुए लोक-मर्यादा और नियम भंग कर रहे हैं, अतः उनका नाश करना आवश्यक है; इसलिये उनकी बुद्धिमें भेद डालकर सदाचारसे मन हटानेकी युक्ति सोचकर वे (भगवान्) हमारे पास आये और हमें यह आज्ञा दी कि आप दैत्योंकी बुद्धिमें भेद डालकर उस सदाचारसे उनको भ्रष्ट करनेके लिये स्वयं पाखण्डधर्मोंका आचरण करें। यथा—'**त्वं हि रुद्र महाबाहो मोहनार्थे सुरद्विषाम्। पाखण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम्॥ २८॥** [पाखण्डाचरणधर्मका लक्षण पार्वतीजीसे उन्होंने पूर्व ही बताया है। वह इस प्रकार है—'**कपालभस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिंगिनः। ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कलधारिणः॥ ५॥ अवैदिक-क्रियोपेतास्ते वै पाखण्डिनस्तथा।**'] 'आपका परत्व सब जानते ही हैं। इसलिये आपके आचरण देखकर वे सब दैत्य उसीका अनुकरण करने लगेंगे और हमसे विमुख हो जायँगे और जब-जब हम अवतार लिया करेंगे तब-तब उनको दिखानेके लिये हम भी आपकी पूजा किया करेंगे' जिससे उनका इन आचरणोंमें विश्वास हो जायगा और उसीमें लग जानेसे वे नष्ट हो जायँगे।' यह सुनकर हमारा मन उद्विग्न हो गया और मैंने उनको दण्डवत् कर प्रार्थना की कि मैं आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ, पर मुझे बड़ा दुःख यह है कि इन आचरणोंसे मेरा भी नाश हो जायगा और यदि नहीं करता हूँ तो आज्ञा उल्लंघन होती है, यह भी बड़ा दुःख है।

मेरी दीनता देख भगवान्‌ने दया करके मुझे अपना सहस्रनाम और षडक्षर तारक-मन्त्र देकर कहा कि मेरा ध्यान करते हुए मेरे इस मन्त्रका जप करनेसे तुम्हारा सर्व पाखण्डाचरणका पाप नष्ट हो जायगा और तुम्हारा मंगल होगा। यथा—'**दत्तवान्कृपया मह्यमात्मनामसहस्रकम्॥ ४६॥ हृदये मां समाधाय जपमन्त्रं ममाव्ययम्॥ षडक्षरं महामन्त्रं तारकब्रह्मसंज्ञितम्॥ ४७॥ इमं मन्त्रं जपन्नित्यममलस्त्वं भविष्यसि। भस्मास्थिधरणाद्यत्तु सम्भूतं किल्बिषं त्वयि॥ ५१॥ मंगलं तदभूत्सर्वं मन्मन्त्रोच्चारणाच्छुभात्।**' अतएव देवताओंके हितार्थ भगवान्‌की आज्ञासे मैंने यह अमंगल साज धारण किया। (पद्मपु० उत्तरखण्ड अ० २३५)

''साजु अमंगल'' इति। कपाल, भस्म, चर्म, मुण्डमाला आदि सब *'अमंगल साज'* है। शास्त्रसदाचारके प्रतिकूल और अवैदिक है, इसीसे कल्याणका नाश करनेवाला है जैसा कि उपर्युक्त कथासे स्पष्ट है। पर श्रीरामनाम-महामन्त्रके प्रभावसे, उसके निरन्तर जपसे, वे मंगल-कल्याणकी राशि हैं। अन्यत्र भी कहा है—*'अशिव वेष शिवधाम कृपाला।'* ☞मिलान कीजिये—'**श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहरपिशाचाः सहचराश्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः। अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि॥ २४॥** (महिम्नस्तोत्र) अर्थात् हे कामारि! श्मशान तो आपका क्रीडास्थल है, पिशाच आपके संगी-साथी हैं, चिताभस्म आप रमाये रहते हैं, मुण्डमालधारी हैं, इस प्रकार वेषादि तो अमंगल ही हैं फिर भी जो आपका स्मरण करते हैं उनके लिये आप मंगलरूप ही हैं।

नोट—५ *'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।.....'* इति। (क) श्रीशुकदेवजी भी श्रीरामनामके प्रसादहीसे ऐसे हुए कि परीक्षित् महाराजकी सभामें व्यासादि जितने भी महर्षि बैठे थे सबने उठकर उनका सम्मान किया। शुकसंहितामें उन्होंने स्वयं कहा है कि श्रीरामनामसे परे कोई अन्य पदार्थ श्रुतिसिद्धान्तमें नहीं है और हमने भी कहीं कुछ और न देखा है न सुना। श्रीशंकरजीके मुखारविन्दसे श्रीरामनामका प्रभाव शुकशरीरमें सुनकर हम साक्षात् ईश्वरस्वरूप समस्त मुनीश्वरोंसे पूज्य हुए। यथा—'**यन्नामवैभवं श्रुत्वा शंकराच्छुकजन्मना। साक्षादीश्वरतां प्राप्तः पूजितोऽहं मुनीश्वरैः॥ नातः परतरं वस्तु श्रुतिसिद्धान्तगोचरम्। दृष्टं श्रुतं मया क्वापि सत्यं सत्यं वचो मम॥**' (शुकसं०, सी० रा० प्र० प्र० से उद्धृत)

अमर-कथा

श्रीशुकदेवजीके श्रीरामनामपरत्व सुनकर अमर होनेकी कथा इस प्रकार है—एक समय श्रीपार्वतीजीने श्रीशिवजीसे पूछा कि आप जिससे अमर हैं वह तत्त्व कृपा करके मुझे उपदेश कीजिये। यह सोचकर कि यह तत्त्व परम गोप्य है, भगवान् शंकरने डमरू बजाकर पहले समस्त जीवोंको वहाँसे भगा दिया। तब वह गुह्य तत्त्व कथन करने लगे। दैवयोगसे एक शुकपक्षीका अण्डा वहाँ रह गया जो कथाके समय ही फूटा। वह शुकपोत अमरकथा सुनता रहा। बीचमें श्रीपार्वतीजीको झपकी आ गयी तब वह शुकपोत उनके बदले हुँकारी देता रहा। पार्वतीजी जब जगीं तो उन्होंने प्रार्थना की कि नाथ! मुझे झपकी आ गयी थी, अमुक स्थानसे फिरसे सुनानेकी कृपा कीजिये। उन्होंने पूछा कि हुँकारी कौन भरता था? और यह जाननेपर कि वे हुँकारी नहीं भरती थीं, उन्होंने जो देखा तो एक शुक देख पड़ा। तुरन्त उन्होंने उसपर त्रिशूल चलाया पर वह अमर-कथाके प्रभावसे अमर हो गया था। त्रिशूलको देख वह उड़ता-उड़ता भगवान् व्यासजीके यहाँ आया और व्यासपत्नी-(जो उस समय जँभाई ले रही थीं-) के मुखद्वारा उनके उदरमें प्रवेश कर गया। वही श्रीशुकदेवजी हुए। ये जन्मसे ही परमहंस और मायारहित रहे। इनकी कथाएँ श्रीमद्भागवत, महाभारत आदिमें विलक्षण-विलक्षण हैं। (श्रीरूपकलाजीकृत भक्तमाल-टीकासे)

सु० द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'शुक नाम-माहात्म्यरूप भागवतके ही कारण महानुभाव हुए, पिता व्यास, पितामह पराशरसे भी परीक्षित्की सभामें आदरको पाया।'

(ख) ***'ब्रह्मसुख भोगी'*** कहकर जनाया कि वे ब्रह्मरूप ही हो गये। यथा—**'योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।'** (भा० १२। १३। २१)

(ग) श्रीसनकादि भी नामप्रसादसे ही जीवन्मुक्त और ब्रह्मसुखमें लीन रहते हैं, यह इससे भी सिद्ध होता है कि ये श्रीरामस्तवराजस्तोत्रके ऋषि (प्रकाशक) हैं। उस स्तवराजमें श्रीरामनामको ही **'परं जाप्यम्'** बताया गया है। यथा—**'श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।'** (५), ***'ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥'*** (७। ३२), ***'जीवनमुक्त ब्रह्मपर।'*** (७। ४२)

सू० मिश्र—यह बात भा० २। १। ११ में लिखी है कि ज्ञानियोंको यही ठीक है कि प्रत्येक क्षणमें परमेश्वरका नाम लेवें और कुछ नहीं। यथा—**'योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्।'** **'योगिनाम्'** का अर्थ श्रीधरस्वामीने यह लिखा है—**'योगिनां ज्ञानिनां फलं चैतदेव निर्णीतं नात्र प्रमाणं वक्तव्यमित्यर्थः।'** अर्थात् यह फल योगियों अर्थात् ज्ञानियोंका निर्णय किया हुआ है।

श्रीमद्भागवतके अन्तमें भी यह लिखा है कि परमेश्वरका नाम सारे पापको नाश करनेवाला है। यथा—**'नाम संकीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्। प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥'** (१२। १३। २३) इसी कारण गोसाईंजीने लिखा कि शुक-सनकादि भी नामके प्रभावसे सुखका अनुभव करते हैं। (मानसपत्रिका)

नोट—६ श्रीशुकदेवजीको श्रीसनकादिके पहले यहाँ भी लिखा है। इसका कारण मिश्रजी यह लिखते हैं कि 'शुकदेवजी अनर्थप्रद युवावस्थाके अधीन न हुए। सनकादिकोंने परमेश्वरसे वरदान माँगा कि हम बालक ही बने रहें जिससे कामके वशीभूत न हों। इस कारण इनके नामका उल्लेख ग्रन्थकारने पीछे किया।.....' शुकदेवजी परमेश्वरके रूप ही कहे जाते हैं, यथा—**'योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे। संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥'** (भा० १२। १३। २१) दोहा १८ (५) देखिये।

श्रीबालअलीजीने इसका कारण यों लिखा है कि—***'जन जु अनन्य आश्रय बल गहै। तिनपर दया न करि हरि चहै। वय आश्रित सनकादिक भयो। क्रोध अभयपुरमें ह्वै गयो। हरि आश्रित शुक यौवन माहीं। काम क्रोध नहिं तिहि ढिग जाहीं॥'*** (सिद्धान्तदीपिका। मा० मा०), अर्थात् श्रीशुकदेवजी युवावस्थामें रहते हुए सदा भगवान्के आश्रित रहे, तब ***'सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'*** और

श्रीसनकादिजीने पाँच वर्षकी अवस्थाको विकाररहित जानकर उस अवस्थाका आश्रय लिया था न कि प्रभुका। इसीसे उनमें विकार आ ही गया।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि * हरि हर प्रिय आपू॥ ३॥

अर्थ—श्रीनारदजीने नामका प्रताप जाना। जगन्मात्रको हरि प्रिय हैं, हरिको हर प्रिय हैं और हरि तथा हर दोनोंको आप प्रिय हैं॥ ३॥

नोट—१ ***'नारद जानेउ नाम प्रतापू'*** इति। कैसे जाना? इसी ग्रन्थमें इसका एक उत्तर मिलता है। नारदको दक्षका शाप था कि वे किसी एक स्थानपर थोड़ी देरसे अधिक न ठहर सकें। यथा—'**तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम्।**' (भा० ६। ५। ४३) अर्थात् सम्पूर्ण लोकोंमें विचरते हुए तेरे ठहरनेका कोई निश्चित स्थान न होगा। परन्तु हिमाचलकी एक परम पवित्र गुफा जहाँ गंगाजी बह रही थीं, देखकर ये वहाँ बैठकर भगवन्नामका स्मरण ज्यों ही करने लगे, त्यों ही शापकी गति रुक गयी, समाधि लग गयी। यथा—***'सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥'*** (१। १२५) इन्द्रने डरकर इनकी समाधिमें विघ्न डालनेके लिये कामको भेजा। उसने जाकर अनेक प्रपंच किये, पर ***'काम कला कछु मुनिहि न व्यापी।'*** नारदके मनमें न तो काम ही उत्पन्न हुआ और न उसकी करतूतिपर उनको क्रोध हुआ। यह सब नाम-स्मरणका प्रभाव था, जैसा कहा है—***'सीम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥'*** (१। १२६) परन्तु उस समय दैवयोगसे वे भूल गये कि यह स्मरणका प्रभाव एवं प्रताप है। उनके चित्तमें अहंकार आ गया कि शंकरजीने तो कामहीको जीता था और मैंने तो काम और क्रोध दोनोंको जीता है। उसका फल जो हुआ उसकी कथा विस्तारसे ग्रन्थकारने आगे दी ही है। भगवान्‌ने अपनी मायासे उनके लिये लीला रची जिसमें उनको काम, लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार सभीने अपने वश कर लिया। माया हटा लेनेपर प्रभुके चरणोंपर त्राहि-त्राहि करते हुए गिरनेपर प्रभुकी कृपासे इनकी बुद्धि ठीक हुई और इन्होंने जाना कि यह सब नामस्मरणका ही प्रताप था; इसीसे अवतार होनेपर उन्होंने यह वर माँग लिया कि 'रामनाम सब नामोंसे श्रेष्ठ हो', श्रीरामनामके वे आचार्य और ऋषि हुए। गणेशजी, प्रह्लादजी, व्यासजी आदिको नामका प्रताप आपने ही तो बताया है।

नोट—२ ***'जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू'*** इति। इसमें 'मालादीपक अलंकार' है। इस अलंकारमें एक धर्मके साथ उत्तरोत्तर धर्मियोंका सम्बन्ध वर्णित होता है। यथा—(साहित्यदर्पणे) '**तन्मालादीपकं पुनः। धर्मिणामेकधर्मेण सम्बन्धो यद्यथोत्तरम्॥**' उदाहरण यथा—'**त्वयि संगरसम्प्राप्ते धनुषा सादिताः शराः। शरैररिशिरस्तेन भूस्तया त्वं त्वया यशः॥**' अर्थात् संग्राममें आपके आनेपर धनुषने शर, शरने शत्रुशिर, उसने पृथ्वी, पृथिवीने आपको और आपने यशको प्राप्त किया। यहाँ धनुरादि सभी धर्मियोंकी प्राप्ति, कर्तृत्वरूपी एक धर्मका वर्णन हुआ है। अतः यहाँ मालादीपकालंकार माना गया। उसी तरह ***'जग', 'हरि हर'*** और ***'आपू'*** इन सभी धर्मियोंमें 'प्रियत्वरूपी एक धर्म' के वर्णनसे 'मालादीपक अलंकार' माना गया है। काव्यप्रकाशके मतमें पूर्वकथित वस्तुको उत्तरोत्तर वस्तुके उत्कर्षके हेतु होनेसे 'मालादीपक अलंकार' माना गया है। यथा—'**मालादीपकमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम्।**' इस मतसे भी यहाँ 'मालादीपक' ही होता है। क्योंकि

---

* यह पाठ 'हरि हरि हर' १७०४, १७२१, १७६२, छ०, को० रा० में है। १६६१ में प्रथम यही पाठ था; पर बीचके 'हरि' के 'ि ' पर हरताल दिया गया है जिससे 'हरि हर हर' पाठ हो जाता है। इस पाठका अर्थ होगा—'जगत्‌को हरि प्रिय, हरिको हर प्रिय और हरको आप प्रिय हैं।' पंजाबीजी और वि० टी० तथा मा० प्र० ने 'हरि हर हरि' पाठ दिया है। जिसका अर्थ होगा—'जगको हरि प्रिय, हरिको हर और हर-हरिको आप प्रिय हैं।' वा, 'जगको हरिहर प्रिय हैं और हरिको आप प्रिय हैं।'

जगत्के प्रिय हरि, हरिके प्रिय हर और उनके प्रिय आप (नारद) हैं। इस प्रकारके कथनसे उत्तरोत्तर उत्कर्षकी प्रतीति स्पष्ट हो रही है।*

जगको हरि, हरिको हर, हरिहरको नारद प्रिय हैं। प्रमाण क्रमसे यथा—(१) ***'ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी॥'*** (बा० २१६), ***'मो बिनुको सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं॥'*** (अ० १८१), ***'अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं।'*** (२। १६२) (२), ***'सिव समान प्रिय मोहि न दूजा'*** (लं० २), ***'कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥'*** (१। १३८) (३), ***'करत दंडवत लिये उठाई। राखे बहुत बार उर लाई॥'''''कवन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मांगी॥'*** (३। ४१-४२), ***'मार चरित संकरहिं सुनाये। अति प्रिय जानि महेसु सिखाये॥'*** (१। १२७) पुनश्च यथा—**'शास्म्यहं त्वया विशेषेण मम प्रियतमो भवान्। विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्भक्तोऽतीव मेऽनुगः॥'** (शिवपुराण, रुद्रसंहिता २ अ० २ श्लोक ३४) ये वचन श्रीशिवजीके हैं।

नोट—३ श्री सु० द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'प्रथम 'हरि' से विष्णुका ग्रहण करनेके अर्थमें कुछ रोचकता नहीं आती।' वे उत्तरार्द्धका अर्थ यों करते हैं—'जगत्में जितने हरि और हरके प्रिय पात्र थे सबको (हरि) हरणकर अर्थात् सबको नीचाकर आप हरिहरके सर्वोत्तम प्रिय हुए; दासीपुत्रसे देवर्षि हो गये। यही अर्थ ग्रन्थकारको अभिप्रेत है'।

पं० रामकुमारजी इसका एक भाव यह कहते हैं कि 'रामनाम' भक्तके हृदयको निर्विकार कर देते हैं, हरिहरमें भेद नहीं रह जाता, भेद रहना ही विकार है, यथा—***'प्रथमहि कहि मैं सिवचरित बूझा मरम तुम्हार।'***

नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥ ४॥

शब्दार्थ—**प्रसादू**=प्रसन्नता, रीझ, कृपा। **'प्रसादस्तु प्रसन्नता'** (अमरे १। ३। १६)

अर्थ—नामके जपनेसे प्रभुने प्रसन्नता प्रकट की जिससे प्रह्लादजी भक्तोंमें शिरोमणि हो गये॥ ४॥

नोट—१ ***'भगत सिरोमनि।'*** प्रह्लादजीको भक्तशिरोमणि कहा, क्योंकि द्वादश प्रधान भक्तोंमेंसे इनका नाम पाण्डवगीतामें प्रथम दिया गया है। यथा—**'प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनक-भीष्मदाल्भ्यान्। रुक्मांगदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्पुण्यानिमान्परमभागवतान्स्मरामि।।' (१)** भक्तशिरोमणि होनेका प्रमाण श्रीभागवतमें भी मिलता है, यथा—**'भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः। भवान् मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक्॥'** (भा० ७। १०। २१)। श्रीनृसिंहभगवान् कहते हैं कि 'संसारमें जो लोग तुम्हारा अनुकरण करेंगे वे मेरे भक्त हो जायँगे। निश्चय ही तुम मेरे सम्पूर्ण भक्तोंमें आदर्शस्वरूप हो।' भगवान्ने जब स्वयं उनको सम्पूर्ण भागवतोंमें आदर्श माना-जाना है तब 'भक्तशिरोमणि' गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है। नवधाभक्तिके ***'सुठि सुमिरन'*** अत्यन्त स्मरणरूप भक्तिनिष्ठाके नियन्ता वा नेता आप ही हैं। किसने भगवान्को पाषाणसे प्रकट कराकर उनकी सर्वव्यापकता प्रकट की? नारदजी कहते हैं—**'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः। अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥** (भा० ७। ८। १८) अर्थात् भक्तकी वाणीको सत्य करने, अपनी व्यापकता सबको दिखानेके लिये सभाके उसी खम्भसे विचित्ररूप धारण किये हुए, जो न मनुष्य ही था न सिंह, प्रकट हो गये। —गोस्वामीजीने भी कहा है—***'सेवक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ ताप न डाढ़े। प्रेम बदौं प्रह्लादहि को जिन्ह पाहन तें परमेश्वर काढ़े॥'*** (क० ७। १२७) श्रीसुधाकर द्विवेदीजी कहते हैं कि नृसिंहजी

---

* अप्पय दीक्षितके मतानुसार यह अलंकार दीपक और एकावलीके मेलसे बनता है। 'जग जपु राम राम जपु जेही' में मालादीपक है। विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥', 'बिनु गुरु होइ कि ज्ञान ज्ञान कि होइ विराग बिनु' में एकावली है। 'संग ते जती कुमंत्र ते राजा। मान तें ज्ञान पान तें लाजा॥ प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥' में दीपक है।

हिरण्यकशिपुको मारकर प्रह्लादको गोदमें लेकर जिह्वासे चाटते थे। ऐसी कृपा किसी भक्तपर नहीं प्रकट की गयी। इसीसे उनको भक्तशिरोमणि कहा।

नोट—२ शंका—प्रह्लादजी भक्तशिरोमणि हैं तो यहाँ उनको नारदजीसे पहले क्यों न कहा?

समाधान—पाण्डवगीता और भागवतकी बात उन्होंने 'भक्त शिरोमणि' कहकर रखी और यह कहते हुए भी नारदजीको प्रथम रखकर गुरुकी मर्यादा, उनका उचित सम्मान करके रखी।

नोट—३ प्रह्लादजीने नारदजीसे कब उपदेश पाया? यह कथा भा० स्कं० ७ अ० ७ में है। यह कथा प्रह्लादजीने स्वयं दैत्यबालकोंसे उनको रामनाममें विश्वास दिलानेके लिये कही थी। वह यह है कि 'जब हिरण्यकशिपु तप करनेको चला गया तब इन्द्रादि देवताओंने दैत्योंपर धावा किया, वे सब जान बचाकर भागे। इन्द्र मेरी माता राजरानीको पकड़कर स्वर्गको चले। मार्गमें नारदजी मिले और उनसे बोले कि निरपराध सती और परस्त्रीको ले जाना अयोग्य है। इन्द्रने कहा कि इसके गर्भमें दैत्यराजका दुःसह वीर्य है, पुत्र होनेपर उसे मार डालूँगा और इसे तब छोड़ दूँगा। नारदजीने उत्तर दिया कि इसके गर्भमें एक निष्पाप, अपने गुणोंसे महान्, विष्णुभगवान्‌का अनुचर और पराक्रमी महाभागवत है। वह तुम्हारे द्वारा मारा नहीं जा सकता। यथा—'**अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान्। त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली॥**' (७। १०) नारदजीके वचनका आदर कर विश्वास मान इन्द्रने उसे छोड़ दिया। नारदजी उसे अपने आश्रममें ले आये और मेरे उद्देश्यसे उन्होंने मेरी माताको धर्मके तत्त्व और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया। ऋषिके अनुग्रहसे मैं उसे अभीतक नहीं भूला—जो प्रेमपूर्वक लज्जा छोड़कर 'हे हरे! हे जगन्नाथ! हे नारायण!' इत्यादि रीतिसे कीर्तन करता है वह मुक्त हो जाता है।

प्रह्लादजी सर्वत्र 'राम' हीको देखते थे। पिताने इनको पानीमें डुबाया, आगमें डाला, सिंह और मतवाले हाथियोंके आगे डलवाया इत्यादि अनेक उपाय करके हार गया, पर इनका बाल-बाँका न हुआ और इन्होंने 'रामनाम' न त्याग किया। अन्तमें उस दुष्टने स्वयं इनका वध करना चाहा। उसी समय पत्थरके खम्भेसे भगवान् रामचन्द्रजी नृसिंहरूपसे प्रकट हो गये और हिरण्यकशिपुका वध किया।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ* अचल अनूपम ठाऊँ॥ ५॥

शब्दार्थ—**सगलानि**=ग्लानिसहित। ग्लानि मनकी वह वृत्ति है जिसमें किसी अपने कार्यकी बुराई या दोष आदिको देखकर अरुचि, खेद और खिन्नता उत्पन्न होती है। **नाऊँ** (नाँव, नाम)=नाम। **ठाऊँ**=ठाम, स्थान।

अर्थ—श्रीध्रुवजीने ग्लानिसे (सौतेली माँके कठोर वचनोंसे हृदय बिंध जानेसे दुःखी होकर) भगवान्‌के नामको जपा। उससे उन्होंने अटल उपमारहित धाम पाया॥ ५॥

नोट—१ '***ध्रुव***' इति। इनकी कथा भागवत-स्कन्ध ४ अ० ८, ९, १०, ११, १२ में है। '***सगलानि***' का प्रसंग अ० ८ श्लोक ९ से ३८ तक है। अ० ९ श्लोक २९ भी '***सगलानि जपेउ हरि नाऊँ***' का प्रमाण है यथा—'**मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन्। नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान्॥**' (मैत्रेयजी कहते हैं कि ध्रुवजीने अपनी सौतेली माताके वाग्वाणोंसे हृदयमें विद्ध होकर हरिका स्मरण करते हुए भी उन मुक्तिदातासे मुक्ति नहीं माँगी इससे उनको पश्चात्ताप हुआ। कथा इस प्रकार है—स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपाद थे जिनके दो रानियाँ थीं—एक सुनीति, दूसरी सुरुचि। छोटी रानी सुरुचिपर राजाका बड़ा प्रेम था, उससे 'उत्तम' हुआ और सुनीतिसे ध्रुवजी हुए। राजा प्रायः सुरुचिके महलमें रहते थे। एक दिन वहाँ बैठे जिस समय राजा उत्तमको गोदमें लिये खिला रहे थे, ध्रुवजी बालकोंके साथ खेलते-खेलते वहाँ पहुँच गये और पितासे जाकर कहा कि हम भी गोदमें बैठेंगे। राजाने सुरुचिके भयसे इनकी ओर देखा भी नहीं। ये बालक (पाँच वर्षके) थे, इससे सिंहासनपर चढ़ न सकते थे। इन्होंने कई बार पुकारा पर

* थापेउ—१७२१, १७६२।

राजाने कान न दिया। तब सुरुचि राजाके समीप ही बड़े अभिमानपूर्वक भक्तराजजीसे बोली—'वत्स! तू राजाकी गोदमें सिंहासनपर बैठनेकी इच्छा करता है, तू उसके योग्य नहीं। तू यह इच्छा न कर, क्योंकि तू हमारे गर्भसे नहीं उत्पन्न हुआ। तू राज्यसिंहासनका अधिकारी तभी होता जब हमारे उदरसे तेरा जन्म होता। तू बालक है, तू नहीं जानता कि तू अन्य स्त्रीका पुत्र है। जा, पहले तप करके भगवान्‌का भजन कर, उनसे वर माँग कि तेरा जन्म सुरुचिसे हो तब हमारा पुत्र हो राजाके आसनका अधिकारी हो सकता है। पहले अपने संस्कार अच्छे बना। अभी तेरा या तेरी माँका पुण्य इतना नहीं है।' अपने और अपनी माताके विषयमें ऐसे निरादरके और हृदयमें बिंधनेवाले विषैले वचन सुन ध्रुवजी खड़े ठिठक-से रह गये और लम्बी साँसें भरने लगे—राजा सब देखता-सुनता रहा पर कुछ न बोला। राजाको तुरंत छोड़, चीख मारकर रोते, साँसें लेते, ओंठ फड़फड़ाते हुए आप माँके पास आये। साथके लड़के भी साथ गये। माँने यह दशा देख तुरंत गोदमें उठा लिया। बालकोंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। वह बोली—'वत्स! तू किसीके अमंगलकी इच्छा न कर; कोई दुःख दे तो उसे सह लेना चाहिये।....सुरुचिके वचन बहुत उत्तम और सत्य हैं। हम दुर्भगा हतभाग्या हैं, हमारे गर्भसे तुम हुए सो ठीक है। सिवाय भगवान्‌के और कोई दुःखके पार करने और सुखका देनेवाला नहीं। ब्रह्मा, मनु आदि सभी उन्हींके चरणोंकी भक्ति करके ऐश्वर्य और सुखको प्राप्त हुए। तू भी मत्सररहित और निष्कपट होकर उनके चरणोंकी आराधना कर।' माताके ऐसे मोह-तम-नाशक वचन सुन बालक ध्रुव यही निश्चयकर माताको प्रणामकर आशीर्वाद ले चल दिये। नारद मुनिने सब जाना तो बड़े विस्मित हुए कि 'अहो! बालककी ऐसी बुद्धि....क्षत्रिय कभी अपमान नहीं सह सकते। पाँच वर्षका बालक! इसको भी सौतेली माँके कटुवचन नहीं भूलते!' नारदजीने इन्हें आकर समझाया-बुझाया कि घर चल, आधा राज्य दिला दें। भगवान्‌की आराधना क्या खेल है? योगी-मुनिसे भी पार नहीं लगता। इत्यादि (परीक्षार्थ कहा)। ध्रुवजीने उत्तर दिया कि 'मैं घोर क्षत्रियस्वभावके वश हूँ, सुरुचिके वचनरूपी बाणोंसे मेरे हृदयमें छिद्र हो गया। आपके वचन इसीसे उसमें नहीं ठहरते। यथा—'**अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्त्रं घोरमुपेयुषः। सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि॥**' (भा० ४। ८। ३६) '***सगलानि***' का प्रसंग यहाँ समाप्त हुआ।

नारदजीने मन्त्र और ध्यान इत्यादि बताया। छः मासहीमें भगवान्‌ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और ध्रुवजीके गालोंपर शंख छुआया जिससे उनकी जिह्वापर देवसम्बन्धी वाणी प्राप्त हो गयी, उनको अपना और परस्वरूपका ज्ञान हो गया।....घर आनेपर फिर उस सुरुचिने भी इनको प्रणाम किया। भगवान् प्रसन्न होते हैं तो चराचरमात्र प्रसन्न हो जाता है। ध्रुवजीको राज्य मिला और अन्तमें अचल स्थान मिला। ध्रुवतारा इन्हींका लोक है। विनय० पद ८६ भी देखिये।

नोट—२ '***सगलानि***' जपसे छः मासमें ही श्रीहरिने उनको ध्रुवलोक दिया और इस पृथ्वीका छत्तीस हजार वर्ष राज्य दिया तथा यह वर दिया कि नाना प्रकारके भोग भोगकर तू अन्तकालमें मेरा स्मरणकर सम्पूर्ण लोकोंसे वन्दनीय सप्तर्षियोंके लोकोंसे भी ऊपर मेरे निज धामको जायगा, जहाँसे फिर संसारमें लौटना नहीं होता, यथा—'**ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम्। उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः॥**' (भा० ४। ९। २५)

नोट—३ '***अचल अनूपम ठाऊँ***' इति। ध्रुवतारा स्थिर है। सप्तर्षि आदि तारागण उसकी नित्य परिक्रमा करते हैं। कल्पमें भी उसका नाश नहीं होता। अतः अचल कहा। यह तेजोमय है। उसमें ग्रह, नक्षत्र और तारागणरूप ज्योतिश्चक्र स्थित हैं [भा० ४। ९। २०] परम ज्ञानी सप्तर्षिगण भी उसे न पाकर केवल नीचेसे देखते रहते हैं। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, नक्षत्र और तारागण इसकी निरन्तर प्रदक्षिणा करते रहते हैं। इस पदको उस समयतक और कोई भी न प्राप्त कर सका था, यह विष्णुभगवान् जगद्वन्द्यका परमपद है (भा० ४। १२। २४) यह सब ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है और इसके प्रकाशसे तीनों लोक आलोकित हैं। (भा० ४। १२। ३६) अतः '***अनूपम***' कहा।

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं कि 'ध्रुव' का एक प्रतिबिम्ब दूसरा 'ध्रुव' भी दक्षिण ओर अचल है। इन्हीं दोनोंकी प्रदक्षिणा आकाशमें सब ग्रह-नक्षत्र करते हैं। [सम्भवतः दूसरा ध्रुव आदि वह हैं जो विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे निर्माण किये थे]

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥ ६॥

अर्थ—पवनदेवके पुत्र श्रीहनुमान्‌जीने (भी) इस पवित्र नामको स्मरणकर श्रीरामचन्द्रजीको अपने वशमें कर लिया॥ ६॥

नोट—१ *'सुमिरि पवनसुत'* इति। आपका रामनाम स्मरण बड़ा विलक्षण है। श्रीरामनाम आपका जीवन है, आपके रोम-रोममें श्रीरामनाम अंकित ही नहीं, किन्तु श्रीनामकी ध्वनि भी उनमेंसे उठती है। ऐसा आश्चर्यमय स्मरण कि **'न भूतो न भविष्यति'!!!** प्रमाण यथा—**'नाम्नः पराशक्तिपतेः प्रभावं प्रजानते मर्कटराजराजः। यद्रूपरागीश्वरवायुसूनुस्तद्रोमकूपे ध्वनिमुल्लसन्तम्॥'** (प्रमोद नाटक) भक्तमाल भक्तिरसबोधिनी टीका कवित्त २७ भी आपके वैराग्य और नाम-स्मरणका उदाहरण है कि रामनामहीन अत्यन्त अमूल्य पदार्थको भी वे तुच्छ समझ अपने पास भी नहीं रखते—*'राम बिनु काम कौन फोरि मणि दीन्हे डारि, खोलि त्वचा नामही दिखायो बुद्धि हरी है॥'*

नोट—२ *'पवनसुत'* का भाव यह है कि पवित्र करनेवालोंमें 'पवनदेव' सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंमें उनको गिनाया है। यथा—**'पवनः पवतामस्मि'** (गीता १०। ३१), अर्थात् मैं पवित्र करनेवालोंमें वायु हूँ। उनके ये पुत्र हैं तब भी उन्होंने श्रीरामनामको ही परम पावन समझकर उसे जपा। यही कारण है कि उन्होंने अनन्य भक्तोंको यही कहकर रामनाम जपनेको कहा है। यथा—**'कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य॥.....'** (श्रीहनुमन्नाटकका यही मंगलाचरण है।) *'पावन'* को *'पवनसुत'* और *'नामू'* दोनोंका विशेषण मान सकते हैं। पवनसुत भी पावन और नाम भी पावन; यथायोग्यका सम्बन्ध दिखाया। *'पावन'* विशेषण देकर जनाया कि इन्होंने 'राम' यही नाम जपा। यह सब नामोंमें श्रेष्ठ है जैसा पूर्व दिखाया जा चुका है—*'राम सकल नामन्ह ते अधिका'।* अतः *'पावन'* विशेषण इसीके लिये दिया।

नोट—३ बाबा हरिदासजी कहते हैं कि—'श्रीहनुमान्‌जीने निष्काम नामको जपा है, इसीसे *'पावन'* कहा। अर्थात् वे स्वयं पवित्र हैं और उन्होंने पवित्र रीतिसे स्मरण किया है। [यदि वे निष्काम न होते तो प्रभु उनके हृदयमें धनुष-बाण धारण किये हुए कभी न बसते। श्रीवचनामृत है कि *'बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम। तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥'* (३। १६)]

द्विवेदीजी—**'पावन नामू'** इति। 'हजारों नामोंमें यही (राम) नाम सबसे पवित्र है—*'सहस नाम सम सुनि सिव बानी।'* नामके प्रसादसे हनुमान्‌जीने श्रीरामजीको वशमें कर लिया। रामजी रहस्य-विहारके समयमें भी इनको साथ रखते थे। उत्तरकाण्डमें लिखा है कि *'भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥'* जिसने जगज्जननी जानकीजीसे आशीर्वाद पाया *'अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥'* (सुं०) और पुत्र कहवाया, वह यदि रामको वश कर रखे तो कुछ चित्र नहीं। ग्रन्थकार भी हनुमत्कृपाहीसे रामदास कहाये। रामजीने मुख्य इन्हींके कहनेसे तुलसीदासको अपना दास बनाया, यह विनय-पत्रिकाके अन्तिम पदसे स्पष्ट है।

टिप्पणी—१ यहाँ गोसाईंजी श्रीरामचन्द्रजीको वशमें करनेका उपाय बताते हैं। श्रीरामनामके स्मरणसे वश होते हैं; परन्तु वह स्मरण भी पवनसुतका-सा होना चाहिये। पवन पवित्र, उनके पुत्र पवित्र और नाम पवित्र। *'पावन'* शब्द देकर सूचित करते हैं कि पवित्रतासे स्मरण करे, किसी प्रकारकी कामना न करे। यह भाव *'करि राखे'* पदसे भी टपकता है। *'करि राखे'* का तात्पर्य यह है कि श्रीरामचन्द्रजीसे कुछ चाहा नहीं, कुछ लिया नहीं; इसीसे वे वशमें हो गये।

नोट—४ श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'यहाँ पावन शब्द बड़ा सुन्दर और सारगर्भित है। ग्रन्थकारने प्रथम श्रीरामनामकी महिमा बड़ी विलक्षणतापूर्वक कही। पश्चात् अन्य नामोंकी महिमा उदाहरण-संयुक्त कही, यथा—*'ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।'* अब पुनः रामनामका महत्त्व वर्णन करना है। हनुमान्‌जीकी वृत्ति तथा नियम और प्रेमका उदाहरण-समेत। इससे रामनामके साथ *'पावन'* शब्द देकर गम्भीर रहस्यको बतलाया।'

नोट—५ *'अपने बस करि राखे'* इति (क) 'वशमें कर रखा'; यथा—*'दीबे को न कछू रिनियाँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ।'* (विनय० १००), *'तेरो रिनी हौं कह्यो कपि सों'* (विनय० १६४), *'सांची सेवकाई हनुमान की सुजानराय रिनिया कहाये हौ बिकाने ताके हाथ जू।'* (क० ७। १९) वाल्मीकीयमें भी प्रभुने कहा है कि तुम्हारे एक-एक उपकारके लिये मैं अपने प्राण दे सकता हूँ, पर शेष उपकारोंके लिये तो मैं तुम्हारा सदा ऋणी ही रहूँगा। तुमने जो-जो उपकार मेरे साथ किये हैं वे सब मेरे शरीरहीमें जीर्ण हो जायँ, यही मैं चाहता हूँ। इनके प्रत्युपकारका अवसर नहीं चाहता, क्योंकि उपकारीका विपत्तिग्रस्त होना ही प्रत्युपकारका समय है, सो मैं नहीं चाहता कि तुमपर कभी विपत्ति पड़े। यथा—**'एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे। शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥ मदंगे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे। नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥'** (वाल्मी० ७। ४०। २३-२४) (ख) 'वशमें कर रखा।' कहकर जनाया कि श्रीहनुमान्‌जीमें सन्तोंके वे समस्त गुण हैं जिनसे श्रीरामजी उनके वश होते हैं। श्रीरघुनाथजीने नारदजीसे वे गुण यों कहे हैं। यथा—*'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ॥ षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥'* (३। ४५। ६-७) से *'हेतु रहित परहित रत सीला'* तक। (ग) देवता अपने मन्त्रके वशमें रहते हैं, यथा—*'मन्त्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।'* (१। २५६) श्री 'राम' यह नाम श्रीरामजीका मन्त्र है, यथा—*'महामंत्र जोइ जपत महेसू।'* इसीसे श्रीरामनामके जपसे श्रीरामजी वशमें हो गये।

अपतु* अजामिलु गजु गनिकाऊ। भये मुकुत हरि-नाम-प्रभाऊ॥ ७॥

शब्दार्थ—**अपतु**=पतित, पापी, यथा—*'पावन किय रावनरिपु तुलसिहुँ से अपत'* (वि० १३०), *'अपत उतार अपकारको अगार जग जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको'* (क० उ० ६८)

अर्थ—अजामिल, गजेन्द्र और गणिका—ऐसे पतित भी भगवान्‌के नामके प्रभावसे मुक्त हो गये॥ ७॥

टिप्पणी—*'अपतु'* इति। उत्तम भक्तोंकी गिनती श्रीशिवजीसे प्रारम्भ की। यथा—*'महामंत्र जोइ जपत महेसू।'* और शिवजीहीपर समाप्त की। यथा—*'सुमिरि पवनसुत पावन नामू।'* श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं, यथा—*'रुद्रदेह तजि नेह बस, बानर भे हनुमान॥ जानि रामसेवा सरस समुझि करब अनुमान। पुरुषा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान॥'* (दोहावली १४२-१४३) अर्थात् *'महामंत्र जोइ जपत महेसू'* से *'सुमिरि पवनसुत'* तक उच्च कोटिके भक्तोंको गिनाया, अब पतितोंके नाम देते हैं जो नामसे बने।

'अपत' की गिनती अजामिलसे प्रारम्भ करके अपनेमें समाप्ति की। गोस्वामीजीने अपनी गणना भक्तोंमें नहीं की। यह उनका कार्पण्य है।

नोट—१ *'अजामिल'* इति। इनकी कथा श्रीमद्भागवत स्कन्ध (६ अ० १, २) में, भक्तिरसबोधिनी टीकामें विस्तारसे है। ये कन्नौजके एक श्रुतसम्पन्न (शास्त्रज्ञ) सुस्वभाव और सदाचारशील तथा क्षमा, दया आदि अनेक शुभगुणोंसे विभूषित ब्राह्मण थे। एक दिन यह पिताका आज्ञाकारी ब्राह्मण जब वनमें फल, फूल, समिधा और कुशा लेने गया, वहाँसे इनको लेकर लौटते समय वनमें एक कामी शूद्रको एक वेश्यासे निर्लज्जतापूर्वक रमण करते देख यह कामके वश हो गया—उसके पीछे इसने पिताकी सब सम्पदा नष्ट कर दी, अपनी सती स्त्री और परिवारको छोड़ उस कुलटाके साथ रहने और जुआ, चोरी इत्यादि कुकर्मोंसे जीवनका निर्वाह

* अपरु—१७०४। जपत—को० रा०। अपत—१६६१, १७२१, १७६२, छ०।

और उस दासीके कुटुम्बका पालन करने लगा। इस दासीसे उसके दस पुत्र थे। अब वह अस्सी वर्षका हो चुका था। (भा० ६। १। ५८—६५, २१—२४) एक साधुमण्डली ग्राममें आयी, कुछ लोगोंने परिहाससे उन्हें बताया कि अजामिल बड़ा सन्तसेवी धर्मात्मा है। वे उसके घर गये तो दासीने उनका आदर-सत्कार किया। उनके दर्शनोंसे इसकी बुद्धि फिर सात्त्विकी हो गयी। सेवापर रीझकर उन्होंने इससे कहा कि जो बालक गर्भमें है उसका नाम 'नारायण' रखना। इस प्रकार सबसे छोटेका नाम 'नारायण' पड़ा। यह पुत्र उसको प्राणोंसे प्यारा था। अन्तकालमें भी उसका चित्त उसी बालकमें लग गया। उसने तीन अत्यन्त भयंकर यमदूतोंको हाथोंमें पाश लिये हुए अपने पास आते देख विह्वल हो दूरपर खेलते हुए पुत्रको 'नारायण, नारायण' कहकर पुकारा। तुरन्त नारायण-पार्षदोंने पहुँचकर यमदूतोंके पाशसे उसे छुड़ा दिया। (भा० ६। १। २४—३०) भगवत्-पार्षदों और यमदूतोंमें वाद-विवाद हुआ। उसने पार्षदोंके मुखसे वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित सगुण धर्म सुना। भगवान्‌का माहात्म्य सुननेसे उसमें भक्ति उत्पन्न हुई। (६। २। २४-२५) वह पश्चात्ताप करने लगा और भगवद्भजनमें आरूढ़ हो भगवल्लोकको प्राप्त हुआ। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि पुत्रके मिस भगवन्नाम उच्चारण होनेसे तो पापी भगवद्धामको गया तो जो श्रद्धापूर्वक नामोच्चारण करेंगे उनके मुक्त होनेमें क्या सन्देह है?—***'नाम लियो पूत को पुनीत कियो पातकीस।'*** (क० उ० १८), **'म्रियमाणो हरेर्नामगृणन्पुत्रोपचारितम्। अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥'** (अ० २ श्लो० ४९)

नोट—२ ***'गज'***—क्षीरसागरके मध्यमें त्रिकूटाचल है। वहाँ वरुणभगवान्‌का ऋतुमान् नामक बगीचा है और एक सरोवर भी। एक दिन उस वनमें रहनेवाला एक गजेन्द्र हथिनियोंसहित उसमें क्रीड़ा कर रहा था। उसीमें एक बली ग्राह भी रहता था। दैवेच्छासे उस ग्राहने रोषमें भरकर उसका चरण पकड़ लिया। अपनी शक्तिभर गजेन्द्रने जोर लगाया। उसके साथके हाथी और हथिनियोंने भी उसके उद्धारके लिये बहुत उपाय किये पर उसमें समर्थ न हुए। एक हजार वर्षतक गजेन्द्र और ग्राहका परस्पर एक-दूसरेको जलके भीतर और बाहर खींचा-खींची करते बीत गये। अन्ततोगत्वा गजेन्द्रका उत्साह, बल और तेज घटने लगा और उसके प्राणोंके संकटका समय उपस्थित हो गया—उस समय अकस्मात् उसके चित्तमें सबके परम आश्रय हरिकी शरण लेनेकी सूझी और उसने प्रार्थना की—**'यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम्। भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि॥'** (भा० ८। २। ३३) अर्थात् जो कालसर्पसे भयभीत भागते हुए व्यक्तिकी रक्षा करता है, जिसके भयसे मृत्यु भी दौड़ता रहता है, उस शरणके देनेवाले, ईश्वरकी मैं शरण हूँ। यह सोचकर वह अपने पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रका जप करने लगा। यथा—**'जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्।'** (अ० ३। १) स्तुति सुनते ही सर्वदेवमय भगवान् हरि प्रकट हुए। उन्हें देखते ही बड़े कष्टसे अपनी सूँड़में एक कमलपुष्प ले उसे जलके ऊपर उठा भगवान्‌को **'नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते।'** (३। ३२) इस प्रकार ''हे नारायण! हे अखिल गुरो! हे भगवन्! आपको नमस्कार है'' कहकर प्रणाम किया। यह सुनते ही भगवान्, गरुड़को भी मन्दगामी समझ उसपरसे कूद पड़े और तुरन्त ही उसे ग्राहसहित सरोवरसे बाहर निकाल सबके देखते-देखते उन्होंने चक्रसे ग्राहका मुख फाड़ गजेन्द्रको छुड़ा दिया।

पूर्वजन्ममें यह ग्राह हूहू नामक गन्धर्वश्रेष्ठ था और गजेन्द्र द्रविड़ जातिका इन्द्रद्युम्न नामक पाण्ड्य देशका राजा था। वह मनस्वी राजा एक बार मलयपर्वतपर अपने आश्रममें मौनव्रत धारणकर श्रीहरिकी आराधना कर रहा था। उसी समय दैवयोगसे अगस्त्यजी शिष्योंसहित वहाँ पहुँचे। यह देखकर कि हमारा पूजा-सत्कार आदि कुछ न कर राजा एकान्तमें बैठा हुआ है, उन्होंने उसे शाप दिया कि—'हाथीके समान जडबुद्धि इस मूर्ख राजाने आज ब्राह्मणजातिका तिरस्कार किया है, अतः यह उसी घोर अज्ञानमयी योनिको प्राप्त हो। इसीसे वह राजा गजयोनिको प्राप्त हुआ। भगवान्‌की आराधनाके प्रभावसे उस योनिमें भी उन्हें आत्मस्वरूपकी स्मृति बनी रही।—अब भगवान्‌के स्पर्शसे वह अज्ञानबन्धनसे मुक्त हो भगवान्‌के सारूप्यको

प्राप्त कर भगवान्‌का पार्षद हो गया (भा० ८। ४। १—१३) हूहू गन्धर्वने एक बार देवल ऋषिका जलमें पैर पकड़ा; उसीसे उन्होंने उसको शाप दिया कि तू ग्राहयोनिको प्राप्त हो। भगवान्‌के हाथसे मरकर वह अपने पूर्व रूपको प्राप्त हुआ और स्तुति करके अपने लोकको गया। गजेन्द्रके संगसे उसका भी नाम चला। गजेन्द्रका *'गजेन्द्रमोक्ष'* स्तोत्र प्रसिद्ध ही है। विनयमें भी कहा है—*'तरयो गयंद जाके एक नायँ।'* (भक्तमाल टीकामें श्रीरूपकलाजीने पूर्वजन्मकी और भी एक कथा दी है।)

नोट—३ *'गणिका'* इति। पद्मपुराणमें गणिकाका प्रसंग श्रीरामनामके सम्बन्धमें आया है। सत्ययुगमें एक रघु नामक वैश्यकी जीवन्ती नामकी एक परम सुन्दरी कन्या थी। यह परशु नामक वैश्यकी नवयौवना स्त्री थी। युवावस्थामें ही यह विधवा होकर व्यभिचारमें प्रवृत्त हो गयी। ससुराल और मायका दोनोंसे यह निकाल दी गयी। तब वह किसी दूसरे नगरमें जाकर वेश्या हो गयी। यह वह गणिका है। इसके कोई सन्तान न थी। इसने एक व्याधासे एक बार एक तोतेका बच्चा मोल ले लिया। और उसका पुत्रकी तरह पालन करने लगी। वह उसको 'राम, राम' पढ़ाया करती थी। इस तरह नामोच्चारणसे दोनोंके पाप नष्ट हो गये। यथा—'**रामेति सततं नाम पाठ्यते सुन्दराक्षरम्॥ रामनाम परब्रह्म सर्वदेवाधिकं महत्। समस्तपातकध्वंसि स शुकस्तु सदा पठन्॥ नामोच्चारणमात्रेण तयोश्च शुकवेश्ययोः। विनष्टमभवत्पापं सर्वमेव सुदारुणम्॥**'(पद्म० पु० २७—२९) दोनों साथ-साथ इस प्रकार रामनाम लेते थे। फिर किसी समय वह वेश्या और वह शुक एक ही समय मृत्युको प्राप्त हुए। यमदूत उसको पाशसे बाँधकर ले चले, वैसे ही भगवान्‌के पार्षद पहुँच गये और उन्होंने यमदूतोंसे उसे छुड़ाया। छुड़ानेपर यमदूतोंने मारपीट की। दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। यमदूतोंका सेनापति चण्ड जब युद्धमें गिरा तब सब यमदूत भगे। भगवत्-पार्षदोंने तब जयघोष किया। उधर यमदूतोंने जाकर धर्मराजसे शिकायत की कि महापातकी भी रामनामके केवल रटनेसे भगवान्‌के लोकको चले गये तब आपका प्रभुत्व कहाँ रह गया? इसपर धर्मराजने उनसे कहा—'**दूताः स्मरन्तौ तौ रामरामनामाक्षरद्वयम्। तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः॥ संसारे नास्ति तत्पापं यद्रामस्मरणैरपि। न याति संक्षयं सद्योदृढं शृणुत किंकराः॥**'(पद्म पु० ७३-७४)—हे दूतो। वे 'राम, राम' ये दो अक्षर रटते थे, इसलिये वे मुझसे दण्डनीय नहीं हैं। उनके प्रभु श्रीरामजी हैं। संसारमें ऐसा कोई पाप नहीं है जो रामनामसे न विनष्ट हो, यह तुमलोग निश्चय जानो।—वे दोनों श्रीरामनामके प्रभावसे मुक्त हो गये। यथा—'**रामनामप्रभावेण तौ गतौ धाम्नि सत्वरम्॥**' (पद्मपु० क्रियायोगसारखण्ड अ० १५)

एक 'पिंगला' नामकी वेश्याका प्रसंग भा० ११। ८ में इस प्रकार है कि एक दिन वह किसी प्रेमीको अपने स्थानमें लानेकी इच्छासे खूब बन-ठनकर अपने घरके द्वारपर खड़ी रही। जो कोई पुरुष उस मार्गसे निकलता उसे ही समझती कि बड़ा धन देकर रमण करनेवाला कोई नागरिक आ रहा है, परन्तु जब वह आगे निकल जाता तो सोचती कि अच्छा अब कोई दूसरा बहुत धन देनेवाला आता होगा। इस प्रकार दुराशावश खड़े-खड़े उसे जागते-जागते अर्धरात्रि बीत गयी। धनकी दुराशासे उसका मुख सूख गया, चित्त व्याकुल हो गया और चिन्ताके कारण होनेवाला परम सुखकारक वैराग्य उसको उत्पन्न हो गया। वह सोचने लगी कि—ओह! इस विदेहनगरीमें मैं ही एक ऐसी मूर्खा निकली कि अपने समीप ही रमण करनेवाले और नित्य रति और धनके देनेवाले प्रियतमको छोड़कर कामना-पूर्तिमें असमर्थ तथा दुःख, शोक, भय, मोह आदि देनेवाले, अस्थिमय टेढ़े-तिरछे बाँसों और थूनियोंसे बने हुए, त्वचा, रोम और नखोंसे आवृत, नाशवान् और मल-मूत्रसे भरे हुए, नवद्वारवाले घररूप देहोंको कान्त समझकर सेवन करने लगी। अब मैं सबके सुहृद्, प्रियतम, स्वामी, आत्मा, भवकूपमें पड़े हुए कालसर्पसे ग्रस्त जीवोंके रक्षकके ही हाथ बिककर लक्ष्मीजीके समान उन्हींके साथ रमण करूँगी। यह सोचकर वह शान्तिपूर्वक जाकर सो रही और भजनकर संसार-सागरसे पार हो गयी। (परन्तु इस कथामें नाम-जप या स्मरणकी बात भागवतमें नहीं और न अवधूतके इस कथाप्रसंगमें नामका प्रसंग ही है। सम्भवतः इसीसे आगेका चरित्र न दिया गया हो)

नोट—४ *'भऐ मुकुत हरि नाम प्रभाऊ'* इति। अभीतक इसके पूर्व यह दिखाया था कि भक्तोंने नाम जपकर उसका प्रभाव जाना। (शिवजी कालकूट पीकर भी अविनाशी हो गये, वाल्मीकिजी और गणेशजीकी अनेकों ब्रह्महत्याएँ मिटीं और एक ब्रह्माके समान भारी महर्षि हुए, दूसरे प्रथम पूज्य हुए। गणेशजीने जाना कि त्रैलोक्य रामहीमें है। पार्वतीजीने सहस्रनाम-समान जाना। शुक-सनकादिने ब्रह्मसुख पा ब्रह्मसमान जाना। प्रह्लादने सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक आदि जाना। ध्रुवजीने इहलोक-परलोक दोनों देनेवाला जाना। नारदजीने जाना कि हरि-हर सब इसीके वश हैं, नामजापक सबका प्रिय हो जाता है इत्यादि।) अब अजामिल आदिके दृष्टान्त देकर दिखाते हैं कि ये महापापी प्राणी नामके प्रभावसे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो गये यथा—*'जानि नाम अजानि लीन्हें नरक यमपुर मने।'* (विनय० १६०) जैसे अग्निको जानो या न जानो वह छूनेसे अवश्य जलावेगी वैसे ही होठोंके स्पर्शमात्रसे नाम सर्व शुभाशुभकर्मोंको नष्टकर मुक्ति देगा ही। अजामिल पतितोंकी सीमा था, इसीसे उसका नाम प्रथम दिया। ग्रन्थके अन्तमें भी कहा है कि ये सब नामसे तरे। यथा—*'गनिका अजामिल-व्याध-गीध-गजादि खल तारे घना। आभीर जमन किरात खस श्वपचादि अति अघरूप जे॥ कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते॥'* (७। १३०)

कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥ ८॥

अर्थ—(मैं श्रीरामजीके) नामकी बड़ाई कहाँतक करूँ? श्रीरामजी (भी) (अपने) नामके गुण नहीं कह सकते॥ ८॥

नोट—१ इस प्रकरणमें नामकी विशेषता दिखा रहे हैं। *'रामु न सकहिं नाम गुन गाई'* कहकर नामकी अत्यन्त अपार महिमा दिखायी है। नामके गुण अनन्त हैं तो उनका अन्त कैसे कर सकें? कथनका तात्पर्य यह है कि ईश्वरकोटिवाले तो कोई कह ही नहीं सकते, रहे श्रीरामजी जो परात्पर ब्रह्म हैं सो वे भी नहीं कह सकते तो भला अल्प बुद्धिवाला मैं क्योंकर कह सकता हूँ? अतएव कहते हैं कि अब मैं कहाँतक कहता जाऊँ, इसीसे हद है कि स्वयं श्रीरामजी भी नहीं कह सकते।

नोट—२ *'रामु न सकहिं नाम गुन गाई'* इति। क्यों नहीं कह सकते? इस प्रश्नको उठाकर महानुभावोंने अपने विचारानुसार इसके उत्तर यों लिखे हैं—(१) नामके गुण अनन्त हैं। यथा—*'राम नाम कर अमित प्रभावा।'* (१। ४६), *'महिमा नाम रूप गुनगाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥'* (७। ९१) जिसका अन्त ही नहीं, वह कैसे कहा जा सकता है? यदि यह कहें कि श्रीरामजी कह सकते हैं तो फिर उनके नामके गुणोंके अनन्त होनेमें बट्टा लगता है। अतएव यह बात स्वयं सिद्ध है कि वे भी नामके समस्त गुणोंका कथन नहीं कर सकते। गुणकथन महाप्रलयतक भी नहीं समाप्त हो सकता। प्रमाण, यथा—**'राम एवाभिजानाति रामनाम्नः फलं हृदि। प्रवक्तुं नैव शक्नोति ब्रह्मादीनां तु का कथा॥'** (वसिष्ठतन्त्र); **'राम एवाभिजानाति कृत्स्नं नामार्थमद्भुतम्। ईषद्वदामि नामार्थं देवि तस्यानुकम्पया॥'** (महारामायण ५२। ४); **'नाम- संकीर्त्तनं विद्धि अतो नान्यद्वदाम्यहम्। सर्वस्वं रामचन्द्रोऽपि तन्नामानन्तवैभवम्॥'** (तापनीसंहिता) (२) अपने मुख अपने नामकी प्रभुता कहना अयोग्य होगा। श्रीरामजी तो *'निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं'* तो फिर कहें कैसे? (३) श्रीरामजी धर्मनीतिके प्रतिपालक हैं। वेद-पुराण कहते हैं कि नामकी महिमा अनन्त है, अतएव आप वेद-मर्यादा न तोड़ेंगे। (४) मानसकारने नामका महत्त्व श्रीरामके लिये अवर्णनीय बताकर अपने प्रयत्नका उपसंहार किया है। बात मनमें आ जानेकी है। भगवन्नाम-जैसा सुलभ, सर्वाधिकारीके लिये उपयुक्त, विधि-निषेध-रहित, अनन्त प्रभाव-सम्पन्न साधनका माहात्म्य कैसे वर्णन किया जा सकता है? सम्पूर्ण विश्व नामरूपात्मक है और उसमें भी नाम व्यापक है। विश्वसे परे परमपद प्राप्त करनेका मार्ग भी नाम है और परमपदस्वरूप भी नाम ही है। नाम साधन, साध्य, उपकरण, आचार्य, चेष्टा और प्राप्य सब कुछ है। नामके महत्त्वका कहीं पार है ही नहीं। (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

(५) मयंककार कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी 'अपने नामके रस अर्थात् प्रेमके वश स्वयं मत्त रहते हैं, यद्यपि चाहते हैं कि महत्त्वको कहें किन्तु मत्ततावश नहीं कहा जा सकता।' (६) 'संसारकी रीति है कि कोई यदि भ्रमसे किसी प्रतिष्ठितसे पूछे कि आपका नाम अमुक है? इसपर सच्चा नाम होनेपर भी वह पुरुष संकोचसे उत्तर देता है कि नहीं वह मेरा नाम नहीं है, उस नामकी बड़ी महिमा है, मैं अधम उस नामकी प्रशंसा नहीं कर सकता।' (सु० द्विवेदीजी) (७) यदि श्रीरामजी कहना भी चाहें तो कहें किससे? ऐसा कौन है जो सुनकर, समझे? वक्ता और श्रोता दोनों समशील और समदर्शी होने चाहिये तभी वक्ताका कहा हुआ श्रोता समझ सकता है। नामके गुणोंमें किसी श्रोताकी गति नहीं है, इसीसे प्रभु भी नहीं कह सकते। [वै०] (८) 'राम' शब्द सगुणरूपका वाचक है और उसका जो अर्थ है वह निर्गुणरूपका वाचक है; इससे यह सिद्ध हुआ कि नाममें तो शब्द-अर्थ दोनों भाग रहते हैं। इसलिये नाम दोनोंके जाननेयोग्य है। रूप तो आधे भागका मालिक है, वह दोनों भागका स्वामी जो नाम है उसको कैसे जान सकता है। (रा० प्र०) (९) गोसाईंजी रघुनाथजीकी व्यंगस्तुति करके उनको प्रसन्न कर रहे हैं। जैसे कोई किसी राजा वा धनिकसे कहे कि आप तो बड़े कंजूस हैं पर आपके नामका प्रताप ऐसा है कि वनमें भी आपका नाम लें तो सिंह नहीं बोल सकता। वा, आपके नामसे मैं करोड़ों रुपये ला सकता हूँ। यह सुन वह 'कंजूस' कथनके दोषको मनमें किंचित् नहीं लाता वरंच प्रसन्न हो जाता है (करु० मिश्रजी) श्रीहनुमान्‌जीने भी ऐसा ही कहा था। (१०) मा० त० वि० कार एक भाव यह भी लिखते हैं कि 'मैं राम नहीं हूँ जो नामके गुण गा सकूँ।' इत्यादि।

नोट—३ यहाँ कुछ लोग शंका करते हैं कि वन्दना तो 'राम' नामकी की पर दृष्टान्त अन्य नामोंके भी दिये गये। इनसे श्रीरामनामकी बड़ाई कैसे हुई? समाधान—सब नाम आपहीके हैं। 'राम' नाम सबका आत्मा और प्रकाशक है [१९ (१-२) में देखिये]; सब नाम पतितपावन हैं और सब 'राम' नामके अंशांश-शक्तिसे प्रकट होते हैं और महाप्रलयमें श्रीरामनाममें ही लीन हो जाते हैं। प्रमाण—'**विष्णुनारायणादीनि नामानि चामितान्यपि। तानि सर्वाणि देवर्षे जानाति रामनामतः॥**' (पद्मपुराण)

दोहा—नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भांग ते तुलसी तुलसीदास॥ २६॥

अर्थ—कलियुगमें श्रीरामचन्द्रजीका नाम कल्पवृक्ष और कल्याणका निवास (वास करनेका स्थान) है। जिसके स्मरण करनेसे तुलसीदास भाँगसे तुलसी हो गये॥२६॥

नोट—१ '***कलपतरु कलि कल्यान निवास***' इति। (क) कल्पतरुका यह धर्म है कि जो कोई जिस विचारसे उसके नीचे जाय उसका मनोरथ वह पूर्ण कर देता है '**कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते।**' 'नाम' से सभीने अपने-अपने मनोरथ पाये और आजतक पाते चले जाते हैं, इसलिये वस्तुतः कल्पवृक्षका धर्म 'नाम' में है। (मा० प०) (ख) कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म, काम देता और सूर्यकी तपन हरता है। नाम अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष (भी) देते हैं और त्रिताप हरण करते हैं। यथा—'***रामनाम कामतरु देत फल चारि रे***' (वि० ६७), '***बैठे नाम कामतरु तर डर कौन घोर घन घाम को***' (वि० १५५), '***सुमिरें त्रिबिध घाम हरत***' (वि० २५५), '***जासु नाम त्रयताप नसावन।***' (५। ३९)

नोट—२ '***कलि कल्यान निवास***' इति। (क) भाव यह कि कलियुगमें तो कल्याण अन्यत्र किसी स्थानपर है ही नहीं, केवल 'नाम' रूपी कल्पवृक्षके नीचे ही उसका घर रह गया है। इसमें यह भी ध्वनि है कि और युगोंमें अन्य साधनरूपी वृक्षोंके नीचे भी कल्याणका वास था। यथा—'***पीपर तरु तर ध्यान जो धरई। जाप जग्य पाकर तर करई॥ आँब छाँह कर मानसपूजा। तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा॥ बर तर कह हरिकथा प्रसंगा।***' (उ० ५७) अर्थात् सत्ययुगमें पीपर, त्रेतामें पाकर और द्वापरमें आमके नीचे वास था क्योंकि सत्ययुगमें योग-ध्यान, त्रेतामें जप-यज्ञ और द्वापरमें पूजन मुख्य साधन थे, जिनसे कल्याण

होता था। कलियुगमें कल्याण सब स्थानोंसे भागकर 'नाम' कल्पतरुके नीचे आ बसा है, अन्य किसी उपायसे कल्याण होना असम्भव है, यथा—*'एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रमफलनि फरो सो।..... सुख सपनेहु न योग सिधि साधन रोग बियोग धरो सो॥ काम कोह मद लोभ मोह मिलि ज्ञान बिराग हरो सो।'* (वि० १७३) (ख) श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि नाम कल्याणनिवास कल्पवृक्ष है। अन्य युगोंमें तो अनेक प्रकारके यज्ञ, योग, तप अनुष्ठान थे। पुत्र होनेके लिये पुत्रेष्टि यज्ञ और लक्ष्मीके लिये अनुष्ठान। इस युगमें तो जो इच्छा हो वह नामके द्वारा ही प्राप्त होती है। कुछ भी इच्छा हो नाम उसे पूरा कर देगा।—यदि ऐसी बात है तब तो नामके द्वारा धन, भवनादि पानेका प्रयत्न करना चाहिये? *'कल्यान निवास'* कह रहा है कि ऐसा करना बुद्धिमानी न होगी। नाम स्वर्गके कल्पवृक्षकी भाँति केवल अर्थ, धर्म, काम ही देनेवाला नहीं है। वह तो कल्याण-निवास है। जीवका परम कल्याण करनेवाला है। अतएव उससे तुच्छ भौतिक पदार्थ लेनेकी मूर्खता न करके अपना परम कल्याण ही प्राप्त करना चाहिये। यहाँ नामको कल्पवृक्षसे विशेष मोक्षदाता बताया गया और उससे कल्याण ही प्राप्त करनेका संकेत भी किया गया। यहाँ महिमा-वर्णनके पश्चात् उपयोग बताकर गोस्वामीजी उत्तरार्धमें अपने अनुभवकी साक्षी देते हैं। **'पर *उपदेस कुसल बहुतेरे'*** वाली बात नहीं है। वे कहते हैं कि मैंने स्वयं नाम-जप किया है और करता हूँ। ***'सुमिरत'*** सूचित करता है कि अभी स्मरण समाप्त नहीं हुआ। उस स्मरणसे प्रत्यक्ष लाभ हुआ है। (ग) बैजनाथजी 'नामरूपी कल्पवृक्षका रूपक' यह लिखते हैं—अयोध्याधाम थाल्हा है, रामरूप मूल है, नाम वृक्ष है, ऐश्वर्य-माधुर्य-मिश्रित लीला स्कन्ध है, नाना दिव्य गुण शाखाएँ हैं, शृंगारादि आठों रस पत्र हैं, विवेक-वैराग्यादि फूल हैं, ज्ञान फल है, नवधा-प्रेमा-परादि भक्तियाँ रस हैं, श्रीरामानुरागी सन्त प्रेमानुरागरसके भोक्ता हैं। (घ) अभिप्राय-दीपककारके मतानुसार यहाँ यह रूपक है—कलि सूर्य है, कलिके पाप सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें हैं, कल्याण बटोही (यात्री, राह चलनेवाला मुसाफिर) है, जप-तप-योग-ज्ञानादि अनेक साधन वृक्ष हैं जो सूर्यके किरणोंसे झुलस गये उनके नीचे छाया न रह गयी, नाम कल्पतरु है जो अपने प्रभावसे हरा-भरा बना रह गया। अतः कल्याण-बटोहीने उसकी छायाकी शरण ली।

'जो सुमिरत भयो भांग ते तुलसी.....' इति।

(१) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि इस दोहेमें यह अभिप्राय गर्भित है कि—(क) जैसे तुलसी चार पदार्थोंकी देनेवाली है, वैसे ही भवरोगहारी और सर्वकामप्रद मैं हो गया। पुनः, (ख) श्रीरामजीको प्रिय हुआ और पावन तथा पूज्य हो गया, यथा—*'रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी।'* (१। ३१)

(२) श्रीसुधाकर द्विवेदीजी—'तुलसीदासजी माता-पितासे परित्यक्त एक अधम भाँग ऐसे थे, पर नामके माहात्म्यसे 'तुलसी' वृक्षके ऐसे पवित्र हो गये जिनकी वाणीरूपी पत्रिकासे हजारों पतित पवित्र होते हैं। विनय-पत्रिकाके २७५ पदसे स्पष्ट है कि मूलमें जन्म लेनेसे माताने इन्हें त्याग दिया था।' यथा—*'तनुज तऊ कुटिल कीट ज्यों तज्यों मातु-पिता हूँ। काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग, मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ॥..... 'नामकी महिमा सीलु नाथ को मेरो भलो, बिलोकि अब ते सकुचाहुँ सिहाहूँ।'* (२७५) *'जननी जनक तजेउ जनमि करम बिनु।'* (वि० २२७)

(३) सू० प्र० मिश्र—'आधे दोहेमें अपने भाग्यकी बड़ाई नामद्वारा निरूपण करते हैं कि जिसको स्मरण करके मैं भाँगसे तुलसी हुआ हूँ। इसका आशय यह है कि भाँग और तुलसीकी मंजरी दोनों एक-सी होती हैं, उसपर भी भाँग मादक तथा अपावन है। और यह पावन एवं रोगनाशक है। उसी तरह मेरा रूप तो साधुओंके समान था पर मेरा कर्म मलिन था वह भी नामके प्रभावसे शुद्ध हो गया।' (यह भाव पं० का है)

(४) बैजनाथजी—भंग जहाँ जमती है वह भूमि अपावन मानी जाती है और तुलसी जहाँ जमती है वह भूमि और उसकी मिट्टी भी पावन हो जाती है। वहाँकी मिट्टी भी तुलसीके अभावमें भगवान्‌की सेवामें काम आती है। नामके प्रभावसे तुलसीके समान लोकपूज्य हो गया।

नोट—३ भाँग मद्य अर्थात् मदकारक है और हर प्रकारके मादक द्रव्यमें विषाक्त परमाणु रहते हैं। इसीलिये उनकी मात्रा अत्यधिक हो जानेसे वे मृत्युके कारण हो जाते हैं। उपर्युक्त मादक पदार्थ विशेष भंगके विरुद्ध गुणधर्मवाली ओषधि 'तुलसी' है। उसके स्वरसके सेवनसे विषका नाश होता है और मद दूर होता है। अस्तु। गोस्वामीजीकी *'भये भाँग ते तुलसी'* इस उक्तिका भाव यह है कि वे विषयीसे रामभक्त हो गये।

नोट—४ साधारण मनुष्यका विषयलीन जीवन भंगके समान ही होता है। वह स्वयं तो प्रमत्त होता ही है, दूसरोंको भी प्रमत्त बनाता है। पुत्र, स्त्री, मित्र, पड़ोसी सबको प्रेरित करता है कि वे पदार्थोंकी प्राप्तिमें लगें। जो नहीं लगते उन्हें अयोग्य समझता है। विवेकहीन होकर विषयोंमें ही सुख मानता है और अपने संसर्गमें आनेवाले प्रत्येकको यही प्रेरणा देता है। *'तुलसी भयो'* का भाव कि जैसे तुलसीके बिना भगवान्‌की पूजा पूर्ण नहीं होती वैसे ही उनके 'मानस'के बिना श्रीरामजीकी पूजा पूर्ण नहीं होती। सम्पूर्ण लोकमें वे तुलसीके समान आदरणीय हो गये।

'भाँग कहीं तुलसी बन सकती है, यह तो कविकी काव्योक्ति है।' इस प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिये। गोस्वामीजी पहले कह आये हैं कि नाम-माहात्म्यमें मैं धृष्टता या काव्योक्ति नहीं कर रहा हूँ। यह मेरी 'प्रीति-प्रतीति' है। नाममें प्रेम और विश्वास होनेपर तो नामने महाविषको अमृत बना दिया था, फिर भाँग तो केवल मादकमात्र है। इसीलिये *'जो सुमिरत'* कहा गया और पहले नाममें प्रीति-प्रतीतिकी बात कह ही आये हैं। भगवन्नामके जपका प्रभाव यह हुआ कि स्वयं मत्त एवं दूसरोंको मत्त करनेवाला स्वभाव स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन गया। (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

नोट—५ यहाँ गोस्वामीजीने अपनेको 'तुलसीवृक्ष' कहा है। सम्भवतः श्रीमधुसूदनसरस्वतीजीने इसीको लेकर प्रसन्न होकर पुस्तकपर यह रूपक लिख दिया—'**आनन्दकानने ह्यस्मिंजंगमस्तुलसीतरुः। कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥**' जिसका अनुवाद काशीनरेश ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहजीने इस तरह किया है—दोहा—*'तुलसी जंगम तरु लसे, आनँदकानन खेत। कविता जाकी मंजरी, रामभ्रमर रस लेत॥'*

नोट—६ कल्पवृक्षका गुण श्रीरामनाममें स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना और रूपक' का सन्देह संकर है। नामके प्रभावसे तुलसीदास भाँगसे तुलसी हो गये—यहाँ 'प्रथम उल्लास' अलंकार है। (वीरकवि)

नोट—७ कुछ टीकाकारोंने इस दोहेका भाव न समझकर *'भाँग'* पाठको बदलकर *'भाग'* रख दिया है, जो अशुद्ध है। यही भाव अन्यत्र भी आया है, यथा—*'केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास। राम जपत भए तुलसी तुलसीदास'* (बरवै० ५९), *'तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू॥' 'रामनामको प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप तुलसी सो जग मानियत महामुनी सो।'* (क० उ० १९,७२)

नोट—८ इस दोहेमें रामनामके ग्यारह फल दिखाये। नाम ब्रह्म, (१) अविनाशी करते हैं, (२) अमंगल हरते हैं, (३) मंगल-राशि बनाते हैं, (४) ब्रह्मसुख भोगी बनाते हैं, (५) हरिहरप्रिय करते हैं, (६) भक्तोंमें शिरोमणि बनाते हैं, (७) अचल अनूपम स्थान देते हैं, (८) श्रीरामजीको वशमें कर देते हैं, (९) मुक्ति तथा (१०) अर्थ, धर्म, काम देते और (११) पवित्र कर देते हैं।

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥ १॥
बेद-पुरान-संत-मत एहू। सकल-सुकृत फल राम[1] सनेहू॥ २॥
ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत[2] प्रभु पूजें॥ ३॥

१-नामसनेह-(मानस-पत्रिका)। २-परितोषत-१६६१, १७०४, को० रा०। परितोषन-१७२१,१७६२, छ०।

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥ ४॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला*॥ ५॥

शब्दार्थ—**तिहुँ**=तीनोंमें। **एहू**=यह। **मख**=यज्ञ। **मख बिधि**=क्रिया, यज्ञकी विधि। **परितोषत**=सन्तुष्ट होते हैं, प्रसन्न होते हैं। **पूजें**=पूजनसे। **मल**=पाप। **पयोनिधि**=समुद्र।

अर्थ—चारों युगों, तीनों कालों और तीनों लोकोंमें प्राणी नाम जपकर शोक रहित हुए॥ १॥ वेदों, पुराणों और सन्तोंका यही मत है कि समस्त पुण्योंका फल श्रीराम (नाम) में स्नेह होना है॥ २॥ पहले युग (अर्थात् सत्ययुग) में ध्यानसे, दूसरे (त्रेता) युगमें भगवत्-सम्बन्धी यज्ञ-क्रियासे और द्वापरमें पूजनसे प्रभु प्रसन्न होते थे॥ ३॥ परन्तु कलियुग केवल पापकी जड़ और मलिन है। पाप-समुद्रमें प्राणियोंका मन मछली हो रहा है॥ ४॥ ऐसे कठिन कलिकालमें नाम कल्पवृक्ष है। स्मरण करते ही सब जगजालका नाश करनेवाला है॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) अब यहाँसे नाम माहात्म्य छठे प्रकारसे कहते हैं। अर्थात् 'काल' के द्वारा नामकी बड़ाई दिखाते हैं। (ख) ***'चहुँ जुग'*** कहकर तब ***'तीनि काल'*** भी कहा। भाव यह कि निरन्तर जीव नाम जपकर विशोक होते आये हैं। विशेष दोहा २२ (८) ***'चहुँ जुग चहुँ श्रुति....'*** में देखिये।

नोट—१ (क) ***'तीनि काल'*** इति। काल वह सम्बन्धसत्ता है जिसके द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान आदिकी प्रतीति होती है और एक घटना दूसरीसे आगे-पीछे आदि समझी जाती है। वैशेषिकमें काल एक नित्य द्रव्य माना गया है। देश और काल वास्तवमें मानसिक अवस्थाएँ हैं। कालके तीन भेद भूत, वर्तमान और भविष्य माने जाते हैं। भूत=जो बीत गया। वर्तमान=जो उपस्थित है, चल रहा है, बीत रहा है। भविष्य=जो आगे आनेवाला है। (ख) ***'तिहुँ लोका'*** इति। निरुक्तमें तीन लोकोंका उल्लेख मिलता है—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम **भूः, भुवः, स्वः** है, जो महाव्याहृति कहलाते हैं। इनके साथ **महः, जनः, तपः** और **सत्यम्** मिलकर सप्तव्याहृति कहलाते हैं। इनके नामसे सात लोकों—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक—की कल्पना हुई। पीछे इनके साथ सात पाताल—अतल, वितल, सुतल, तलातल, (अग्निपु० और विष्णुपु०में 'गभस्तिमान्') महातल, रसातल, (विष्णुपु०में 'नितल') और पाताल मिलकर चौदह लोक या भुवन माने गये हैं। प्रायः 'लोक' के साथ 'त्रै' और 'भुवन' के साथ 'चौदह' का प्रयोग देखा जाता है। मर्त्य (पृथिवी), स्वर्ग और पाताल भी इन्हीं तीनके नाम हैं। (ग) ***'तिहुँ लोका'*** का भाव कि केवल पृथ्वीपर ही नहीं किन्तु स्वर्ग और पातालमें भी। असुरोंके प्रबल होनेपर स्वर्गमें भी शोक होता है। तीनों लोकोंमें जीव विशोक हुए। सत्ययुगमें ध्रुव पृथ्वीपर, स्वर्गमें हिरण्यकशिपुसे पीड़ित देवता, पातालमें हिरण्याक्षसे पीड़ित पृथ्वी, इस प्रकार प्रत्येक युगमें, प्रत्येक लोकमें जीवोंके विशोक होनेके उदाहरण शास्त्रमें मिलते हैं। (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

'भए नाम जपि जीव बिसोका' इति। शंका—भविष्यके लिये ***'भए'*** क्रिया कैसे संगत है?

समाधान—(१) यहाँ 'भविष्य अलंकार' है जिसका लक्षण ही यह है कि भविष्यको वर्तमानमें कह दिया जाय। (२) यह क्रिया अन्तिम शब्द ***'तिहुँ लोका'*** के विचारसे दी गयी। (३) तीन कालके लिये जब एक क्रियाका प्रयोग हुआ तो भूत और वर्तमान दोके अनुसार क्रिया देनी उचित ही थी। (४) चारों युग पूर्व अमित बार हो चुके हैं, उनमें नाम जपकर लोग विशोक हुए हैं, अतएव यह भी निश्चय जानिये कि आगे भी होंगे—**इति भावः।** जो हो गये उनका हाल लिखा गया और (५) व्याकरणशास्त्रका नियम है कि वर्तमानके समीपमें भूतकालिक अथवा भविष्यकालिक क्रियाओंका प्रयोग किया जा सकता है। यथा—**'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा।'** (अष्टाध्यायी ३। ३। १३७) (६) जब किसी कार्यका होना पूर्ण निश्चित होता है तो उसे हो गया कहते हैं। भगवान्ने गीतामें कहा—मेरे द्वारा ये सब पहले ही मारे

* जंजाला—१७२१, १७६२, छ०। जगजाला—१६६१, १७०४।

जा चुके हैं; अर्जुन! तुम केवल निमित्त बनो। यहाँ भी कार्यके होनेकी पूर्ण निश्चयात्मकता ही है। इसी प्रकार यहाँ गोस्वामीजी कहते हैं कि आगे भी जो शोकार्त नाम-जप करेंगे, वे शोकहीन निश्चय ही हो जायँगे, अत: वे भी शोकहीन हो गये, ऐसा अभी कहनेमें कोई हानि नहीं। ऊपरके दोहेमें नामको कलिमें कल्याण-निवास कल्पतरु कहा था, अत: नाम केवल कलियुगका साधन नहीं है, इसे तुरन्त स्पष्ट करनेके लिये यहाँ चारों युग, तीनों काल तथा तीनों लोकोंकी बात कही गयी। (श्रीचक्रजी)

'बिसोका' हुए अर्थात् जन्म, जरा, मरण त्रितापादिके शोकसे रहित हो गये।

नोट—२ *'बेद पुरान संत मत एहू।...राम सनेहू'* इति। 'वेद, पुराण, सन्त' तीनकी साक्षी देनेका भाव कि 'कर्म प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय नहीं है। अनुमान तथा उपमान भी प्रत्यक्षके ही कर्म अनुगामी होते हैं तथा कर्मफल शास्त्र-प्रमाणसे ही जाने जाते हैं। शास्त्रोंमें परम प्रमाण श्रुति हैं', अत: उनको प्रथम कहा। 'श्रुति प्रमाण होनेपर भी परोक्ष है। '**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्**' इतिहास-पुराणोंके द्वारा वेदार्थ जानना चाहिये। अकेले वेदार्थ जाननेमें भ्रमकी सम्भावना है'! अत: 'पुराण' को कहा। 'पुराण अधिकारी-भेदसे निर्मित हैं, उनमें अनेक प्रकारके अधिकारियोंके लिये साधन हैं। नाम-महिमा पता नहीं किस कोटिके अधिकारीके लिये होगी। भ्रान्तिहीन सत्यका पता तो सर्वज्ञ सन्तोंको ही होता है'। अत: अन्तमें इनको कहा। (ख) वेदका मत है कि सम्पूर्ण पुण्योंका फल राम-नाममें प्रेम होना ही है। क्योंकि '**यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:**' वह परात्पर तत्त्व साधनसे नहीं मिलता। जिसे वह स्वयं वरण करे उसे ही मिलता है। वह किसे वरण करेगा? सीधा उत्तर है कि जिससे उसका प्रेम होगा। प्रेम उसका किससे होगा? जिसमें उसके प्रति प्रेम होगा। समस्त पुण्य उसीको पानेके लिये किये जाते हैं। पुण्यका उद्देश्य है सुखकी प्राप्ति और दु:खका विनाश। अत: समस्त पुण्योंका फल उससे प्रेम होना ही है। शाश्वत सुखकी प्राप्ति एवं दु:खका आत्यन्तिक विनाश नामसे होता है, अतएव नाममें अनुराग ही पुण्यमात्रका फल है। (श्रीचक्रजी) (ग) तीनोंका मत यही है, यथा—*'सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥ सब कर मत खगनायक एहा। करिअ रामपद पंकज नेहा॥ श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥'* (७। १२२)

बैजनाथजी लिखते हैं कि—गुरु-साधु-सेवासे भजनकी रीति प्राप्त कर उसे करते-करते हृदयमें प्रकाश होनेपर जो अनुभवादि होते हैं उसीको 'सन्तमत' कहते हैं। *'सकल सुकृत फल राम सनेहू'*—अर्थात् जप-तप-व्रत-तीर्थ-दान, गुरु-साधु-सेवा, पूजा-पाठ, सन्ध्या-तर्पणादि यावत् कर्मकाण्ड है; विवेक-वैराग्य, शम, दम, उपराम, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षुतादि जो ज्ञानकाण्ड है तथा नवधा-प्रेमा-परा भक्ति, षट्-शरणागति इत्यादि जो उपासनाकाण्ड है—इन सब सुकृतोंका फल केवल एक *'रामसनेह'* है। यथा—*'जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥ ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥ आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥ तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर फल यह सुंदर॥...सोइ सर्बज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिज्ञान अखंडित॥ दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई॥'* (७। ४९)

कोई-कोई पुराणमतका अर्थ 'लोकमत' कहते हैं। यथा—*'प्रगट लोकमत लोकमें, दुतिय बेदमत जान। तृतिय संतमत करत जेहि, हरिजन अधिक प्रमान॥'* इस अर्थका आधार है—वसिष्ठजीका वचन *'करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।'* (२। २५८) वेदादि सबका यही मत है, यथा—'**सर्वेषां वेदसाराणां रहस्यं ते प्रकाशितम्। एको देवो रामचन्द्रो व्रतमन्यन्न तत्समम्॥**' (पद्मपु०, वै०) 'सकल सुकृतोंका फल' कथनका एक भाव यह भी होता है कि जब समस्त सुकृत एकत्र होते हैं तब कहीं श्रीरामजी और उनके नाममें प्रेम होता है। श्रीरामप्रेम होना अन्तिम पदार्थ है जिसके पानेपर कोई चाह ही नहीं रह जाती। अतएव सब धर्मोंको त्यागकर इसीमें लगना उचित है, इससे सब सुकृतोंका फल प्राप्त हो जायगा।

पं० रामकुमारजी—***'सनेह'*** का भाव यह है कि नाम जपनेमें रोमांच हो, अश्रुपात हों, कभी जपमें एक तो विक्षेप पड़े ही नहीं और यदि कदाचित् पड़ जाय तो पश्चात्ताप हो, विह्वलता हो इत्यादि। यथा—***'जपहि नाम रघुनाथको, चरचा दूसरी न चालु।'*** (विनय० १९३), ***'मति रामनाम ही सों, रति रामनाम ही सों, गति रामनाम ही की.....।'*** (वि० १८४) ***'तुम्हरेइ नाम को भरोसो भव तरिबे को बैठे उठे जागत बागत सोये सपने।'*** (क० ७।७८) ***'पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥'*** (२।३२६) भरतजीकी श्रीरामप्रेममें यह दशा थी तभी तो भरद्वाजजीने कहा है कि—***'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥'*** (२।२०८) और श्रीअवधके सभी लोगोंने भी कहा है—***'रामप्रेम मूरति तनु आही।'*** (२।१८४) रामस्नेह क्या है भरतजीकी दशा, रहनी-सहनी, त्याग-वैराग्यादि ही उसका उदाहरण है।

नोट—३ मा० मा० का मत है कि—**'एहू'**=यह भी। 'एहू' से ज्ञात होता है कि यह मुख्य बात नहीं है। वेदमें दो मत हैं—परमत और लघुमत। ऊपर परमत कह आये—***'ब्रह्म राम ते नाम बड़', 'सकल कामनाहीन जे.....'*** और ***'राम न सकहिं नाम गुन गाई।'*** इत्यादि। भगवत्प्राप्ति होनेपर भी नाममें रत रहनेसे प्रभु वशमें हो जाते हैं और लघुमत यह है कि—'नामद्वारा प्रेम उत्पन्न होना।' इसी सिद्धान्तसे नवधा भक्तिमें 'विष्णु-स्मरण को तीसरी सीढ़ीमें रखा है।' पर मेरी तुच्छ बुद्धिमें यह आता है कि यह नामका प्रसंग है और यहाँ कहते भी हैं—***'भए नाम जपि जीव बिसोका';*** अतः यहाँ ***'राम सनेह'*** से श्रीरामनाममें स्नेह ही अभिप्रेत है। नाम-नामीमें अभेद है भी। ***'एहू'*** शब्द कई ठौर, 'यह, यही,' अर्थमें आया है। यथा—***'तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू।'*** (२।२०८)

वीरकवि—पहले साधारण बात कहकर फिर विशेष सिद्धान्तसे उसका समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार है। ***'सकल सुकृत.....'*** में 'तृतीयतुल्ययोगिता' अलंकार है।

नोट—४ ***'ध्यान प्रथम जुग.....'*** इति। (क) ऐसा ही उत्तरकाण्ड दोहा १०३ में कहा है और श्रीमद्भागवतमें भी; यथा—***'कृतजुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥ त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरहीं॥ द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥ कलिजुग जोग न जज्ञ न ज्ञाना। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥'*** (७। १०३) **'कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे हरिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।'** (भा० १२। ३। ५२)

बैजनाथजी लिखते हैं कि अब ***'राम सनेह'*** होनेका उपाय बताते हैं कि सत्ययुगमें रूपके ध्यानसे स्नेह होता था। अर्थात् उस युगमें जीव शुद्ध रहे, सत्त्वगुण होनेसे चित्तकी वृत्ति विषयोंसे विरक्त हो थिर रहती थी, जिससे मन श्रीरामरूपके ध्यानमें लग जाता था, उससे श्रीरामस्नेह होनेपर जीव कृतार्थ होता था। ***'मख बिधि दूजे'*** अर्थात् त्रेतायुगमें यज्ञविधिसे। यज्ञ पाँच प्रकारका है—देवयज्ञ (अग्निमें हवन करना), पितृयज्ञ (तर्पणादि), भूतयज्ञ (अग्राशनादि), मनुष्ययज्ञ (साधु-ब्राह्मणादिको भोजन देना) और ब्रह्मयज्ञ (सामादि वेदोंकी ऋचा पढ़ना)। त्रेतामें जीवोंमें कुछ रजोगुण भी आ जानेसे, चित्तमें कुछ चंचलता आ जानेसे 'रामयशरूप धर्मके आधार' यज्ञद्वारा रामस्नेह होता था। द्वापरमें रजोगुण बहुत हो गया और कुछ तमोगुण भी आ गया, सत्त्वगुण थोड़ा रह गया। इससे अधर्मका प्रचार बढ़ा और विषयसुखकी चाह हुई तब विभवसहित भगवान्का पूजन करके रामस्नेह प्राप्त करते थे जिससे प्रभु प्रसन्न होते थे और जीव कृतार्थ होता था।

नोट—५ सत्ययुगमें मन सात्त्विक होनेसे एकाग्र था। शरीरमें पूर्ण शक्ति थी। अतः उस समयका साधन ध्यान था। त्रेताके आते-आते मनमें अहंकार आ जानेसे यशेच्छा उत्पन्न हुई। मन इतना शुद्ध न रह गया कि निरन्तर ध्यान हो सके। संग्रहमें रुचि हो गयी। अतः यशेच्छाको दूर करके निष्काम भावसे भगवान्के लिये यज्ञ करना उस युगका साधन हुआ। द्वापरमें शारीरिक शक्ति भी क्षीण हो गयी। संग्रह पवित्र था पर शरीरमें आसक्ति हो जानेसे संग्रहके प्रति भी आसक्ति हो जानेसे यज्ञके लिये सर्वस्व त्याग सम्भव नहीं था। परलोकके सम्बन्धमें सन्दिग्धभाव होने लगे थे। अतः उस युगका साधन पूजा हुआ। भगवान्के निमित्त संग्रह करके प्रसादरूपसे उसका सेवन विधान बना। कलिके मनुष्यके

सम्बन्धमें कहा जाता है—*'असन्तोष अविरत उद्वेलन, भोली भूलें, सूनी आशा। अर्धतृप्ति उद्दाम वासना मानव जीवन की परिभाषा॥'* अतः ध्यान हो नहीं सकता। अन्यायोपार्जित द्रव्य न यज्ञके कामका न पूजाके। शुद्ध पदार्थ अप्राप्य, श्रद्धा-विश्वास-एकाग्रता स्वप्न हो गये। मन, आचार, शरीर सभी अपवित्र हैं। अतः ऐसे समयको *'कराल'* कहा गया।

टिप्पणी—२ *'कलि केवल मल मूल मलीना।·····'* इति। (क) कलि मलको उत्पन्न करता, आप मलिन है और दूसरोंको मलिन करता है जैसा आगे कहते हैं। (ख) *'केवल'* कहकर सूचित किया कि और युगोंमें और धर्म प्रधान रहे, नामका भी माहात्म्य रहा; परन्तु कलियुगमें और कोई धर्म नहीं है क्योंकि पापीको और धर्मोंमें अधिकार नहीं है, यथा—'**अन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः**'। नाममें पापीका अधिकार है, यथा—*'पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥'* (४। २९) (ग) तीन युगोंके धर्म कहकर तब कलियुगमें नामसे भलाई होना कहा। ऐसा करके जनाया कि चारों युगोंका फल कलियुगमें नामहीसे मिलता है, यथा—*'कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥'* (७। १०२) (घ) पूर्व नामको कल्पतरु कह चुके हैं—*'रामनाम को कल्पतरु०।'* अब फिर कल्पतरु कहते हैं। भाव यह है कि नाम कलिको कल्याणकारक एवं कल्याणका निवास-स्थान कर देते हैं और युगका धर्म ही बदल देते हैं।

नोट—६ *'केवल मल मूल'* कहनेका भाव कि कलियुगमें सत्त्वगुण नहीं रह गया, प्रायः तमोगुण ही रह गया और कुछ रजोगुण है। अतः धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होनेसे प्राणियोंके मन पापमें रत रहते हैं। यथा—*'तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥'* (७। १०४)

'कलि केवल मल मूल मलीना·····' का अर्थ श्रीकान्तशरणजीने 'कलियुगमें '**केवल**' (नामसे) क्योंकि कलि पापका मूल और मलिन है तथा·····॥ ४॥ ऐसे कठिन कालमें नाम कल्पवृक्ष है·····' ऐसा किया है। फिर इसके विशेषमें वे लिखते हैं कि—'यहाँ कलिके साथ *'केवल'* कहकर उसे उद्देश्यांशमें साकांक्ष ही छोड़ कलिकी करालता कहने लगे। उसे फिर अगली चौ० *'नाम कामतरु·····'* इत्यादिसे खोलेंगे; क्योंकि फिर वहाँ कलिका नाम नहीं है।—इससे स्पष्ट हुआ कि जब कलिमें केवल नाम ही अभीष्टपूरक है तब अन्य युगोंमें दो-दो साधन थे।'

पं० रूपनारायणमिश्रजी कहते हैं कि—यहाँ इस भावके लिये *'केवल'* शब्दपर जोर देकर खींचा-तानी करके अर्थ करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि स्वयं कविने ही प्रथम *'चहुँ जुग तीन काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥'* कहकर चारों युगोंमें नामसाधनका होना भी जना दिया है तथा आगे इसी प्रसंगमें *'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥'* से सूचित करेंगे कि पूर्व तीन युगोंमें 'कर्म (मख), भक्ति (पूजा), विवेक (ध्यान) और नाम' इनका अवलम्ब था, कलिमें कर्म, भक्ति, विवेक—ये तीन छूट गये, एकमात्र नामका ही अवलम्ब रह गया है। अतः इस भावको कलिमें *'केवल'* (नामसे) यहाँपर लगाना ठीक नहीं, तथापि यदि आग्रह ही हो तो *'कलि केवल'* से *'जगजाला'* तक चार चरणोंका एकत्र अन्वय करके उसमें *'केवल'* शब्दको नामका विशेषण कर देनेसे भी यह अर्थ सिद्ध हो जाता है। *'केवल'* शब्दको उद्देश्यांशमें साकांक्ष छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। वस्तुतः यहाँ ग्रन्थकारका उद्देश्य केवल नामका महत्त्व ही दिखानेका है कि जो कार्य पूर्व तीन युगोंमें ध्यान, मख और पूजासे होता था। वह कलिमें श्रीरामनामके जपसे सिद्ध हो जाता है।

'पाप पयोनिधि जन मन मीना' इति।

(क) जैसे, मछली जलसे अलग होना नहीं चाहती, अगाध जलहीमें सुखी रहती है, जलके घटनेपर वह संकोचयुक्त हो जाती है और जलसे अलग होते ही तड़पने लगती है; वैसे ही कलियुगमें प्राणियोंका मन पाप-समुद्रमें मग्न रहता है, विषयरूपी जलके कम होनेमें, सबकी ममता-मोहके वश होनेके कारण

वह उलटे सोचमें पड़ जाता है, यथा—*'बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक। ताते सहिअ बिपति अति दारुन जनमत योनि अनेक॥'* (वि० १०२) विषयोंको वह कदापि नहीं छोड़ना चाहता। उनके बिना तड़पने लगता है। पुनः, (ख) जैसे मछलीका चित्त जल छोड़ दूसरी ओर नहीं जाता, वैसे ही इनके चित्तकी वृत्ति पापहीकी ओर रहती है, ध्यान, योग, यज्ञ, पूजन आदिकी ओर उसकी प्रवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। पुनः, (ग) जैसे बड़ा जाल डालकर मछलीको पकड़कर जलसे जबरदस्ती बाहर निकाल लेनेपर वह मर जाती है, वैसे ही यहाँ श्रीनाममहाराज जालरूप होकर मनरूपी मीनको पापसमुद्रके विषयरूपी जलसे खींचकर उसके जग (संसार, भव-जन्म-मरणादि) का नाश करते हैं, मन संसारकी ओरसे मर-सा जाता है, विषयवासना जाती रहती है। पुनः, (घ) भाव यह कि मनके सर्वथा पापमें डूबे रहनेसे ध्यान, यज्ञ और पूजन—इन तीनोंके कामका नहीं। इन तीनोंमें मनकी शुद्धता परम आवश्यक है। अतएव इनमें लगनेसे श्रममात्र ही फल होगा। कलिमें नामका ही एकमात्र अधिकार रह गया है। (ङ) मन पाप-समुद्रमें मछली बन गया है, किन्तु यहाँ भी स्वतन्त्र नहीं है। जप-तपके जालमें उलझा हुआ है। पाप करके भी वह अभीष्ट नहीं प्राप्त कर पाता। संसारकी विकट परिस्थितिमें फँसा हुआ तड़फड़ा रहा है। छुटकारा पानेके लिये जितना प्रयत्न करता है उतना ही उलझता जाता है। नामके स्मरणसे सब परिस्थितियोंकी जटिलता दूर तो होती ही है, साथ ही सभी प्रकारके अभीष्ट पूरे हो जायँगे। इस प्रकार सकामभावसे नाम लेनेसे अनिष्टकी निवृत्ति और अभीष्टकी प्राप्ति ठीक वैसे ही हो जाती है जैसे अन्य युगोंमें अन्य साधनोंसे होती थी, यह कहना अभीष्ट है। (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

नोट—७ *'नाम कामतरु काल कराला·····।'* इति (क) *'काल कराला'* पर दोहा १२ (१) देखिये। उत्तरकाण्डमें कराल कलिकालके धर्म *'सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥'* (९७। ८) से *'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।'* (१०२) तकमें वर्णित है। (ख) *'नाम कामतरु'* इति। तीन युगोंके साधनरूपी वृक्षोंका वर्णन करके अब कराल कलिका साधन कहते हैं। ध्यानादि कोई साधन कलिमें नहीं रह गये। नाम ही एकमात्र साधन है जिसपर कलिका प्रभाव नहीं पड़ता और जो सब कामनाओंको देनेवाला है। विशेष दोहा २६ देखिये। (ग) *'सुमिरत समन'* का भाव कि इसमें किंचित् भी परिश्रम नहीं। केवल स्मरणमात्र करना पड़ता है, इतनेहीसे सब जगजाल शान्त हो जाता है, जैसे कल्पवृक्षके तले जानेसे वह सब शोकोंको शान्त कर माँगनेमात्रसे अभिमत देता है। यथा—*'जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोचु। मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोचु॥'* (२। २६७) एकमात्र श्रीरामके आश्रित हो जानेसे काम बन जाता है। *'सुमिरत'* से जनाया कि अनायास सब जगजाल दूर हो जाता है। (घ) *'जगजाला'* इति। **जाल**=समूह, विषम पसारा; जाल। *'जगजाल'* अर्थात् दुःख-सुख, राग-द्वेष, योग-वियोग, स्वर्ग-नरक आदि द्वन्द्व, धन-धाम-धरणी इत्यादि समस्त भवपाश। यथा—*'जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥ जनम मरन जहँ लग जग जालू·····।'* (२। ९२) ये सब संसारमें फँसानेवाले 'जाल' हैं जैसे मछुवाहा-धीमर आदि मछलीको जालमें फाँसते हैं वैसे ही ये सब इन्द्रियोंके विषय प्राणियोंके मनको फाँसनेके जाल हैं जो कलिकालरूपी मछवाहेने फैला रखा है। श्रीरामनाम उस जालको काटकर प्राणीको सब प्रकारके संसार-बन्धनोंसे छुड़ा देते हैं। अथवा, तरुके रूपकसे जगजालको त्रयताप कह सकते हैं। तरु छायासे सुख देता है—*'छाँह समन सब सोचु'* वैसे ही नामकामतरु सब त्रयतापरूपी तीक्ष्ण धूपसे सन्तप्त प्राणीको सुख देते हैं।

रामनाम कलि अभिमत दाता। हित पर-लोक लोक पितु माता॥ ६॥
नहिँ कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥ ७॥

शब्दार्थ—**अभिमत**=मनोरथ, मनोवांछित पदार्थ, अभीष्ट।

अर्थ—कलियुगमें रामनाम मनोरथके देनेवाले हैं, परलोकके लिये हित और इस लोकमें माता-पिता (रूप) हैं॥ ६॥ कलिमें न कर्म है और न भक्ति वा ज्ञान ही, रामनाम ही एक सहारा है॥ ७॥

नोट—१ *'रामनाम कलि अभिमत दाता'* इति। (क) पापपरायण राग-द्वेषादिमें रत मनुष्यके मनोरथ निष्फल जाते हैं। यथा—*'बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥'* (६। ९१) और, कलियुगमें सब पापरत रहते हैं तब उनके मनोरथ कैसे सिद्ध हों—यही यहाँ कहते हैं कि *'रामनाम'* कलिके जीवोंको भी अभिमतदाता हैं। किस प्रकार अभिमत देते हैं यह दूसरे चरणमें बताते हैं। (ख) *'हित पर लोक'* अर्थात् जैसे परम हितैषी स्वार्थरहित मित्रके हितमें तत्पर रहता है वैसे ही श्रीरामनाम जनके परलोकको बिना किसी स्वार्थके बनाते हैं। ऐसे परलोकके हित हैं। पुनः, *'हित पर लोक'* कहकर सूचित किया कि कल्पवृक्ष मोक्ष नहीं देता और श्रीरामनाम परलोक (मोक्ष) भी देते हैं, (ग) *'लोक पितु माता'* इति। *'पितु माता'* के समान कहकर जनाया कि बिना वांछा किये अपनी ओरसे देते हैं, माँगना नहीं पड़ता। कामतरु माँगनेपर देता है, यथा—*'माँगत अभिमत पाव जग।'* (२। २६७) पुनः, जैसे माता-पिता बालकका निःस्वार्थ पालन-पोषण करते हैं। बालकपर ममत्व रखते हैं, वैसे ही श्रीरामनामरूपी माता-पिता बालककी तरह जनका हित करते हैं। यथा—*'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥'* (३। ४३) विशेष दोहा २० चौ० २*'लोक लाहु परलोक निबाहू'* में देखिये।

नोट—२ कल्पवृक्ष अर्थ, धर्म और काम देता है, मोक्ष नहीं। फिर याचक यदि अहितकारक वस्तु माँगे तो वह उसे अहितकारक वस्तु भी दे देता है जिससे याचकके मनकी इच्छाकी पूर्तिके साथ ही उसका विनाश भी हो जाता है। सत्ययुग आदिमें तो सत्त्वकी विशेषता होनेसे मनुष्य प्रायः सात्त्विक पदार्थ माँगते थे पर कलि तो *'केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥'* है; अतः आजकल तो लोग प्रायः पापमय वासनाओंकी ही माँग करेंगे। अतः *'राम नाम कलि अभिमत दाता।.....'* इस चौपाईकी प्रवृत्ति हुई। अर्थात् श्रीरामनाम इस युगमें इच्छाओंकी पूर्ति अवश्य करते हैं पर किस तरह? *'हित पर लोक लोक पितु माता'।* तात्पर्य कि समस्त बुरी-भली इच्छाओंकी पूर्तिकी पूर्ण शक्ति होते हुए भी वह कल्पवृक्षकी तरह अपने जापकको उसके अकल्याणकी वस्तु नहीं देता, वह चाहे जितना रोवे, चिल्लावे। देवर्षि नारदकी कथा इसी ग्रन्थमें ही उदाहरणके लिये है ही। भगवान् कहते हैं—*'जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु..... ॥'* (१३२) *'कुपथ माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥ एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ।'* नारदजीके पूछनेपर श्रीरामजीने कहा है कि *'भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥ करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥'* (३। ४३) वही बात यहाँ नामके सम्बन्धमें कह रहे हैं। श्रीरामनाम-महाराजकी दृष्टि भक्तके *'परम हित'* (परलोक-हित) की ओर विशेष रहती है। पारलौकिक कल्याणमें हानि न पहुँचे यह उद्देश्य दृष्टिमें रखते हुए उसके लौकिक कामनाओंकी पूर्ति की जाती है जहाँतक सम्भव है। इसीसे प्रथम *'हित पर लोक'* कहकर तब *'लोक पितु माता'* कहा। *'लोक पितु माता'* का भाव कि जापककी इच्छाकी पूर्ति उसी प्रकार करते हैं जैसे पिता और माता बच्चोंकी इच्छाओंकी पूर्ति करते हैं। बच्चा यदि रोगमें कुपथ्य माँगता है तो माता-पिता उसे नहीं देते, यथा—*'जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥.....'* (७। ७४) नामको प्रथम पिता कहा; क्योंकि माताकी अपेक्षा पिताका ध्यान पुत्रके भविष्यकी उन्नतिकी ओर विशेष रहता है। फिर माता-रूपसे हित करनेमें भाव यह है कि माताकी तरह नाम-महाराज स्नेहमय हैं, तात्कालिक कष्टके निवारणकी सर्वथा उपेक्षा भी उनमें नहीं है। वे उसके *'परलोक हित'* की रक्षा करते हुए लौकिक हित भी करते हैं। पुनः भाव कि *'हित पर लोक'* के सम्बन्धमें तो नाम *'अभिमत दाता'* हैं अर्थात् परमार्थ सम्बन्धी जो भी कामनाएँ होती हैं नाम उसे उसी रूपमें पूर्ण कर देता है किन्तु 'लोक' (लौकिक कामनाओं) के सम्बन्धमें नाम *'पितु माता'* है। अर्थात् परलोकके हितकी रक्षा करते हुए ही सांसारिक कामनाओंकी पूर्ति करता है। (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

नोट—३ *'नहिं कलि करम'*..... इति। (क) तात्पर्य कि कलिमें मनुष्यके अत्यन्त शक्तिहीन हो जानेसे इनका साधन उससे निबह नहीं सकता, इन सबोंमें उपाधियाँ हैं। *'करम'* (कर्म) शब्दसे क्रियारूप उन सभी कर्मोंकी ओर संकेत है जो आध्यात्मिक उन्नतिके लिये किये जाते हैं। मनके पाप-परायण होनेसे प्राणियोंको इनका अधिकार ही नहीं रह जाता (क्योंकि अपवित्र मनसे जो धर्म होता है वह धर्म नहीं रह जाता)। प्रमाण यथा—*'कर्मजाल कलिकाल कठिन, आधीन सुसाधित दाम को। ज्ञान बिराग जोग जप को भय लोभ मोह कोह काम को॥'* (वि० १५५) **'रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः। कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥'**, *'कर्म उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान बचन, बिराग, बेष, जगत हरो सो है।'* (क० उ० ८४)

उपर्युक्त उद्धरणोंके अनुसार कर्मकाण्डमें धन चाहिये, श्रद्धा चाहिये। कलिमें जिनमें कुछ धर्म है वे निर्धन हैं। मनमें कुवासनाएँ होनेसे, काम-क्रोध-लोभ-मोह होनेसे, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि भी नहीं हो सकते; क्योंकि इनमें मन शुद्ध चाहिये। (ख) 'कर्म शुद्ध नहीं तो क्या? भगवान् तो भाव देखते हैं। द्रव्य अन्यायोपार्जित और अशुद्ध हो, किन्तु भाव शुद्ध हो तो यज्ञादि किये जा सकते हैं। भाव ही फल देगा।' यह विकल्प ठीक नहीं। कर्मके दो प्रकार हैं। एक क्रियामात्रसे फल देनेवाले, दूसरे भावानुसार फल देनेवाले। जो क्रियारूप कर्म हैं, सर्वज्ञ महर्षियोंने उन क्रियाओंमें शक्तिका ऐसा विधान किया है कि वे विधिपूर्वक हों तो उनसे फल होगा ही। वहाँ भावकी अपेक्षा नहीं है। विधिके अज्ञान, पदार्थदोष, अन्यायोपार्जित पदार्थोंका भावदोष, इन कारणोंसे क्रियारूप कर्म तो इस युगमें शक्य नहीं। रहे भावरूप कर्म, उनके लिये अविचल विश्वास और श्रद्धा चाहिये। भाव मनका धर्म है और आज मनमें अविश्वास, चंचलता, मलिनता, सन्देह स्वभावसे भरे हुए हैं। भक्तिके लिये मन निर्मल चाहिये। 'सन्देहयुक्त मनसे किये हुए कर्मोंमें भावदोष होनेसे फलप्रद नहीं होते, किन्तु बुद्धि तो विकारहीन है। ज्ञान बुद्धिका धर्म है। अतः कम-से-कम ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है!' इसपर कहते हैं *'न बिबेकू'* अर्थात् कलिमें सत् असत्का विवेक नहीं रह गया। आजकलकी सत्को असत् और असत्को सत् माननेवाली बुद्धि कैसे तत्त्वका निर्णय करेगी? दूसरी बात यह है कि बुद्धिका विवेचन जब मनके विपरीत होता है, वह पाखण्ड बन जाता है। वैराग्यादि साधनचतुष्टयसम्पन्नके लिये ही ज्ञान मोक्षप्रद है। आज मनमें वैराग्य नहीं, इन्द्रियोंका संयम नहीं, अतः अपरोक्ष साक्षात्काररूप ज्ञान सम्भव नहीं।

बैजनाथजी कहते हैं कि 'कर्म नहीं हैं' कहनेका भाव यह है कि चारों वर्ण अपने धर्मसे च्युत हो गये। ब्राह्मणके नौ कर्म कहे गये हैं, यथा—**'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥'** (गीता १८। ४२) इसी तरह क्षत्रियोंके छः और वैश्योंके तीन कर्म कहे गये हैं। यथा—**'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥'**(१८। ४३-४४)—ये कोई कर्म इन चारोंमें नहीं रह गये। यदि कोई सत्कर्म करता भी है तो मान-प्रतिष्ठा, लोकप्रशंसा आदि दुर्वासनासे करता है। उपासना नहीं है, यदि कोई करता है तो मन तो उसका विषय आदिमें रहता है ऊपरसे पूजा-पाठ, तिलक, माला आदिका पाखण्ड। ज्ञान भी वचनमात्र है।

नोट—४ *'राम नाम अवलंबन एकू'* अर्थात् यही एकमात्र उपाय 'श्रीरामजीमें स्नेह और भवतरण' का है। इसमें लगनेसे पाप नाश होते हैं, मन भी शुद्ध हो प्रभुमें लग जाता है और विवेक भी होता है तथा कोई विघ्न नहीं होने पाते। कहा भी है—*'एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-संजम-समाधि रे॥'* (विनय० ६६)

नोट—५ श्रीजानकीशरणजी कहते हैं कि पूर्व जो *'ध्यान प्रथम जुग'* *'मख बिधि दूजे'* और *'द्वापर परितोषत प्रभु पूजे'* कहा था उसीको यहाँ विवेक, कर्म और भक्ति कहकर निषेध करते हैं। (मा० मा०)

कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू॥ ८॥

अर्थ—कपटका निधान (स्थान; खजाना) कलि कालनेमि (रूप) है। (उसके नाशके लिये) नाम ही अत्यन्त बुद्धिमान् और समर्थ श्रीहनुमान्‌जी हैं॥ ८॥

नोट—१ *'कालनेमि'* इति। यह रावणका मामा था। बड़ा ही कपटी था। इसने रावणके कहनेसे श्रीहनुमान्‌जीको छलनेके लिये साधुवेष बनाया था। श्रीहनुमान्‌जीने उसके कपटको जान लिया और उसको मारा डाला। कालनेमिका प्रसंग लं० दोहा ५६ (१) से ५७ (७) तक है।

नोट—२ पूर्व कहा कि रामनाम ही एक अवलम्ब रह गया है। उसपर यह शंका होती है कि जैसे कलि कर्म, ज्ञान और भक्तिमें बाधक हुआ वैसे ही 'नाम-जापकोंपर भी विघ्न करेगा?', उसपर कहते हैं कि नहीं।

टिप्पणी १—*'कलि कपट निधानू'* इति। (क) कलियुगको कपटी कहनेका भाव यह है कि वह नामके प्रभावको जानता है, इसीसे साक्षात् प्रकटरूपसे विघ्न नहीं कर सकता, कपटसे विघ्न करना चाहता है। जैसे, कालनेमि श्रीहनुमान्‌जीके बलको जानता था। यथा—*'देखत तुम्हहिं नगर जेहि जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥'* (६। ५५)—यह उसने रावणसे कहा है इसीसे साक्षात् प्रकटरूपसे विघ्न न कर सका, कपट करके उसने विघ्न करना चाहा था। यथा—*'अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥ राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥'* (६। ५६) कलि कपटी है। इसने राजा नल और राजा परीक्षित्‌के साथ कपट किया। यथा—*'बीच पाइ एहि नीच बीच ही छरनि छर्‌यो हौं।'* (विनय० २६६) भागवतमें परीक्षित्‌की कथा प्रसिद्ध ही है।

नोट—३ (क) सू० प्र० मिश्रजी कहते हैं कि—'जैसे कालनेमि ऊपरसे तो मुनि था और भीतर-से तो राक्षस ही था। इसी तरह कलियुग भीतरसे कपटवेष और ऊपरसे युगवेष किये हुए है। (ख) *'कपटनिधान'* का भाव कि कपटी तो सभी राक्षस होते हैं, यथा—*'कामरूप जानहिं सब माया।'* (१८१। १) पर कालनेमि कपटका भण्डार ही था, इसके समान मायावी दूसरा न था। श्रीहनुमान्‌जीको राक्षसी मायासे भ्रममें डाल देना अन्य किसीका सामर्थ्य न था तभी तो रावण कालनेमिके पास ही गया। इसकी शक्ति बड़ी अपूर्व थी। वह हनुमान्‌जीसे पहले ही मार्गमें पहुँचकर माया रच डालता है और उसकी मायाके भ्रममें हनुमान्‌जी पड़ ही तो गये। मकरीके बतानेसे ही वे कालनेमिके कपटको जान पाये। कलिको कपटनिधान कालनेमि कहनेका भाव कि जैसे कालनेमिने साधुवेषद्वारा कपट किया वैसे ही कलियुग धर्मकी आड़में अधर्म करता है—*'मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥'* (७। ९८) कलि दम्भ, कपट और पाखण्डरूपी खजानेसे भरा हुआ है। इसके दम्भ, कपट, पाखण्ड जाल बड़े-बड़े बुद्धिमानोंको भ्रममें डाल देते हैं।

टिप्पणी २—*'नाम सुमति समरथ हनुमानू'* इति। (क) *'सुमति'* का भाव कि बुद्धिमानीसे उसका कपट भाँप गये। कालनेमिने पहले श्रीरामगुणगान किया। इस तरह उनको वहीं सबेरेतक रोक रखनेका यही उपाय था। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामगुणगान सुनते रहे। पर जब वह अपनी बड़ाई करने लगा कि *'इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ज्ञानदृष्टि बल मोहि अधिकाई॥'* (६। ५६) तब वे ताड़ गये कि यह सन्त नहीं है, क्योंकि सन्त तो *'निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं।'* (३। ४६) मुखसे कहना तो बहुत ही असम्भव है। अतः वे पानी-पीनेका बहाना कर चल दिये। जल पीकर लौटे तो लांगूरमें लपेटकर उसे धर पटका, तब उसका कपट-वेष भी प्रकट हो गया। पुनः; (ख) *'सुमति'* विशेषण देकर यह भी सूचित किया कि हनुमान्‌जी तो मकरीके बतलानेपर कि—*'मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥'* (६। ५७) कालनेमिके कपटको जान पाये थे और तब उसे मारा था। परन्तु श्रीरामनाम-महाराजको दूसरेके बतानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कालनेमि गुरु बनकर हनुमान्‌जीको ठगना चाहता था, वैसे ही जब कलि-जापकको ठगनेका कोई उपाय करेगा तभी मारा जायगा।—यहाँ *'सुमति'* में शाब्दी व्यंग्य है कि नामरूपी हनुमान्‌जी 'मतिमान्' हैं, बिना किसीके सुझाये कलिके कपटका नाश करते हैं।

नोट—४ बैजनाथजी रूपककी पूर्ति इस प्रकार करते हैं—श्रीरामजी विवेक और लक्ष्मणजी विचार हैं। मोह-रावणके पुत्र काम-इन्द्रजित्ने असत् वासनारूप शक्तिसे जब विचार लक्ष्मणको घायल किया तब वैराग्यरूप हनुमान् सत्संगरूप द्रोणाचलसे चैतन्यतारूप संजीवनी लेने चले। कालनेमिरूपी कलिने कपट-निधान मुनि बनकर संसाररूप बागमें गृहसुखरूप मन्दिर इन्द्रियविषयरूप तड़ाग रचकर ज्ञानवार्ता की अर्थात् घरहीमें भजन बनता है, गृहस्थका आसरा त्यागी भी करता है, इत्यादि वार्ता करके वैराग्य—हनुमान्को लुभाया। जब इन्द्रियसुखरूपी जल पीने गये; तब रामनामका अवलम्ब जो वे लिये हुए हैं वही सहायक हुआ, भगवत्-लीला देख पड़ी। कुमतिरूपी मकरी शापोद्धारसे सुमति हुई, उसीने वैराग्यरूप हनुमान्जीको समझा दिया। नामके प्रतापसे, सुमतिके प्रकाशसे वैराग्य-हनुमान्ने कलिका नाश कर दिया।

नोट—५ इस चौपाईका आशय यह है कि हम यदि नामका नियम ले लें तो हमारे लिये कलियुगका नाश हो चुका। 'कलिके दम्भकी प्रवृत्ति वासनात्मक है, बहिर्मुख है। बहिर्मुखताके साथ नाम चल नहीं सकता। अतः यदि हम किसीके द्वारा कभी भ्रममें पड़ेंगे भी तो यदि नाममें दृढ़ रहेंगे तो बहिर्मुखवृत्ति एवं कार्य नष्ट हो जायगा। उसकी पोल खुल जायगी और हम उसे स्वभावतः छोड़ देंगे।' (श्रीसुदर्शनसिंहजी)

दोहा—रामनाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ २७॥

शब्दार्थ—**नरकेसरी**=नृसिंहजी। **सुरसाल**=देवताओंको पीड़ित करनेवाला; दैत्य। **दलना**=नाश करना। **कनककसिपु**=हिरण्यकशिपु।

अर्थ—कलिकालरूपी हिरण्यकशिपुके लिये श्रीरामनाम नृसिंह (रूप) हैं, जापकजन प्रह्लादजीके समान हैं, वे (रामनामरूपी नृसिंह) देवताओंको दुःख देनेवाले (कलिरूपी हिरण्यकशिपु) को मारकर (जापकरूपी प्रह्लादका) पालन करेंगे। भाव यह है कि जैसे नृसिंहजीने देवताओंको दुःख देनेवाले हिरण्यकशिपुको मारकर अपने दास प्रह्लादकी रक्षा की थी, वैसे ही इस कराल कलिकालमें श्रीरामनाम कलिकालसे नाम-जापकोंकी रक्षा करते हैं एवं करेंगे॥ २७॥

टिप्पणी १—(क) रामनामका नृकेसरीसे रूपक देकर दिखाया है कि जैसे कनककशिपु सबसे अवध्य था, नृसिंहजीने उसको मारा, इसी तरह कलि सबसे अवध्य है, नाम ही उसका नाश करते हैं। (ख)—***'जापक जन प्रहलाद जिमि.....'*** इति। ***'सुरसाल'*** का भाव यह कि जबतक हिरण्यकशिपु देवताओंको दुःख देता रहा तबतक भगवान् प्रकट न हुए। परन्तु, जब प्रह्लादजीको उसने मारना चाहा तब तुरन्त प्रकट हो गये, यथा—***'सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥'*** (२। २६५) इसी प्रकार जबतक कलि सद्धर्मोंका नाश करता है तबतक 'नाम' महाराज कलिका कुछ अपकार नहीं करते, परन्तु जब वह जापकको दुःख देता है तब उसका नाश करते हैं।

नोट—१ नृसिंहहीकी उपमा क्यों दी और किसी अवतारकी क्यों न दी? क्योंकि जब हिरण्यकशिपु-ने दासपर विघ्न किया तब प्रभुको अत्यन्त क्रोध हुआ। ऐसा क्रोध अन्य किसी अवतारमें नहीं प्रदर्शित किया गया, इससे इस अवतारकी उपमा दी गयी।

नोट—२ यहाँ ***'रामनाम', 'कलिकाल'*** और ***'जापकजन'*** पर क्रमसे 'नृसिंहजी', 'कनककशिपु' और 'प्रह्लाद' होनेका आरोपण किया गया; पर, ***'सुरसाल'*** शब्दमें 'सुर' उपमानका उपमेय नहीं प्रगट किया गया कि क्या है? इसमें 'वाचकोपमेयलुप्ता' अलंकारसे अर्थ समझना चाहिये। हिरण्यकशिपुसे देवताओंको दुःख और कलियुगमें सद्गुण-सद्धर्मको धक्का पहुँचा, यथा—***'कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।'*** (उ० ९७) ***'कलि सकोप लोपी सुचाल निज कठिन कुचालि चलाई॥'*** (वि० १९५) सद्गुण ही सुर हैं, यथा—***'सद्गुन सुरगन अंब अदिति सी।'*** (बा० ३१) यहाँ परम्परितरूपक और उदाहरण हैं। ***'पालिहि'*** भविष्य-कालिक क्रिया देकर जनाया कि जापकजन निश्चिन्त रहें, कलि जब विघ्न करेगा तभी मारा जायगा।

नोट—३ ***'कालनेमि कलि'*** इस चौपाईमें श्रीरामनामरूपी हनुमान्‌जीद्वारा कलिरूपी कालनेमिका नाश कहा गया। जब उसका नाश हो गया तो फिर दोहेमें दुबारा मारना कैसे कहा? अर्थात् दो रूपक क्यों दिये गये? यह प्रश्न उठाकर उसका समाधान यों किया जाता है कि—(१) ***'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू'*** (१। २७। ७) कहकर जनाया गया था कि कलिने कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनोंको नाश कर डाला, अब केवल नामहीका एक अवलम्ब रह गया है। इस वाक्यसे यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि 'नाम' को भी नाश कर देगा। इस शंकाकी निवृत्ति ***'कालनेमि कलि कपट निधानू।.....'*** से की गयी। जैसे हनुमान्‌जीने अपनी सुमति और सामर्थ्यसे कालनेमिको नाश किया वैसे ही श्रीरामनाम-महाराज ऐसे समर्थ हैं कि वे कलिसे अपनी रक्षा सदा किये हैं। श्रीरामनामको चौपाईमें अपनी रक्षाके लिये स्वयं समर्थ होना जनाकर फिर दोहेमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये भी समर्थ होना निरूपण किया। भाव यह कि कलि न तो 'नाम' ही का और न 'नाम-जापक' का ही कुछ कर सकता है वा कर सकेगा। पुनः, (२) श्रीरामनाम-महाराजने हनुमान्‌रूपसे कलिका कपट नाश किया और नृसिंहरूपसे उसका पुरुषार्थ नाश किया। दो बातें दिखानेके लिये दो बार कहा। यथा—***'इहाँ कपट कर होइहि भाँडू।'*** (२। २१८) ***'अब कुचालि करि होइहि हानी।'*** (२। २१८) (पं० रामकुमारजी) अथवा, (३) कालनेमि हनुमान्‌जीसे डरता था जैसा उसके ***'रामदूत कर मरौं बरु।'*** (६। ५५)। इन वचनोंसे स्पष्ट है, वैसे ही कलि रामनामसे डरता है यह चौपाईमें दिखाया। हिरण्यकशिपु नाम-जापक प्रह्लादसे डरता नहीं था किन्तु अपना पुत्र समझकर वह उनको अपनी राहपर लाना चाहता था और न वह भगवान्‌से डरता था; वैसे ही कलिकाल न तो नाम-जापकसे डरता है और न नामसे। वह नाम-जापकको कलिमें उत्पन्न होनेसे अपना पुत्र मानकर जब अपने मार्गपर चलाना चाहता है और जापक अपनेमें दृढ़ है, तब नाम-महाराज अद्‌भुतरूपसे कलिका नाश कर देते हैं। यह दोहेसे दिखाया। अथवा, (४) दो बार लिखकर जनाया कि कलि चाहे कपट-छलसे विजय चाहे, चाहे सम्मुख लड़कर, दोनों हालतोंमें उसका पराजय ही होगा। हिरण्यकशिपुने सम्मुख लड़कर विजय चाही सो भी मारा गया।

नोट—४ कलियुगके दो रूप हैं। एक तो धर्मकी आड़में अधर्म; इसीको दम्भ या आडम्बर कहते हैं; चाहे साधक स्वयं दम्भ करे, चाहे दूसरेके दम्भसे भ्रान्त हो, ये दोनों दम्भ इसमें आ जाते हैं। दूसरा, प्रत्यक्ष अधर्म। यह रूप पहलेकी अपेक्षा बहुत भयंकर है क्योंकि प्रत्यक्ष अधर्ममें पाप करनेमें घृणा, लज्जा या भय नहीं लगता। कलिके प्रथम रूपको कालनेमि और दुर्दमनीय दूसरे रूपको हिरण्यकशिपु बताया गया। कलिके दम्भात्मक रूपमें सच्चे साधकको भ्रान्त करनेका प्रयत्न भी एक सीमातक उनका समर्थन करते हुए ही होता है। उसमें सत्यधर्मके प्रति सम्मानका प्रदर्शन है, उत्पीड़न नहीं है! पर कलियुगके प्रत्यक्ष अधर्मरूपके द्वारा साधक उत्पीड़ित किया जाता है। अधर्मका यह रूप अपने-आपमें सन्तुष्ट नहीं रहता। धर्म या ईश्वरको मानना अपराध बना देना उसका लक्ष्य है। जैसे हिरण्यकशिपु अपनेको ही सर्वोपरि सत्ता मानता था, दैविक सम्पत्तिका शत्रु था, ईश्वर और धर्मको मानना अपराध घोषित कर दिया था वैसे ही कलियुगमें सन्ध्या-वन्दन, वर्णाश्रम-धर्म, पूजा-पाठ और शास्त्र-उपहास एवं अपमानके कारण होते जायँगे। ईश्वरको भीरु एवं मूर्खसमाजकी कल्पना कहा जाने लगा ही है। आध्यात्मिकताके लिये कोई प्रयत्न करना अशक्य हो जायगा। ऐसी दशामें धार्मिक एवं आस्तिक लोग क्या करें? गोस्वामीजी इसका उत्तर इस दोहेमें देते हैं। सबपर प्रतिबन्ध लग सकता है, किन्तु आपकी वाणी आपकी ही रहेगी। जोरसे न सही, मनमें तो आप नाम सदा ले सकेंगे। नाम ही रक्षाका एकमात्र साधन है। नाम-जापक भी सताये जा सकते हैं, परन्तु जब ऐसा होगा, अधर्म स्वतः नष्ट हो जायगा। अनैतिक उत्पीड़नसे भी यही रक्षा कर लेता है। (श्रीचक्रजी)

नोट—५ श्रीजानकीशरणजीने कलिकालके रूपकका विस्तार इस प्रकार किया है कि—'हिरण्यकशिपुने वर माँगा था कि मैं न नरसे मरूँ, न देवसे, न भीतर, न बाहर, न दिनमें, न रातमें, न पृथ्वीपर, न आकाशमें, न पशुसे, न पक्षीसे। वैसे ही कलिने भगवान्‌से वर माँगा कि मैं न कर्म-धर्म करनेवालोंसे

(रजोगुणी वा सतोगुणीसे) मरूँ, न गृहस्थसे, न तपस्वीसे, न अविद्यासे, न विद्यासे, न पापसे, न पुण्यसे, न मूर्खसे, न साक्षरसे और जैसे हिरण्यकशिपुने माँगा था कि मेरा एक रक्त-बूँद गिरे तो सहस्रों हिरण्यकशिपु पैदा हो जायँ वैसे ही कलिने माँगा कि 'यदि कोई ज्ञान-वैराग्यादि बाणोंसे मुझे छेदन करे तो मेरा तेज और अधिक हो जाय।' जापकके जिह्वारूपी खम्भसे नाम-नृसिंह निकलकर कलिका नाश करेंगे। रकार सिंह और मकार नरवत् हैं।' (मा० मा०) कलिको जापकपर क्रोधका कारण यह है कि द्वापरमें जन्मे हुए राजा नल, युधिष्ठिर महाराज और राजा परीक्षित् भी मेरी आज्ञापर चले—जूआ खेले, घोड़ेपर चढ़े, फलके बहाने माँस खाया, मुनिके गलेमें मरा सर्प डाला; और यह जापक मेरे ही राज्यमें जन्म लेकर मेरी आज्ञाके विरुद्ध चलता है! (अ० दी० च०)

नोट—६ *'कालनेमि कलि०'* में पहले कालनेमि कलिको रखा तब 'हनुमान्‌जीको' और दोहेमें प्रथम *'नरकेसरी'* को तब *'कनककसिपु कलिकाल'* को अर्थात् एकमें मारनेवालेको पहले और दूसरेमें पीछे कहा गया है। शब्दोंका यह हेर-फेर भी भावसे खाली नहीं है। (१)—*'कालनेमि....'* में यह दिखाया है कि नाम-महाराज अपनी रक्षामें इतने निश्चिन्त वा असावधान (लापरवाह) हैं कि कालनेमि कलियुगको देख रहे हैं फिर भी उसकी उपेक्षा कर रहे हैं, उसकी परवा नहीं करते और दोहेमें यह बताते हैं कि अपने 'जापक-जनकी रक्षामें' प्रथमसे ही तैयार रहते हैं। पुनः, (२) चौपाईमें बताया कि श्रीहनुमान्‌जीने यह जानकर भी कि यह राक्षस है, साधु बनकर ठगना चाहता था तो भी उन्होंने उसपर रोष नहीं किया। वैसे ही श्रीरामनाम-महाराज अपने ऊपर अपराध करनेपर भी रोष नहीं करते। और दोहेमें बताते हैं कि यदि कोई जापकजनका अपराध करे तो वे उसे नहीं सह सकते, उसके लिये नृसिंहरूपसे सदा तैयार रहते हैं। यथा—*'सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥ जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥ लोकहु बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥'* (२। २१८)

भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥ १॥

अर्थ—भाव, कुभाय (खोटे भाव, अप्रीति), क्रोध या आलस्य (किसी भी प्रकार) से नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें मंगल ही होता है॥ १॥

नोट—१*'भाय कुभाय अनख....'* इति। (क) बैजनाथजीका मत है कि—'**भाय**=भाव। जैसे कि शेष-शेषी, पिता-पुत्र, भार्या-स्वामी, शरीर-शरीरी, धर्म-धर्मी, रक्ष्य-रक्षक इत्यादि भाव। यह मित्रपक्ष है। **कुभाय**=कुत्सित-भाव। जैसे कि अनरस जिसमें स्वाभाविक विरोध है, ईर्ष्या-भाव (जो बढ़ती न सह सके), असूया-भाव (जो गुणमें दोष आरोप करे), वैरभाव—इत्यादि जो शत्रुपक्षके भाव हैं। *'अनख'* अर्थात् जो प्रीति—विरोधरहित है पर किसी कारणसे रुष्ट हो गया। *'आलस'* जैसे शोकमें या श्रमित होनेपर सुध आ जाना, नाम निकल पड़ना—ये उदासीनपक्षमें हैं।'

(ख) मिलान कीजिये—'**सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥**' (भा० ६। २। १४) अर्थात् संकेतसे, हँसीसे, गानके आलापको पूर्ण करनेके लिये अथवा अवहेलनासे भी लिया हुआ भगवन्नाम मनुष्यके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है, इसे महात्मालोग जानते हैं। इसमें *'हेलनम्'* का भाव *'कुभाव'* से समझा जा सकता है।

(ग) विजय दोहावलीमें इनके उदाहरण ये दिये हैं—*'भाव सहित शंकर जप्यो कहि कुभाव मुनि बाल। कुम्भकरण आलस जपेउ अनख जपेउ दशभाल॥'* मानसमें इसके प्रमाण, यथा—*'सादर जपहु अनँग आराती।'* (१। १०८) *'भएउ सुद्ध करि उलटा जापू।'* (१। १९) *'राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।'* (६। ६२) और *'कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥'* (६। १०२)

(घ) *'कु'* शब्दके—पापबोधक, कुत्सा (बुरा), ईषदर्थ (थोड़ा) और निवारण—ये चार अर्थ, हैमकोशमें मिलते हैं। यथा—'**कुपापीयसि कुत्सायामीषदर्थे निवारणे।**' *'कुभाव'* में इन चारोंका ग्रहण हो सकता है। **कुभाव**=पापभावसे, बुरे भावसे, किंचित भावसे तथा 'अभाव' से।

☞इस तरह हम *'भाय कुभाय'* के तात्पर्य यह निकाल सकते हैं कि—*'भाय* (भाव)' से शुद्ध निष्काम प्रेम और श्रद्धा-विश्वासादि सात्त्विक-भावका ग्रहण होगा। इस व्याख्यासे आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी और प्रेमी सभी भक्तोंका समावेश *'भाय'* में आ जाता है। *'कुभाय'* से पूर्वोक्त शुद्ध निष्काम या सात्त्विक तथा तामसी भावोंके अतिरिक्त जितने भी भाव हैं उन सबोंका ग्रहण होगा। इसमें सत्कार, पूजा, प्रतिष्ठा आदिके लिये होनेवाले राजस तपको ले सकते हैं। यथा—**'सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्। क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥'** (गीता १७। १८) विनोद, नामाभास, अनुवाद आदि भी *'कुभाय'* में ही लिये जायँगे। अनख और आलस्य तामस वृत्तियाँ हैं, अतएव क्रोध, ईर्ष्या, आलस्य, निद्रा आदि सब इनमें आयँगे।

☞नव दोहोंमें नामका माहात्म्य कहकर अब सबका सारांश यहाँ अन्तमें लिखते हैं। चाहे कोई प्रेमपूर्वक मन और वचनकी एकतासे एवं उसके अर्थ और महत्त्वको समझते हुए नामका जप करे अथवा, अनादर और असूयापूर्वक निन्दाके मिष उसका उच्चारण करे किंवा आलस्यवश अँगड़ाई लेते हुए विश्रामभावविशिष्ट नामका जप करे, वह कल्याण—लाभ अवश्य करेगा, प्रत्येक देश-कालमें वह मंगल फल प्राप्त करेगा। इसमें सन्देह नहीं।

नोट—२ श्रीसुदर्शनसिंहजी लिखते हैं कि *'कुभाय'* का अर्थ है—निन्दाके लिये, हेय बतानेके लिये, घृणा प्रदर्शनके लिये, दम्भसे किसीको ठगनेके लिये लिया गया नाम। 'क्या राम-राम बकते हो, क्या रखा है इसमें? राम एक आदर्श राजा अवश्य थे, पर उनका नाम रटना व्यर्थ है!' इस प्रकार हेय बतानेके लिये भी नाम लिया जाता है। 'राम-राम कहनेवाले सब धूर्त या मूर्ख होते हैं!' इस प्रकार निन्दाके लिये भी नाम लिया जाता है। 'राम! राम! छि:!'—घृणाप्रदर्शन भी नामद्वारा होता है। दूसरोंको पुकारनेमें यदि उनका नाम राम हो तथा परस्पर अभिवादनमें जो 'जय रामजी' या 'राम-राम' किया जाता है उसमें कुभाव तो नहीं है; किन्तु भगवन्नाम-बुद्धि नहीं है। इस प्रकार प्रत्येक रीतिसे भावहीन या दुर्भावपूर्वक नामोच्चारण भी मंगलप्रद है।' छींकते, खाँसते, गिरते, चौंकते, डरकर चोट लगनेपर नाम लेना भी 'आलस्य' में ही है, क्योंकि जान-बूझकर सावधानीसे नाम नहीं लिया गया।

'दिसि दसहूँ' इति। इसका एक अर्थ तो यह है ही कि नाम सभी स्थानोंमें सर्वत्र मंगलप्रद है। दूसरा भाव यह है कि दूसरे सभी साधन एवं पुण्य कार्य केवल मर्त्यलोकमें मनुष्ययोनिमें किये जानेपर मंगलप्रद होते हैं। दूसरी योनियोंमें तथा दूसरे लोकोंमें किये गये कर्म मंगलप्रद नहीं होते। क्योंकि मनुष्येतर सभी योनियाँ भोगयोनि हैं और मर्त्यलोकको छोड़ सभी लोक भोगलोक हैं। भोगयोनियों तथा भोगलोकोंके कर्म फलोत्पादक नहीं होते। परन्तु नामोच्चारण सभी योनियों और सभी लोकोंमें कल्याणकारी होगा, व्यर्थ नहीं जायगा, वहाँके नियम उसे बाधित नहीं करते।

भाव, कुभाव आदिसे नाम जपनेवालेका मंगल होगा, यह बात कठिनतासे समझमें आनेकी है। बात यह है कि कर्ममात्र अपना फल भावके आधारपर ही देते हैं। भावके द्वारा ही कर्मसंस्कार बनते हैं और वहीं संस्कार फल उत्पन्न करते हैं। यह नियम है। केवल मनुष्य ही स्वतन्त्र भाव कर सकता है। दूसरे सभी देव, राक्षस, पशु, पक्षी, कीट—प्रकृतिसे नैसर्गिक स्वभावसे संचालित होते हैं। अत: उनके कर्मोंमें भाव स्वातन्त्र्य न होनेसे कर्मसंस्कार नहीं बनते। ऐसी दशामें नामोच्चारणका फल सर्वत्र कैसे हो सकता है? वह केवल मनुष्ययोनिमें और भावके अनुसार होना चाहिये। दुर्भाव आदिसे लिया गया नाम मंगलप्रद कैसे हो सकेगा?

ये तर्क इसलिये उठते हैं कि नामको 'भावरूप कर्म' समझ लिया गया है। वस्तुत: नाम भावरूप कर्म न होकर पदार्थरूप है। सत्य, अहिंसा, दान, चोरी इत्यादि भावरूप कर्म हैं। अतएव इनके करनेमें भावानुसार पाप-पुण्य होता है। बच्चे, पागल, निद्रितके द्वारा ये कर्म हों तो उनका कोई फल नहीं होता। इसी प्रकार भोगयोनियोंके जीव सिंहादि हिंसा करनेपर भी उसके पापके भागी नहीं होते।

अग्निका स्पर्श—यह वस्तुरूप पदार्थात्मक कर्म है। इसके परिणामके प्रकट होनेमें भावकी अपेक्षा नहीं है। अग्निका स्पर्श श्रद्धा, अश्रद्धा, घृणा, द्वेष या आलस्यसे, जानकर या अनजानमें करें, परिणाम एक ही है। चाहे बच्चा हो, पागल हो तो भी अग्नि उसे जलावेगा ही। वहाँ स्पर्शरूप कर्मका एक ही फल सभी भाववालोंको होगा। भगवन्नाम अपने नामीका स्वरूप है, वह भाव नहीं है, सत्य है। वह सच्चिदानन्द-स्वरूप है, परमतत्त्व है। अतएव उसका संसर्ग 'भावरूप कर्म' न होकर वस्तुरूप कर्म है। वस्तुरूप कर्म भावकी अपेक्षा नहीं करता, अतः वह कर्ममात्रसे फल प्रकट करता है। इसीसे नाम ***'जपत'*** जपकी क्रिया होते ही मंगल होता है। क्योंकि भगवान् सर्वव्यापी हैं अतः उनका स्वरूप नाम भी सर्वव्यापी है। वह उच्चारणमात्रसे कल्याणकारी है। जैसे अग्निका स्वाभाविक गुण दाह है वैसे ही नामका स्वाभाविक गुण मंगल करना है।

नाम-वन्दनाका उपसंहार करते हुए गोस्वामीजीने यहाँ जपके अधिकारीकी सूचना दी है कि ब्रह्मलोकसे लेकर पातालपर्यन्त सभी प्राणी जपके अधिकारी हैं। भावकी यहाँ अपेक्षा नहीं। अभ्यासके द्वारा नामको स्वभाव बना लेना चाहिये जिसमें सभी स्थितियोंमें नाम ही निकले।

नोट—३ ***'दिसि दसहूँ'*** का भाव यह है कि नाम-जापक सबसे निर्भय रहता है। प्रह्लादजी इसके जीते-जागते उदाहरण हैं। सुश्रुतसंहितामें भी ऐसा ही कहा है—**'तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि॥'**

इसका भाव यह भी निकलता है कि श्रीअयोध्या, मथुरा इत्यादि पुरियों और प्रयागराज आदि तीर्थों तथा पर्वत आदि सप्त स्थानोंका कोई भेद यहाँ नहीं है; किन्तु सर्वत्र ही, जहाँ रहे तहाँ ही मंगल होगा।

बैजनाथजी लिखते हैं कि 'दसों दिशाओं' को कहनेका भाव यह है कि मन्त्र-जापके सम्बन्धमें तन्त्रोंमें दसों दिशाओंका संशोधन करके तब बैठकर जप करना कहा है, अन्यथा सिद्धि नहीं होती। अतः ***'मंगल दिसि दसहूँ'*** कहकर जनाया कि श्रीरामनाममें बिना संशोधन ही फलकी प्राप्ति होती है।

दसों दिशाएँ ये हैं—पूर्व, आग्नेयी (पूर्व-दक्षिणके बीच), दक्षिण, नैर्ऋती (दक्षिण-पश्चिमके बीच), पश्चिम, वायवी (पश्चिम-उत्तरका मध्य), उत्तर, ऐशानी (उत्तर-पूर्वका मध्य), उर्ध्व (ऊपर), अधर (नीचे)।

वराहपुराणमें इनकी उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—**'ब्रह्मणस्सृजतस्सृष्टिमादिसर्गे समुत्थिते।..... प्रादुर्बभूवुः श्रोत्रेभ्यो दशकन्या महाप्रभाः॥ पूर्वा च दक्षिणा चैव प्रतीची चोत्तरा तथा। ऊर्ध्वाधरा च षण्मुख्याः कन्या ह्यासंस्तदा नृप॥ तासां मध्ये चतस्रस्तु कन्याः परमशोभनाः॥'** (अ० २९। ३-४)

नोट—४ श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि—'नवों दोहोंके लिखनेपर यह चौपाई लिखनेका भाव यह है कि गोस्वामीजीने वैद्यवत् जीवरूपी भवरोगग्रसितको नामरूपी भेषज खानेको बतलाया। नवों दोहोंके अन्दर नाम जपनेकी रीति, संयम आदि विस्तारपूर्वक वर्णन किये। उसके अनुकूल नामस्मरण करनेसे सारे भवरोगोंका नाश हो जायगा और वह भगवत्-प्राप्तिरूपी आनन्दमें मग्न रहेगा। पर जो रोगी मरणासन्न हो रहा है, संयम करता ही नहीं, अपना हठ नहीं छोड़ता, उसकी दशा देखकर परम कृपालु वैद्य उसको भी यही दवा देकर कहता है कि यह अपूर्व गुणदायक है, इसको खाते रहना, मुखमें जानेसे रोगका नाश अवश्य करेगा। हाँ, भेद इतना है कि मेरे वचनोंपर विश्वास करके भाव (=विधि) के साथ खाते तो शीघ्र नीरोग हो जाते। अच्छा कुभावसे ही सही, खाते जाना, मंगल ही होगा।' (मा० मा०)

नोट—५ नामवन्दना सबकी वन्दनासे विशेष की गयी, नौ दोहोंमें यह प्रकरण लिखा गया, यह क्यों? उत्तर—(१) अंकका प्रमाण '९' ही तक है, उसके पश्चात् शून्य (०) है। नवों दोहोंमें इस प्रकरणको समाप्त करके सूचित किया है कि श्रीरामनाम साधन ही सम्पूर्ण कल्याणोंकी सीमा है, इसे छोड़ अन्य साधनोंसे कल्याणकी आशा रखनी व्यर्थ है। यथा—***'तुलसी अपने रामको भजन करहु निःशंक। आदि अंत निरबाहि हैं जैसे नवको अंक॥'*** (सतसई) ***'राम नामको अंक है, सब साधन हैं सून। अंक गए कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून', 'रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करे और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे॥'*** (वि० ६६)

(२) लोक-परलोक दोनोंके लिये कलिमें दूसरा उपाय नहीं है, अतएव सबके कल्याणार्थ विस्तारसे कहा। (३) श्रीमद्गोस्वामीजी श्रीरामनामहीके उपासक हैं, अपना मत भी उन्होंने इसी प्रकरणमें दरसाया है, यथा—*'मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते।'* (२३) अपना मुख्य सिद्धान्त एवं इष्ट 'नाम' ही होनेके कारण अपने उपास्यको इतने दोहोंमें वर्णन किया है। उपास्यके प्रमाण, यथा—*'रामनाम मातु पितु स्वामी समरत्थ हित, आस राम नामकी भरोसो रामनामको। प्रेम रामनाम ही सों नेम रामनामहीको जानउँ न मरम पद दाहिनो न बामको। स्वारथ सकल परमारथ को रामनाम, रामनामहीन तुलसी न काहू कामको। राम की सपथ सरबस मेरें रामनाम, कामधेनु कामतरु मोसे छीन छामको॥'* (क० उ० १७८), *'रावरी सपथ रामनाम ही की गति मेरें, यहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।'* (क० उ० ६५), *'मेरे माय बाप दोउ आखर हौं शिशु अरनि अख्यों। संकरसाखि जो राखि कहउँ कछु तो जरि जीह गरो। अपनो भलो रामनामहिते तुलसिहि समुझि परो।'* (वि० २२६), *'नाम-अवलंबु अंबु-मीन दीन राउ सो। प्रभुसों बनाइ कहउ जीह जरि जाउ सो।'* (वि० १८२), *'रामनाम ही की गति जैसे जल मीनको।'* (वि० ६८), *'और ठौर न और गति अवलंब नामु बिहाइ', 'मोको गति दूसरी न बिधि निर्मई'* इत्यादि।

नोट—६ श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि नामवन्दना-स्थूल-प्रकरणके अवान्तर सूक्ष्म सप्त प्रकरण हैं, यथा—*'नाम वंदना सात बिहार। प्रथम स्वरूप अंग अरु फल कहि, दूजे जुग अक्षर निस्तार। तीजे नामी नाम सरिस कहि, चौथे भक्तनको आधार। पाँचव अगुन सगुन ते बड़ कहि; छठवें फल उद्धार। सतयें चारिउ जुग नामहि को जानकीदास निहार।'* (मा० प्र०)

श्रीरामनाम-वन्दना प्रकरण समाप्त हुआ।